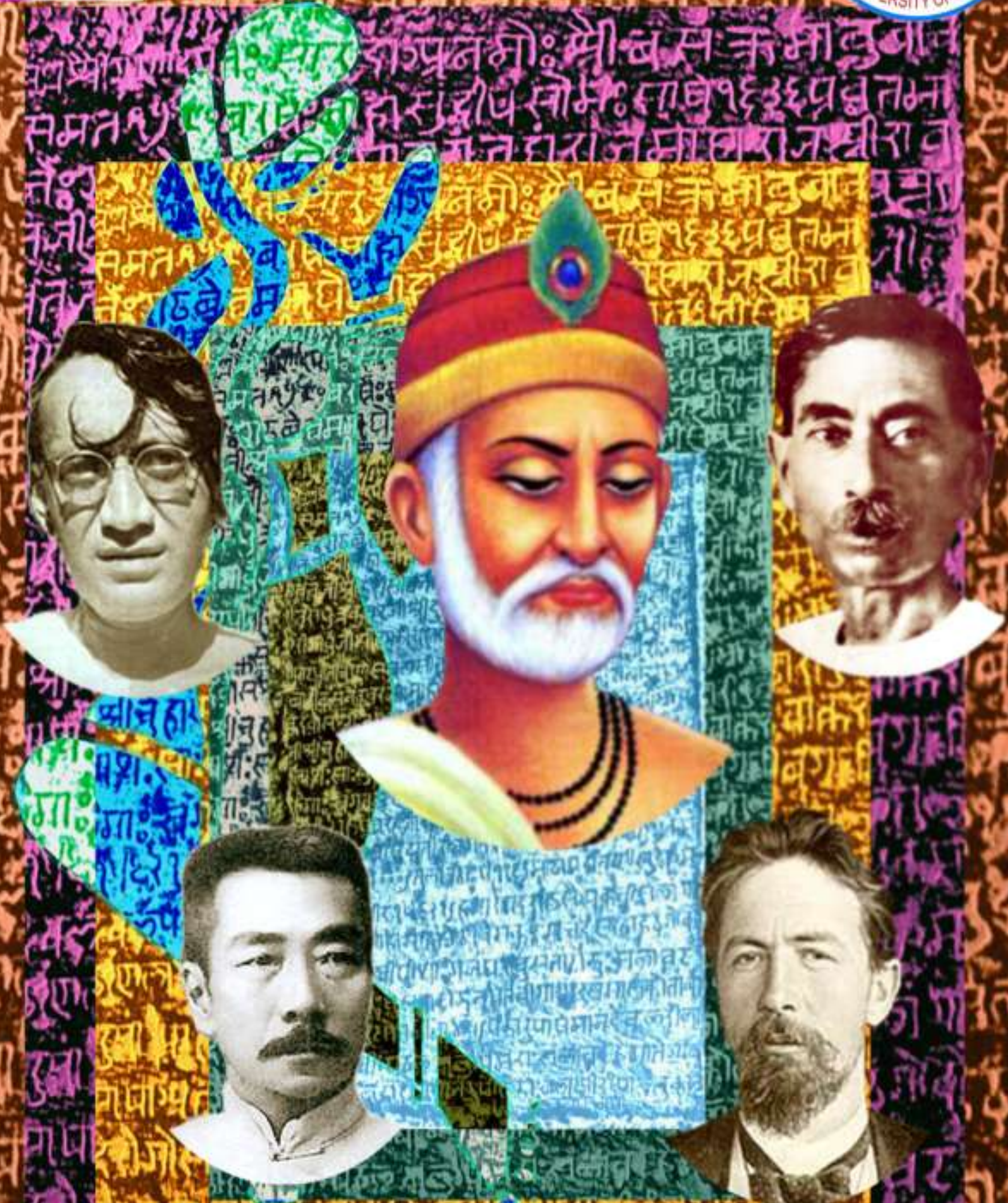
इंदु संचेतना



हिंदी साहित्य की त्रैमासिक सृजन परिक्रमा

विशिष्ट प्रतिभा विशेषांक

इंदुसंचेतना

हिंदी साहित्य की त्रैमासिक सृजन परिक्रमा

इंदुसंचेतना

हिंदी साहित्य की त्रैमासिक सृजन परिक्रमा

चीन से निकलने वाली साहित्य की पहली अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका

वर्ष-2, अंक-5, विशिष्ट प्रतिभा विशेषांक(अक्टूबर-दिसंबर)2016

संपर्क - हिंदी विभाग, क्वान्ग्तोंग वैदेशिक अध्ययन विश्वविद्यालय,पाय यून ताताओ पेई, क्वान्ग्चौ, 510420, चीन

संपर्क (भारत) - 9/48, साहित्य सदन, कोतवाली मार्ग, महमूदाबाद(अवध), सीतापुर, 261203, उत्तर प्रदेश, भारत

ईमेल- indusanchetana@gmail.com dr.gunshekhar@gmail.com, gpsharma@gdufs.edu.cn, संवेदन-sparsh@gmail.com

दूरभाष संख्या - +86-2036204385, +91-9454112975

संपादन एवं संचालन अवैतनिक एवं अव्यावसायिक।

प्रकाशित रचनाओं के विचार से संपादक मंडल का सहमत होना आवश्यक नहीं |

विशेष विज्ञप्ति

संचेतना पत्रिका अब इन्दु संचेतना हो गयी है । पता चला है कि कुछ लोग अनाधिकृत रूप से स्वयं को संचेतना का प्रतिनिधि बताकर रचना आमंत्रण एवं व्यापार का प्रयास कर रहे हैं । पाठकों एवं रचनाकारों से अनुरोध है कि इंदुसंचेतना/संचेतना के लिए रचना आमंत्रण एवं जानकारी के लिए अधिकृत सम्पादन मण्डल के अतिरिक्त किसी और के पत्राचार का जवाब न दें ।

अंक में|||

कहानी

शोध

रिपोर्ताज

श्रद्धांजलि !



प्रख्यात रचनाकार डॉ० अखिल बंसल के असमय निधन पर समस्त हिंदी साहित्य जगत मर्माहत है। उनका जन्म दिनांक 18 सितम्बर 1979 को ग्वालियर, मध्य प्रदेश के एक प्रतिष्ठित परिवार में हुआ था । दिनांक 05 अक्तूबर 2016, उनका निधन हो गया । पेशे से चिकित्सक थे परंतु साहित्य सृजन उनकी विशेष रुचि थी । प्रकाशित कृति : 'प्रहार' नई अतुकांत कविताओं का संग्रह । अन्य प्रकाशन: प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं में गीत, नवगीत, ग़ज़लें नई कविताएँ व लेख आदि प्रकाशित।आकाशवाणी से रचनाओं का नियमित प्रसारण। लगभग 36 वर्ष की अल्पायु में ही उनके पृथ्वीलोक से देवलोक गमन से साहित्यजगत को बहुत बड़ी क्षति पहुंची है । डॉ० साहब साहित्यकार होने के साथ ही एक कुशल चिकित्सक भी थे । इन्दु संचेतना परिवार की तरफ से उन्हे भावभीनी श्रद्धांजलि



देखते देखते कौन क्या हो गया
वक़्त की दौड़ में आदमी खो गया।।१।।
साथ दें जो यहाँ दोस्त मिलते नहीं
क्या फिकर है उन्हें जो गया सो गया।।२।।
सिर्फ अपने लिए ही जिए जा रहे
कौन दो पल किसी के लिए रो गया।।३।।
देख पाया नहीं सुख पराया कभी
ताड़ मौका बबूली फसल बो गया।।४।।
पापियों को हमीं मान देते अखिल
एक डुबकी लगा पाप वो धो गया।।५।।
।।डॉ० अखिल बंसल।।



संपादक की कलम से...

जो कबिरा कासी मरै



अगर इस विशेषांक के सुमेरु की बात करें तो वे हैं कबीर । उनको जान-समझ लेने के बाद बाकी को समझने में कोई असुविधा नहीं होगी । इसलिए कबीर को अपने हिस्से में लेते हुए बाकी को अपने पाठकों के हिस्से करता हूँ । कबीर की कविता को समझने के लिए मध्यकाल की यात्रा तो करनी ही पड़ेगी । तो चलिए आपको ले चलते हैं वहीं जहाँ कबीर की धुनी जल रही है और जिसकी आग और आंच कभी मद्धिम नहीं पड़ी ।

कबीर की कविता अपने समय के समाज की प्राणवायु है। लेकिन आज भी वह उसी तरह बह रही है जैसी पहले बहती थी। उसकी चंदनी सुवास से आज भी वातावरण महमह महक रहा है। उसकी मूल्यगत महत्ता आज भी अप्रासंगिक नहीं हुई है। कबीर की कविता बहती हुई सरिता है, सरोवर या कूप का नीर नहीं जिसमें कालांतर में सड़न की गुंजाइश रहती है। इसलिए न वह सड़ी है और न ही किसी प्रकार से अनुपयोगी ही हुई है। वे संस्कृत और भाषा (हिंदी)के बहाने इस सत्य को कह भी जाते हैं-

"संसकीरत कूप जल, भाखा बहता नीर। "

कबीर निजी जीवन में संत हैं और सामाजिक जीवन में समाज सुधारक। वे कुटिया के भीतर भले ही बहुत बड़े निर्गुण संत और भक्त रहते हों पर उससे बाहर आते ही वे योद्धा हो जाते हैं। वे धूप-छांह वाली बदली नहीं घहरा कर बरसने वाले मेघ बन जाते हैं-

"भक्ति भाव भादों नदी, सबै चलीं घहराय ।/सरिता सोइ सराहिये, जो जेठ मास ठहराय ॥ "

वे जेठ में भी जग को सींचने वाली नदी बने रहना चाहते हैं। इसलिए बाहर निकलते ही एक हाथ में लकुटी//तो दूसरे में लुकाठा थाम लेते हैं।

कबीर उस व्यक्ति का नाम ही है जिसे खुद नहीं पता होता कि वह कब और क्या करने वाला है। समाज की भलाई जिसमें है,उसके अलावा उसने दूसरा पाठ ही नहीं पढ़ा । कबीर एक ऐसे युगपुरुष का नाम है जो अंधेरा घिरा देखते हैं तो लुकाठा सबसे पहली अपनी ही कुटिया पर रखते हैं। उसके बाद भी अगर ज़रूरत पड़ी तो कब किसकी कुटिया पर रख देंगे कोई नहीं जानता।वे भी नहीं जो हाथ जोडे उनके पीछे-पीछे चल पडे थे। लेकिन सबको विश्वास है कि उनके हाथ में लुकाठा आते ही वे सच्चे पर अक्खड समाज चेता हो जाते हैं।निर्माण के लिए नाश में भी नहीं सकुचाते हैं।

कबीर जब भी और जहाँ से निकलते हैं या खड़े भी होते हैं तो सबको चेताते ही मिलते हैं-

"कबिरा खडा बजार में,लिए लुकाठा हाथ।/जो घर जारै आपना चलै हमारे साथ।"

केवल राम का ही ध्यान नहीं धरते हैं वे । वे उस देह का भी उतना ही ध्यान करते हैं जिस पर वस्त्र नहीं है। जिस देह पर वस्त्र नहीं होते उसके लिए वे वस्त्र बुनते हैं।वे उस वस्त्र को बुन कर ही नहीं छोड़ देते उसे पहनाते भी हैं, जिसे उसकी सबसे पहले ज़रूरत है। इसलिए कबीर जितने देह के भीतर हैं उससे अधिक वे देह के बाहर हैं । देह में होते हुए भी विदेह हैं।

कबीर सगुण की खाट खड़ी करने में माहिर हैं पर कभी-कभी खुद भी उसी पर अपनी अनमैली चदरिया बिछाए बैठे मिल जाते हैं। पाहन पूजने वालों को पानी पी-पकर गरियाते हैं । लेकिन खुद भी पाहन पूजने में लग जाते हैं । पर, वह पाहन वे पूजते हैं जो उपयोगी हो । इसीलिए वे शिवलिंग नहीं चकिया पूजते हैं।वह इसलिए कि चकिया उपयोगी देवता है।

जहाँ पर शांति नहीं होती वहाँ वे शांति की आराधना करते हैं। उनकी नमाज़ वहीं होती है जहाँ कोई दुखियारी या दुखियारा होता है। यदि एक ही समय में किसी गिरे हुए को उठाना हो और नमाज़ अदा करना भी तो वे नमाज़ बाद में पढ़ते हैं पहले गिरे हुए को उठाते हैं। ऐसे भक्त हैं वे।

कबीर को पढ़ते हुए वह युग सामने आ जाता है जब हिंदू-मुस्लिम आमने-सामने टकराते थे। लेकिन खून-खराबा शायद वैसा नहीं था जैसा सांप्रदायिक ज़हर फैलाने वाले बताते हैं। कबीर ने काशी में रहते हुए भक्ति की धारा में डुबकी लगाई । काशी विश्वनाथ के प्रांगण में ताल ठोंक कर हिंदू मुसलमान दोनों को ललकारा ।यह केवल कबीर के बूते की बात थी-

"कांकर ,पाथर जोरि के, मस्ज़िद लई ,बनाय ।
ता चढ़ि मुल्ला बांग दे,क्या बहरा हुआ खुदाय।"

हिंदुओं को भी उन्होंने आड़े हाथो लिया -

"पाहन पूजे हरि मिलै ,तो मैं पूजूं पहाड़।"

उन्होंने निंदा की तो जमकर की । इसमे अपनी, अपनों या परायों की जैसी कोई सीमा रेखा ही नहीं बनाई। इनके अलावा भला और किसमें इतना साहस है कि वह निंदक को खुले हृदय से स्वीकारे । इन्होंने निंदक को स्वीकारा ही नहीं बल्कि आंगन में ही उसकी कुटी भी छवा दी। शुभ चिंतकों ने टोका तो उसके लाभ गिना दिए और उन्हें भी अपने-अपने आंगन में बसाने की सलाह दे डाली -

"निंदक नियरे राखिए, आंगन कुटी छवाय।/बिन साबुन पानी बिना, निर्मल करे सुभाय।।"

किसी की निंदा की तो जमकर की और प्रशंसा की तो उसमें भी कोई कोर कसर नहीं छोड़ी । जिसको छोडा तो पकडा नहीं और जिसे पकड लिया तो फिर छोडा नहीं. अपनी इसी वृत्ति के कारण अपने आराध्य में रमे तो रमते ही चले गए.राममय ही हो गए-

"लाली मेरे लाल की ,जित देखूं तित लाल।/
लाली देखन मैं गई, मै भी हो गई लाल।।"/

उन्होंने अपने लाभ के लिए कभी चाटुकारिता नहीं की और न किसी और को खुश करने के लिए कभी किसी अन्य की निंदा ही की । वे तो मस्तमौला थे। फक्कड़ थे और कुछ-कुछ औघड़ भी । मौज़ में आए तो सब लुटा चले और गुस्सा हुए तो किसी के भी चिमटा चिपका दिए और चलते बने। लेकिन निर्दय नहीं थे । कोई ज़रा भी रोया तो पहले रुककर झाड़े तब चले।उन्हें रोक भी कोई कैसे सकता था। रमता जोगी बहता पानी थे वे।

उन्होंने कभी किसी को मझधार में नहीं छोड़ा ।वे खुद भी कभी बीच में नहीं रुके या तो इस पार या उस पार। उनकी खुद की अपनी धारा भी थी और विचारधारा भी। दूर से देखने पर भले लड़ाका और आक्रामक लगते हों । पर वे सामंजस्य के कवि थे असमंजस के नहीं। बिगाड़ उनके स्वभाव में ही नहीं थी । न कभी खुद असमंजस में रहे और न किसी को डाला । या तो खुद किनारे हो लिए या सामने वाले को किनारे कर दिया। अपनी नापसंदगी और गंदगी को कभी ढोया नहीं। जब कोई चीज़ अनावश्यक और भारी लगने लगी,उसे उतार फेंका और चलते बने।

वे अक्खड़ थे । किसी को कुछ देने का मन न हुआ तो साफ मना कर देने वाले । सही भी था। कुछ करने वाले को ही कुछ देने के पक्ष में रहते थे वे। अलस अकर्मा साधु उन्हें कभी नहीं रुचे। वे अकर्मण्यता के धुर विरोधी थे फिर वह चाहे तारने का दंभ भरने वाला भगवान ही क्यों न हो। उसको भी मुफ्त में यश देना उन्हें कभी नहीं रुचा। इसीलिए राम को भी काम पर लगाने के लिए उन्होंने काशी त्यागा और मगहर चले गए-

"जो कबिरा कासी मरै, रामै कौन निहोर।"

कबीर देशकाल से परे हैं। बुद्ध की तरह उनकी भी कोई भौगोलिक सीमा नहीं रही । इसीलिए कबीर चीन में भारत से कम लोकप्रिय नहीं हैं । विगत २४ मई २०१६ को महामहिम राष्ट्रपति श्री प्रणव मुखर्जी के क्वांग्चौ, चीन आगमन पर मैंने 'इंदु संचेतना' का विशेषांक निकाला। उसमें स्नातक चतुर्थ वर्ष की छात्रा सुश्री झांग्छिन(हिंदी नाम शांति) ने महामहिम के नाम पत्र छपने के लिए दिया । उस पत्र में उसने भारतीय साहित्य समाज और संस्कृति के प्रति युवाओं के आकर्षण का उल्लेख किया है। उसने अपने पत्र में भारत के जिन साहित्यकारों का विशेष उल्लेख किया है। उनमेन बस दो ही हैं प्रेम चंद फिर कबीर । समाज चेता कबीर का प्रभामंडल इतना दीप्त है कि सभी उसकी रोशनी में कुछ न कुछ पढ़ ही लेते हैं। उसके पत्र का वह अंश उद्धृत कर रहा हूँ, जिसमें उसने कबीर को ससम्मान उल्लिखित किया है-

"मैं चीन में गुओगडोंग यूनिवर्सिटी ओफ़ फ़ोरेन स्टाडीज़ में हिंदी का एडवांस कोर्स कर रही हूँ । मुझे याद है कि छोटी आयु में ही मैंने कबीर और प्रेमचंद की कई कहानियाँ

मंडारिन (चीनी भाष) में पढ़ी थी। वे विलक्षण कहानियाँ इतनी रोचक लगी थीं कि मैं अब तक बिल्कुल उनमें ही मग्न रही हूँ। वास्तव में मशहूर कथाकार प्रेमचंद के अतिरिक्त और भी बहुत सारे लोकप्रिय लेखक और कवि/कवयित्रियाँ हिंदी में हैं, जिन्हें हिंदी साहित्य के इतिहास में अपनी खास जगह मिली है। हमें भक्तिकाल में कबीर सबसे अधिक प्रभावित करते हैं। खासकर अपनी बेबाक बानी के कारण भी वे हमें सबसे अधिक लुभाते हैं। भारत की जाति-पांति और सांप्रदायिकता के विरुद्ध उतनी खरी बानी किसी की नहीं है, जितनी कबीर की ।मेरी समझ से साहित्य आईना जैसा होता है जो अपने समाज से संबंधित जाति व राष्ट्रीय निवासियों की मनः स्थिति और उनकी दशा को यथार्थपूर्ण शब्दों में प्रकट करता है।

हिंदी साहित्य से प्रेम के कारण मैं हिंदी सीखने भारत गई थी। भारत में रहते हुए उसकी सभ्यता और संस्कृति में मेरी ज़बरदस्त रुचि बढ़ गई। भारतीय शौक भी मुझे हो गए। अनेक रस्म-रिवाज़ निभाने और शौक रखने वाले भारतीय भी मुझे पसंद हैं। मुझे भारत सिर्फ एक देश भर नहीं लगा। उसका वैश्विक रूप, अलग-अलग भाषाएँ। अलग-अलग खान-पान, रंग रूप सभी कुछ मुझे मोहता रहा है । दुनिया भर के लोगों के लिए बहुत सी सीखने लायक नयी-पुरानी चीज़ें हैं वहाँ।"

चीन के विद्यार्थी बड़े चतुर सुजान हैं। वे हमारे कवियों और लेखकों की खूबी और खामियां हमसे अधिक तर्क संगत ढंग से जानते -मानते हैं। ऊपर के अनुच्छेद में झांग्छिन जिसका हिंदी नाम शांति है ने बड़ी बेबाकी से पहले प्रेम चंद फिर कबीर का नाम लेते हुए साहित्य को समाज का दर्पण कहा है। साहित्य की बात करते हुए वह भावुक नहीं हुई है। जिन और कवि/लेखकों को उसने पढ़ा है उनमें समाज को आईना दिखाने की वह ताकत उसे नहीं दिखी होगी जो इनमें मिली। इसीलिए उसने लेखकों में प्रेम चंद और कवियों में कबीर का नाम लिया है। उसने जिस साहित्य को समाज का आईना कहा है, कबीर उसी आइने को लेकर गली -गली, चौराहे -चौराहे सबको दिखाते घूमते हैं । यही उनकी सबसे बड़ी सामाजिक उपादेयता भी है। देश के लिए भी और दुनिया के लिए भी ।

उन्होंने जगत जीना सीखा और सिखाया । जिसे जीना गया उसी का मरना याद किया जाएगा नहीं तो रोने वाले नहीं मिलेंगे। कबीर को जीना आ गया था इसी वज़ह से उन्होंने अलग से रोने के लिए कोई चेले-चूले नहीं मूड़े । क्योंकि उन्हें इस बात का बिल्कुल डर नहीं था कि उनके लिए कोई रोने वाला होगा या नहीं। उन्हें यह भरोसा था कि उनके कर्म उन्हें समाज में अमर बनाए रखेंगे । वे जीवन का मर्म जान गए थे । इसी से उनके कर्म प्रेरित थे । केवल दो लाइनों में जीवन जीने की कला सिखा देने की क्षमता अगर किसी में है तो वह अकेले कबीर में है-

"जब आए थे जगत में ,जगत हंसा हम रोए।
ऐसी करने कर चलें,हम हंसें जग रोए।।"

उनका यह विश्वास उनके किसी भी समकालीन संत में नहीं था । फिर वे चाहे रविदास हों या नानक, जिनके अपने जीवनकाल में ही पंथ दूर से नज़र में आने लगे थे। उनके

फहराते हुए ध्वज हर आने-जाने वाले को चिल्ला-चिल्लाकर उनके पंथ बताने लगे थे। लेकिन कबीर के साथ ऐसा न था। लोग जान ही न पाते कि उनका पंथ क्या है? प्रेम उनका असली पंथ था।

कबीर जग के भले में अपना भला समझते थे न कि केवल अपने या ध्वज के नीचे आए कुछ अपनों के मोक्ष में। इस दृष्टि से संसार उनके लिए ठीक उसी तरह मिथ्या नहीं था जैसा अन्य संतों के लिए था। वे संसार से भी उसी तरह प्रेम करते थे जैसे खुद से और अपने राम या खुदा से। इसलिए उन्होंने संसार और घोर संसारियों को बुरा भला कहकर भी उसी तरह उन्हें गले लगाए रखा जैसे मां-बाप अपनी नादान और नालायक संतान को भी बड़े प्यार से गले लगाए रखते हैं ।उन्होंने प्रेम को बस प्रेम रहने दिया.उसे खानों या खांचों में भी बांटना कभी उचित नहीं समझा। उसमे अलग से कोई रंग नहीं मिलाया। इस प्रेमामृत का प्याला खुद भी छककर पिया और औरों को भी उसी विशुद्ध प्रेमामृत का पान कराया-

"कबिरा प्याला प्रेम का, अंतर लिया लगाय ।
रोम रोम में रमि रहा, और अमल क्या खाय ॥"

इसी अक्खड़-फक्कड़ कबीर की परंपरा में विश्व में अनेक प्रतिभाएं हुई हैं, जिनमें से कुछेक पर सामग्री जुटाने का हमने छुद्र प्रयास किया। कोशिश भले ही छोटी थी लेकिन उसमें निष्ठा और नीयत में खोट नहीं आने दी। इसी वज़ह से अर्थात् एक ईमानदार पहल और अनुकूल संयोग से कबीर के साथ-साथ मुंशी प्रेमचंद, लूशुन, चेखफ और मंटो पर भी ठीकठाक सामग्री जुट ही गई। मेरी समझ से तो स्तरीय ही है फिर भी इस सामग्री पर विद्वान पाठकों की प्रतिक्रिया की प्रतीक्षा रहेगी ।

सबसे पहले बिना किसी पारिश्रमिक की अपेक्षा के कबीर और प्रेम चंद पर सामग्री भेजने वाले पत्रिका नींव के पत्थर यानी उदार लेखकों का आभार। इनमें चेखफ के आधिकारिक लेखक जन विजय जी का विशेष आभार कि मेरे बार-बार तंग करने पर भी उन्होंने ज़रा भी बुरा नहीं माना।

इसमें विशेष सामग्री के साथ-साथ सामान्य अंकों के स्तंभों की सामग्री भी अपनी महती भूमिका के साथ उपस्थित है। यह नियमित पाठ्य सामग्री उन पाठकों के लिए है, फिलहाल जिनकी दिलचस्पी कबीर और प्रेमचंद को छोडकर अन्य किसी में कुछ खास नहीं है। उन्होंने लूशुन, चेखफ और मंटो के नाम भर सुने हैं। जब मुझे उनका ध्यान आया तो लाख चाह कर भी वह सामग्री हटा नहीं सका।

इस अंक के श्रम के संदर्भ में सच कहा जाए तो यह कहना अत्युक्ति न होगी कि मैं और उप संपादक तो निमित्त भर हैं इसका असली श्रेय तो पत्रिका के सह संपादक भाई बिनय शुक्ल को जाता है।

इस पत्रिका से जुड़े एक दुखद प्रसंग को भी अपने पाठकों से साझा करने का मन है। इसमें बच्चन जी की ये पंक्तियां बहुत प्रासंगिक हैं ," यदि छिपाना जानता तो जग मुझे साधू समझता /शत्रु मेरा बन गया है छल रहित व्यवहार मेरा । "

मुझसे गलती कहाँ हुई खोजने बैठा तो आखिर मिल ही गई कि मैंने कुपात्र का चयन कर लिया था। हुआ यह कि 'संचेतना' अब 'इंदु संचेतना' के प्रकाशन के लिए जुंग में मैंने कबीर की तरह कुछ अलग करने और पात्र-कुपात्र या योग्य -अयोग्य में भेद किए बिना सबको एक पांत में बिठा कर प्रसादी देने की ठान ली। उस पंक्ति में एक महापात्र को भी प्रतिष्ठापित कर लिया। जिस समय उसे वहाँ प्रतिष्ठापित किया था, वह बहुत विनम्र था। उसने बीस बार पैर छूकर अनुरोध किया था कि यदि उसके हिस्से का भी कुछ लिख जाएगा तो वह उपकृत होगा। उसके अनुरोध पर मैं भी भोले शंकर की मुद्रा में आ गया और भस्मासुर न्योत लिया । जब मैंने उसे उपकृत करने की ठान ही ली थी तो विलंब किस बात का। सबसे पहले नैतिक-अनैतिक की सोच को गोली मारकर किनारे कर दिया। फिर यह बात दिमाग में घूमी कि योग्यता का क्या है वह तो बाद में भी आ जाएगी और क्या वे सारे लोग जो ऊंचे-ऊंचे ओहदों पर चढ़े बैठे हैं क्या सारे योग्य ही हैं । सो उसके कहने पर उसके हिस्से की संपादकीय भी लिख मारी और साथ में उसे जस्टिफाइ करने के लिए(दो-दो संपादकीयों की वज़ह से) कुछ तो कहना ही था सो यह भी कह दिया कि असल में यह पत्रिका निकालना उसी महापात्र की ही इच्छा का प्रतिफल है। मेरा इसमें कुछ भी नहीं है। मैं तो निखट्टू हूँ। इसके बाद तो वह सच में न केवल योग्य बना बल्कि चुनौती देने की मुद्रा में भी आ गया। उसने लक्षणा और व्यंजना को भी अभिधा में लिया और अपनी प्रशंसा में कहे गए हर शब्द को प्रमाणपत्र की तरह ग्रहण किया । मैं तो उस महापात्र की इस शब्द साधना और यत्किंच सिद्धि पर भी मुग्ध हूँ कि उसने अपने बारे में मेरे द्वारा कहे गए शब्दों की इतनी कद्र की और उनपर अक्षरश: विश्वास कर मुझे सच में निखट्टू मान लिया।

मैं उसे अपना शिष्य समझ बैठा था । वास्तव में वह मेरा शिष्य नहीं बल्कि गुरु था जिसने मुझे कुछ ही दिनों में वह पाठ पढ़ा दिया, जिसे कोई विश्वविद्यालय नहीं पढा पाया था। अंतत: मैंने उससे उसी तरह हाथ जोडकर विदा ली जैसे वह मुझसे जोड़ा करता था। मेरे और उसके गुरु-शिष्यत्त्व में बस इतना ही फर्क बाकी रह गया था कि मेरे हाथ उसके पैरों तक नहीं गए थे।मैं उसके मुखौटे को ही मुख मान बैठा था। उसके लिए एक मुक्तक भी मुख तक आ ही गया है तो उसे भी कह ही दूं-

दागी मुंह पर लगा मुखौटे/जब नकली सौदागर लौटे
हुए चलन से सच्चे बाहर/लगे चमकने सिक्के खोटे.

वह मुखौटाधारी मेरे साथ जिस असल मक़सद से चला था उसका तब उद्घाटन हुआ जब उसने मेरे और अपने दोनों लुकाठे मेरे ही छप्पर पर रख दिए । उन लुकाठों को अगर

तुरंत तुरंत पीट न लिया जाता तो मेरा सारा किया धरा पल में स्वाहा हो सकता था । अभी उसकी पूर्व पीठिका ही साझा करूंगा शेष अगले अंक में-

पहला अंक 'संचेतना' के नाम से छपा था। कुछ समय बाद 'संचेतना' के अतिथि और अब 'इंदु संचेतना' के उप संपादक राहुलदेव ने ध्यान दिलाया कि यह चर्चित कथाकर महीप सिंह द्वारा पहले ही संपादित पत्रिका का चिर परिचित नाम है। पता तो मुझे भी था पर विस्मृत-सा हो गया था। इसके नामकरण के समय अगर कुछ दिमाग में रह गया था तो वह था आदरणीय श्याम त्रिपाठी जी के संपादन में कनाडा से निकलने वाली 'हिंदी चेतना' का नाम । 'संचेतना' से मिलती-जुलती संज्ञा की यही एक पत्रिका ध्यान में रह गई थी । इसी कारण यह गलती हुई थी।

बाद में नैतिक आधार पर पत्रिका का नाम बदलना ज़रूरी समझा और उसमें 'इंदु' भी जोड़ा । हिंदी में 'इंदु' का अर्थ तो सबको पता ही है कि चंद्रमा होता है लेकिन मंडारिन में अर्थ होता है 'भारत'। इस तरह भारत और चीन दोनों संस्कृतियों और संदर्भों को एक विशेष अर्थ छवि देता है यह नाम। इसीलिए 'संचेतना' अपने नए नामकरण के साथ 'इंदु संचेतना' बनी।

यदि पकड़ में न आते तो किसी की दीवाल में बिल बनाकर रह रहे वे महापात्र उसी नाम पर कुंडली मारकर बैठने की फिराक में थे। ऐसे शेषनागों के लिए आस्तीन का सांप शब्द भी बौना हो जाता है। अब इस नाग यज्ञ को यहीं पर रोकते हुए पुन: लौटते हैं अपने केंद्रीय विषय की ओर जहाँ एक फकीर की परंपरा अब भी मुझे इशारा दे रही है ।

कबीर की परंपरा युगों-युगों से चली आ रही तथाकथित धारा से हटकर बहना सिखाती है। कभी-कभी तो नितांत उलटा बहना भी सिखाती है। औरों से कुछ अलग करना सिखाती है।इसी लिए कबीर ने कहा था ,***"जो कबिरा कासी मरै रामै कौन निहोर।"*** मैं भी उन्हीं के नक्शे कदम पर चला और साहित्य का मगहर यानी चीन चुना। आज ही नहीं जबसे कुछ सार्थक सोचने-समझने लायक हुआ मैंने जान-बूझ कर इसी परंपरा का आलिंगन किया है। इसी सोच के तहत दो साल पहले चीन से हिंदी में पत्रिका निकालने की सोच बैठा।शुरू-शुरू में यह कुछ अलग लगा था यानी ठाठ कबीरी।अब तो लगता है कि इस ठाठ पर भी ठगों की नज़र पड गई है.कहीं यह ठाठ भी ठगों ने ठग लिया तो.....

मैं काशी के पंडों से जान छुडाकर भाग आया हूँ लहर तारा.बीजक अभी भी हाथ में है.लहर तारा की लहर-लहर पर बीजक के शब्द उभरते हुए दिखते हैं.उन्हें पढता हूँ.इस तरह तट पर खड़ा-खड़ा लहरों में अनहद सुन रहा हूँ और अनहद में कबीर को।

डॉ० अखिल बंसल के नवगीत

'एक मानुस सर्वहारा है'
****

वह वृहद् इन
सागरों का
नीर खारा है
जग सुखी पर
एक मानुस
सर्वहारा है

तुम क्षितिज
तारे वो
अंतिम साँस लेती लौ
घोर तम में
आ नहीं पाती
कभी क्यों पौ

घुट रहे दम पे
दमे ने
जोर मारा है

जिस्म का
नमकीन पानी
पी रही है भू
दूर मालिक
बैठ कर हैं
फाँकते काजू

हर फसल को
सांड ने
पूरा डकारा है

इन फटे कपड़ों
में मुनिया
भा गई उनको
देख लाचारी
खुमारी
आ गई उनको

कौन केशव
कौन इज्जत
का सहारा है

दास है वो
सर दबंगों
के तले रहता
और खुद पर
हो रहे हर
जुल्म को सहता

जन्म जन्मों
कर्ज का
करता चुकारा है

'मक्खी'
**
मक्खी के
अंडों से तो
मक्खी ही निकलेगी
ऐसे कैसे
बातों से ये
दुनिया बदलेगी
तन है रजनीगंधा
मन में
फूले पीत कनेर
कथनी करनी
भिन्न भिन्न हैं
सौ चक्कर सौ फेर
दूजे की
थाली के घी पर
नीयत मचलेगी

घूरे के ढेरों
पर पलती
शूकर बस्ती है
देखो खुद
के गिरहबान में
कितनी हस्ती है

लोभी मंशा
केवल खुद की
खुशियाँ कुचलेगी
ऊपर जाने
के बदले नित
नए गर्त में जाते
पाप कर्म
करके खुद अपनी
पीठों को थपकाते
द्राक्ष लपकने
चतुर लोमड़ी
पल पल उछलेगी

'कैसे हो सक्सेना'
*****
बड़े दिनों
के बाद मिले
कैसे हो सक्सेना

जीवन को
तुम जंगल मानो
हम इसके तरुवर हैं
हम पर कितने
पाँखी कीटों
सरीसृपों के घर हैं
अपना तो
मकसद ही है
दूजों को सुख देना

शायद तुम कुछ
व्यथित हुए हो
बेटे औ बहुओं से
भाई मेरे
सीखो कुछ इन
अंगूरों महुओं से

सब सुख देने
वाली मय हम
दिल पे क्या लेना

बाल रँगो
कुछ फैशन बदलो
खुद को जीवित मानो
खुशियाँ आस पास
बिखरी हैं
तुम उनको पहचानो

अपनी नइया
सागर में
हमको ही है खेना

सब सांसों की सांस में…..

आनन्द बाला शर्मा

सब सांसों की सांस में…..

यह संसार चलायमान है।
गतिशील है।इसलिए इस संसार को जगत कहते हैं।सबको चलते रहना है शारीरिक रूप सेऔर मानसिक रूप से भी।ऊर्जा का सदुपयोग हो इसलिए सही दिशा का निर्धारण आवश्यक है।यह जानना भी जरूरी है कि सर्वोत्तम तरीका कौनसा है? मनुष्य को अपनी सभी संभावनाओं और शक्तियों का पूरा उपयोग करना चाहिए।जब बुद्धि सत्पथ पर होती है तो आन्तरिक अभिव्यक्ति आध्यात्मिक तरंग में बदल जाती है।ईश्वर को पाना ही अन्तिम लक्ष्य है। अन्तिम लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए श्रेष्ठपथ का अनुसरण करना होगा।ईश्वर तो हमारे अन्दर ही है यह उनसे सीखना होगा जो व्यवहारिक हैं,साधक हैं और जिन्होंने अनुभव प्राप्त किया है।कबीर इस मार्ग के सर्वोत्तम उदाहरण हैं।वे सहजभाव से ईश्वर को पाने का मार्ग प्रशस्त कर देते हैं।

कबीर सहजता से कहते हैं ईश्वर और हम तो अलग हैं ही नहीं एक ही हैं।ईश्वर हममें समाया है और हम ईश्वर में।फिर कैसे पाएँ ईश्वर को ?ईश्वर हमारे भीतर है और हम भीतर की दिशा में जाते ही नहीं ।हमें याद ही नहीं रहता कि ईश्वर हमारे भीतर है।ईश्वर को हम बाहर ही खोजते हैं और अपनी सुविधा के लिए बाहर ही ईश्वर का निर्माण कर लेते हैं।मन्दिर,मस्जिद,गुरुद्वारे और चर्च आदि का निर्माण करते हैं।पूजा,प्रार्थना,यज्ञ और हवन आदि में इतना निमग्न हो जाते हैं कि यह भूल ही जाते हैं कि ईश्वर तो हममें ही समाया है।एकात्म है हमारा ईश्वर के साथ।

कबीर कहते हैं हम ही ईश्वर हैं।हमारा होना ही ईश्वर का होना है।ईश्वर अगर सूरज है तो हम लघु दीपक हैं। आग दोनों में एक ही है। ईश्वर अगर सागर है तो हम बूँद हैं। बूँद में ही सागर छिपा है। हम ही ईश्वर हैं और ईश्वर ही हम हैं। ईश्वर को पाने के लिए कुछ करने की भी आवश्यकता नहीं है क्योंकि जिसे हम खोज रहे हैं वह तो हममें ही समाया हुआ है। कुछ करना आवश्यक नहीं है।आवश्यक है होना। करना तो अभिव्यक्ति मात्र है।अगर कोई ईश्वर को पा लेता है तो उसके हर कार्य से ईश्वर अभिव्यक्त होता है . ईश्वर और हम एक हो जाते हैं।

कबीर कहते हैं ईश्वर को पानेसे पहले जरूरी है ईश्वर को पाने की चाह होना।स्वतः स्फूर्त:।हृदय से, आत्मा से।प्रबल चाह होनी चाहिए ईश्वर को पाने के लिए। चाह जितनी प्रबल होगी ईश्वर को पाना उतना ही आसान होगा।

कबीर कहते हैं चाह जब समग्र होती है,गहन होती है।प्राणों में जब चाह ही चाह होती है।रोम रोम जब ईश्वर को पुकारता है।ईश्वर से दूरी कम होती जाती है।शून्य हो जाती है ।

कहाँ मिलेगा ईश्वर ? कबीर कहते है-सब सांसों की सांस में......सांस तो जीवन की अभिव्यक्ति मात्र है। असंख्य सांसों के बीच जो जीवन छिपा है उसमें ही है ईश्वर ।जहाँ सांसें निस्पंद हों वहीं है ईश्वर ।जब विचार बंद हो जाएँ,विराम हो जाए , क्रिया लीन हो जाए सिर्फ होना ही होना बच जाए शान्त झील की तरह लहर विहीन ।शुद्ध दर्पण की तरह स्वच्छ। वहीं मिलेगा ईश्वर।

कबीर कहते हैं जब चाह प्रबल होगी उसी क्षण पालोगे ईश्वर को।जब प्राणपण से पुकारोगे ईश्वर को पा लोगे।देर मत करो ,हृदयद्वार खटखटाओ।सोचो मत।रास्ता मत पूछो।पुकारो मत पुकार बन जाओ। प्रार्थना मत करो प्रार्थना बन जाओ। कबीर कहते हैं जब रोम रोम में राम होंगे ,धड़कनों मे चाह ही चाह होगी. शब्द जब निःशब्द हो एंगे.जब अग्नि पुंज बन जाओगे तब ईश्वर हममें और हम ईश्वर में आत्मसात हो जाएंगे ,एक हो जाएंगे ,इक दूजे में लीन हो जाएंगे।

सब सांसों की सांस में....



'लू-शुन'- एक संचिप्त परिचय



संकलन- वाणी शुक्ल

लू-शून चीन के अग्रणी साहित्यकारों में एक हैं । उनका जन्म चीन के जेंजांग के शाओजिंग शहर में हुआ था । उनके कई नाम थे । बचपन में उनका नाम 'जाओ जेजियांग' था तो देशी नाम उनका 'यूषन' था पर बाद में उन्होने अपने देशी नाम को बादल कर 'युचाई' रख लिया । 1898 में उन्होने अपना नाम 'शुरेन' रखा । ज़्यादातर लोग उन्हे उनके साहित्यिक उपनाम 'लू-शुन' से जानते हैं । 1918 में जब उनकी पहली रचना प्रकाशित हुई उस समय उन्होने यह नाम रखा था । उनकी माता का उपनाम 'लू' था । उनके जन्म के पूर्व उनका परिवार काफी समृद्ध था पर उनके जन्म के बाद धीरे-धीरे उनका गरीबी के आगोश में सिमटता चला गया ।

1899 में सिविल सर्विस की परीक्षा के लिए उन्होने तैयारियां शुरू की पर परिवार की गरीबी के कारण ऐसा संभव नहीं हो पाया और आगे की पढ़ाई के लिए उन्हे निःशुल्क शिक्षा के लिए सेना के विद्यालय में प्रवेश लेना पड़ा । इस विद्यालय में अपने परिवार के उपनाम के परिचय को छुपने के लिए उन्हे अपना नाम बदलने की सलाह दी गयी थी । वहाँ वे डेढ़ साल तक पढ़े । शिक्षा काल के दौरान उन्होने पश्चिमी साहित्य, दर्शन, इतिहास, विज्ञान, अंग्रेजी एवं जर्मन भाषा का अध्ययन किया । पढ़ाई के दौरान ही उन्होने सामाजिक परिवर्तन एवं संघर्ष विषयक कई उपन्यास पढ़ा । शायद इन्ही उपन्यासों का असर उनके व्यावहारिक एवं साहित्यिक लेखन पर पड़ा ।

पढ़ाई पूरी करने के बाद वे डॉक्टर बनना चाहते थे । इसके लिए 1902 में वे चिकित्सा विज्ञान के अध्ययन के लिए जापान गए । जापान में शिक्षा अर्जन के दौरान चीन विद्रोह के राजनैतिक प्रभाव ने उनके मन पर एक गहरी छाप डाला । इसी दौरान साहित्यिक चीनी भाषा में उनका पहला आलेख प्रकाशित हुआ । इसी दौरान उन्होने कई पश्चिमी लेखकों के उपन्यासों का चीनी अनुवाद किया और वे सब प्रकाशित हुए । इन प्रकाशित पुस्तकों में जूल्स वर्न का 'जर्नी टू मून' एवं ट्वेंटी थाउसेंड लिग्स अंडर सी' था ।

इसी बीच पुनः युद्ध छिड़ गई । एक दिन उन्हे एक स्लाइड दिखाया गया जिसमें एक जापानी सैनिक द्वारा चीनी सैनिक का सिर कलम किया जा रहा था । इस दृश्य ने उन्हे इस कदर विचलित कर दिया कि वो विद्रोह पर उतारू हो गए और अपने साहित्य के माध्यम से अपने देश के सेनानियों कि मदद करने लगे । युद्ध के दौरान लघु कहानियों का उनका संग्रह 'नाहन' प्रकाशित हुआ । लू ने बताया कि कैसे एक हत्या के दृश्य ने उनके मन को विचलित किया और साहित्य सृजन के पथ पर उन्हे आगे बढ़ा दिया । जर्मनी में पढ़ाई करने कि उनकी बड़ी इच्छा थी । पर किन्ही कारणों से उनकी यह इच्छा अधूरी रह गई ।

जापान में छात्रों द्वारा प्रकाशित पत्रिका के लिए लिखना प्रारम्भ किया । 1907 में उन्होने रूसी भाषा सीखना प्रारम्भ किया । 1909 में पूर्वी यूरोप से 'टेल्स फ्राम एब्रोड' का उन्होने अनुवाद प्रकाशित किया । इसकी 1500 प्रतियाँ छपी थीं पर मात्र 41 प्रतियाँ ही बिक पाईं । 1909-11 तक उन्होने शिक्षण का कार्य किया । इसी दौरान उन्होने चीनी साहित्य के अध्ययन एवं संकलन की अपनी अभिलाषा को पूरा करने का प्रयास प्रारम्भ किया ।

1918 में लू की लघु कथाओं का संग्रह 'डायरी ऑफ आ मैडम' प्रकाशित हुआ । इन लघु कथाओं में सामाजिक रूढ़ियों के खिलाफ़ उनके विचार लोगों को काफी पसंद आया । यहाँ से रूढ़ियों एवं सामाजिक कुरीतियों के खिलाफ अपनी रचनाओं के माध्यम से आवाज उठाने वाले रचनाकारों में उनकी गिनती होने लगी ।

उन्होने 1920, से कई विद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में अतिथि वक्ता के रूप में कार्य करना प्रारम्भ किया । 1927 में उन्हें 'द ट्रू स्टोरी ऑफ अः क्यू' के लिए साहित्य में नोबल पुरस्कार के लिए नामित किया गया पर इस सम्मान के लिए उन्होने इंकार कर दिया । बाद में चीन के बिगड़ते राजनैतिक दशा के कारण कहानियाँ लिखना छोड़ दिया और वैचारिक एवं तार्किक लेख लिखना प्रारम्भ किया । उनकी मृत्यु के बाद 'माओ जेदांग' उन्हे "आधुनिक चीन के संत" के नाम से पुकारते थे । कम्युनिस्ट विचारधारा के लोग उन्हे अपनी विचारधारा के पोशक बताते थे । लू के लेख एवं कहानियाँ सामाजिक चेतना , रूढ़ियों एवं कुरीतियों के खिलाफ केन्द्रित होती थीं । लू को यदि भारतीय रचनाकार 'मुंशी प्रेमचंद' का पुनर्जन्म कहा जाए तो इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी । उन्हे चीन का प्रेमचंद भी कहा जा सकता है ।





चेख़फ़ और अविलोवा

अनिल जन विजय

बीसवीं सदी के चौथे दशक के अन्त में मास्को में एक वयोवृद्ध महिला रहती थीं। अक्सर बहुत से लेखक, साहित्यकार और विद्वान उनसे मिलने आते रहते थे। इन सभी लोगों के बीच आम तौर पर चेख़फ़ की ही चर्चा हुआ करती थी। एक बार एक व्यक्ति ने अफ़सोस ज़ाहिर करते हुए कहा -- हमने चेख़फ़ की पूरी ज़िन्दगी को छान मारा लेकिन हमें कहीं भी उनके जीवन में किसी गम्भीर प्रेम का संकेत नहीं मिला। हालाँकि दोस्तो, यह बात सच नहीं है क्योंकि उनके जीवन में भी ऐसी एक महिला थी, जिनसे चेख़फ़ प्रेम किया करते थे। वह वयोवृद्ध महिला भली-भांति इस बात को जानती थीं, क्योंकि बात ख़ुद उनके प्रेम की हो रही थी। इस वयोवृद्ध महिला का नाम था लीदिया अविलोवा ।

जब चेख़फ़ से उनकी पहली मुलाक़ात हुई थी तो उनकी उम्र 27 वर्ष थी और चेख़फ़ 32 वर्ष के थे। चेख़फ़ तब तक एक नामी कहानीकार और नाटककार बन चुके थे। लीदिया बाल-कहानियाँ लिखा करती थी। आइए, अब ज़रा विस्तार से हम आपको उनका परिचय दें। लीदिया का जन्म मास्को के एक समृद्ध परिवार में हुआ था, किन्तु जब वे सिर्फ़ 11 साल की ही थीं, उनके पिता नहीं रहे। फिर यौवन की दहलीज पर पहुँचकर उन्हें पहली बार प्यार हुआ था – एक सलोने अफ़सर से। उस ज़माने के भद्र समाज में युवक-युवतियों के मिलने का स्थान बाल-नृत्य सन्ध्याएँ ही होता था। वह सलोना अफ़सर इन बाल-नृत्य सन्ध्याओं में छाया की तरह उनके पीछे लगा रहता था। और आख़िरकार उसने उनके सामने उनसे विवाह करने का प्रस्ताव रख दिया था। परन्तु लीदिया ने उसका यह प्रस्ताव ठुकरा दिया। हालाँकि इसके बाद वे लम्बे समय तक उदासी में डूबी रहीं। इसके 37 वर्ष बाद उस अफ़सर ने उन्हें फिर से खोज लिया – यह बताने के लिए कि आजीवन अकेली वही उसके मन में बसी रही थीं।



समय बीतने पर लीदिया ने अपने भाई के एक मित्र से विवाह कर लिया। बरसों बाद उन्होंने यह स्वीकार किया कि वे अपने पति की बहुत कद्र करती थीं और यह जानती थीं कि वह बहुत बुद्धिमान हैं तथा जीवन के हर उतार-चढ़ाव में उन पर भरोसा किया जा सकता है। किन्तु लीदिया के मन में उनके लिए प्रेम नहीं था बल्कि वे तो कुछ हद तक पति से डरती थीं।

विवाह के बाद अविलोफ़ दम्पती पीटर्सबर्ग में बस गए थे। यहाँ लीदिया अपने घर पर साहित्यिक गोष्ठियाँ आयोजित करने लगीं थीं। उनके इस "साहित्यिक सैलून" में गोर्की, बूनिन, लेफ़ तलस्तोय

जैसे जाने-माने लेखक आते थे और अक्सर चेख़फ़ भी आया करते थे। जनवरी 1889 में लीदिया अविलोवा से उनका परिचय हुआ। चेख़फ़ की सभी कहानियाँ उन्हें जबानी याद थीं। वह इस अनोखे कहानीकार पर मुग्ध थीं। और उस सारी शाम वे उन्हें ही निहारती रही थीं...।

चेख़फ़ भी उनकी तरफ़ तुरन्त आकर्षित हो गए थे। क्या था लीदिया के इस सम्मोहन का राज? नोबल पुरस्कार विजेता इवान बूनिन ने अपने संस्मरणों में लिखा है -- एक ओर जहाँ लीदिया बहुत ही शर्मीली थी वहीं दूसरी ओर उसमें जीवन के प्रति तीव्र कौतूहल था, एक ओर वह हर बात पर खिलखिलाने को तैयार रहती थी तो दूसरी ओर कोई गहरी उदासी उसके मन में बसी हुई लगती थी। उसकी आवाज़ बहुत कोमल थी, नीलापन लिए हुए उसकी सलेटी आँखें बेहद प्यारी लगती थीं और उसकी नज़रें तो हर किसी का मन मोह लेती थीं। वह भूल जाती थी कि वह इतनी सुन्दर है। उसका हर शब्द, हर हाव-भाव, उसकी बुद्धि, प्रतिभा और हास्य-भावना का परिचय देते थे किन्तु लीदिया को सदा ही ऐसा लगता था कि उसमें कमियाँ ही कमियाँ हैं।

रूस की साहित्यिक दुनिया में लीदिया ने सहज ही अपना स्थान बना लिया था। वह बड़ी आसानी से बातचीत का विषय खोज लेती थी और एक ही इशारे में पूरी बात समझ जाती थी। उसकी साहित्यिक रचनाओं को सराहने वाले भी कम नहीं थे, तो भी उसे पास से जानने वालों का यह मानना था कि उसकी प्रतिभा उसकी रचनाओं में पूरी तरह से व्यक्त नहीं हुई थी। चेख़फ़ उसकी कहानियों पर सविस्तार टीका-टिप्पणियाँ करते रहते थे, तथा उनकी आलोचना करते हुए उसे बहुमूल्य परामर्श भी देते थे। इस तरह धीरे-धीरे चेख़फ़ उसके गुरु जैसे बन गए थे। परन्तु ऐसे गुरु से कुछ पा जाना आसान नहीं था। चेख़फ़ सदा इस बात का आग्रह करते थे कि लीदिया अपनी रचनाओं में अधिक सटीकता और गहराई लाएँ, और ज़्यादा से ज़्यादा लिखे। इस तरह उनके बीच कहानी लेखन कला पर विचार-विमर्श का सिलसिला चल निकला था। इस सवाल पर उनके बीच देर तक बातें होती रहती थीं। धीरे-धीरे वे अक्सर एक-दूसरे को पत्र लिखने लगे। इस तरह दस साल बीत गए। दस साल तक वे एक दूसरे को देखते और आँकते रहे। और फिर, जैसा कि लीदिया अवीलोवा ने लिखा है -- हमारे दिलों के दरवाज़े खुल गए थे। हम जैसे अनुभूतियों की आभा से आलोकित होकर हर्ष-विभोर हो उठे थे। यह अनुभूति हम दोनों के मन में सारी ज़िन्दगी बनी रही। परन्तु एक दूसरे के सामने अपना प्रेम प्रकट करना तो दूर, हम ख़ुद से भी मन की यह बात छिपाते रहे।

लीदिया के पति जल्दी ही यह बात समझ गए कि उनकी पत्नी को चेख़फ़ से प्रेम हो गया है। वे सैनिक इंजीनियर थे। पत्नी की साहित्यिक-गोष्ठियों और लेखन को वे उसका बस एक शगल ही मानते थे। पत्नी से उन्हें प्रेम था पर उसकी तरफ़ से प्रेम न पाकर उनका मन दुखी रहता था। चेख़फ़ के प्रेम के मुकाबले वह तराज़ू के दूसरे पलड़े पर बच्चों के सिवा और क्या रख सकते थे। वे जानते थे कि लीदिया को बच्चे जान से भी प्यारे हैं। बस, इसी उन्होंने अपने बच्चों को ही अपना कवच बना लिया था। वे जानते थे कि पत्नी के हृदय में चाहे कैसा भी तूफ़ान क्यों न उठ रहा हो, मगर बच्चों का यह लंगर उसे परिवार की नैया से बाँधे रखेगा। और उनका यह सोचना बिलकुल ठीक था।

लीदिया और चेख़फ़ की मुलाकातें कम होती थीं। कभी संयोगवश किसी थियेटर में या किसी के घर पर मिलना हो जाए तो और बात है। चेख़फ़ को सदा यह अंदाज़ हो जाता था कि बस अभी, कुछ पल में ही वह दिख जाएगी, कि वह कहीं पास ही है। और वह सच में ही वहाँ आ जाती थी। परन्तु जीवन के हालात ऐसे थे कि उनकी ये मुलाकातें धीरे-धीरे विरल होती जा रही थीं। मुलाकातों की जगह वे पत्राचार करने लगे थे। लेकिन लीदिया की उदासी दिन-ब- दिन गहराती जा रही थी। आखिर जब विरह-वेदना सहन न हो सकी तो उन्होंने सुनार से एक लॉकेट बनवा लिया। एक नन्हीं-सी पुस्तक के रूप में बनाए गए उस लॉकेट पर लिखा था : 'अ.चेख़फ़, कथा-संग्रह, पृ. 207, पँक्तियाँ 6-7' । चेख़फ़ का वह कथा-संग्रह खोलने पर 207 वें पन्ने पर छठी और सातवीं पँक्ति में लिखा था -- 'यदि तुम्हें कभी मेरे प्राणों की ज़रूरत पड़े, तो बस, चले आना, और उन्हें ले लेना'...।

परन्तु लीदिया अपनी ओर से चेख़फ़ को यह उपहार भेजने की हिम्मत कभी नहीं कर पाईं। 'एक अज्ञात प्रशंसक' की ओर से चेख़फ़ को मास्को में यह उपहार सौंप दिया गया। चेख़फ़ के पत्र अब कम आने लगे थे, फिर उनके नाटकों में प्रमुख भूमिकाएँ अदा करनेवाली मशहूर अभिनेत्री से उनका विवाह हो गया। लीदिया अपने मन को समझाने लगी कि अब उसे उनके बिना ही जीना होगा। परन्तु प्रेम की आग क्या बुझाए बुझ सकती है? 'भूले-बिसरे पत्र' नामक अपनी कहानी में लीदिया ने आख़िरकार अपने उद्गार इन शब्दों में व्यक्त किए -- ***"तुम्हारे बिना, तुम्हारी ख़बर पाए बिना जीना एक पराक्रम नहीं, तपस्या है। कितना सौभाग्यशाली, कितना सुखमय होता है वह क्षण जब मेरी यादों में तुम्हारी आवाज़, मेरे होंठों पर तुम्हारे चुम्बन की अनुभूति उभर आती है... रात-दिन मेरे मन में बस तुम्हारा ही ख़याल रहता है"।***

यह कहानी चेख़फ़ ने भी पढ़ी। भला, यह बात उनकी समझ में कैसे न आती कि ये पँक्तियाँ लीदिया ने किसको सम्बोधित करके लिखी हैं? वे सब कुछ समझ गए, लीदिया के मन की सारी बात उन्होंने सुन ली और उसके जवाब में लिखी अपनी कहानी -- प्रेम की बातें। अपने मन की सारी बात चेख़फ़ ने इस कहानी के नायक के मुँह से कहलवा दी -- ***"उसके लिए मेरे प्रेम में आत्मा की सारी गहराई और कोमलता थी, परन्तु मैं अपने से हर समय यह सवाल पूछता था, यदि हममें अपने प्रेम पर विजय पाने की शक्ति नहीं रही तो इस प्रेम का अन्त क्या होगा? मैं इसकी कल्पना भी नहीं कर सकता था कि मेरे मन में गहरा बसा यह उदासी भरा शान्त प्रेम सहसा उसके पति और बच्चों की ज़िन्दगी को तबाह कर देगा, इस पूरे घर की सुखमय जीवनचर्या को मटियामेट कर देगा।"***

लीदिया अविलोवा ने चेख़फ़ को अन्तिम प्रेम-पत्र 1904 में लिखा था| उसी वर्ष चेख़फ़ की मृत्यु हो जाने से उन दोनों को अपने हृदय में निरन्तर चलने वाले पीड़ादायी संघर्ष से और जीवन की परिस्थितियों से जूझने की विवशता से मुक्ति मिल गई। लीदिया के मन में सदा यही धुकधुकी लगी रहती थी कि उन दोनों में से वही पहले यह संसार छोड़कर जाएगी, किन्तु जीवन ने कुछ और ही लिखा था। उस दिन

अविलोव परिवार के यहाँ मेहमान आने वाले थे। लीदिया के पति ने लीदिया के पास आकर बताया कि चेख़फ़ का देहान्त हो गया है और फिर अपनी पत्नी से सख़्ती से कहा कि कोई विलाप नहीं होना चाहिए। एक-दूसरे से सच्चे दिल से इतना गहरा प्रेम करने वाले चेख़फ़ और लीदिया अपना जीवन बदलने और एक-दूसरे के होकर जीने का फैसला क्यों नहीं कर पाए? ऐसा नहीं लगता कि किन्हीं बाहरी सामाजिक कारणों ने उन्हें इसके लिए विवश किया हो। बस, एक बार बातों-बातों में लीदिया ने कहा था -- यों नाता तोड़ने पर कोई न कोई तो दुखी होगा ही। सामाजिक जीवन-व्यवस्था के बारे में चेख़फ़ का नज़रिया बहुत व्यापक था तो भी उन्होंने रिश्ता तोड़ने का कदम नहीं उठाया। वह ऐसा कतई नहीं कर सकते थे। उनके लिए नैतिकता के नियम तोड़ने का अर्थ था जीवन का सामंजस्य, उसका सौन्दर्य भंग करना। चेख़फ़ उन बुद्धिजीवी रूसियों की पीढ़ी के ही थे जो जीवन को उसकी सम्पूर्णता और सामंजस्य में ग्रहण करते थे। इसके बाद फिर लीदिया ने पूरे 39 वर्ष इस धरती पर चेख़फ़ के बिना बिताए। पति से उनका तलाक हो गया। तीनों बच्चे बड़े हो गए, तीनों ने अपना-अपना परिवार बसा लिया। लीदिया ने "मेरे जीवन में चेख़फ़" शीर्षक से संस्मरण लिखे, जो आज हमें उस महान रूसी लेखक की के बारे में बताते हैं। जीवन के अन्तिम वर्ष लीदिया ने पूर्ण एकांत में बिताए।





प्रेमचन्द की बाल कहानियाँ:
बाल कहानियों और कहानियों के संदर्भ में कुछ निजी नोट्स

--प्रो. दिविक रमेश

अपने इस आलेख का अरम्भ मैं एक उद्धरण से करना चाहूंगा । रमेश आज़ाद: (किशोर साहित्य की संभावनाएं, सम्पादक: देवेन्द्र कुमार देवेश, पृ० 178): "बाल साहित्य की यथास्थिति पर विचार भारत में हिन्दी साहित्य में खड़ी बोली के विकास से करना पड़ेगा। इससे पहले संस्कृत की बालोपयोगी और किशोरोपयोगी रचनाएं हमारे यहाँ थीं-जिनमें कथासरित्सागर, पंचतन्त्र, हितोपदेश, जातक कथाएं, ईसप की कहानियाँ आदि थीं। उन्नीसवीं सदी तक यूरोप का प्रभामंडल भी व्याप गया था । राबिन्सन क्रूसो, डेविड कॉपरफील्ड, सिन्दबाद आदि पुस्तकों की किशोरोपयोगी कहानियों से भारतीय बच्चे परिचित हो चुके थे। हमारे यहाँ भी इसका असर पड़ रहा था और इस तरह के साहित्य का सृजन होने लगा था। संस्कृत और अंग्रेजी पुस्तकों के ज़ोर-शोर से अनुवाद हुए । हिन्दी खड़ी बोली तब अपने विकास की ओर अग्रसर ही थी ।फिर भी भारतेन्दु हरिश्चन्द्र सत्य हरिश्चन्द्र औ र अन्धेर नगरी चौपट राजा जैसी नाट्य कृतियां हमारे किशोरों के लिए लिख रहे थे, जो शिक्षाप्रद तो थीं ही, सामाजिक चेतना को उजागर करनेवाली रचनाएं भी थीं । ....भारतेन्दु युग के तत्कालीन अनेक लेखकों ने अपने रचनात्मक सहयोग से न केवल खड़ी बोली की प्राण-प्रतिष्ठा में सहयोग दिया, अपितु उन्होंने बालोपयोगी, किशोरोपयोगी और शिक्षाप्रद रचनाएं प्रचुर मात्रा में लिखीं । प्रतापनारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट आदि अनेक विद्वान हैं , जिनके योगदान को भुलाया नहीं जा सकता। द्विवेदी युग तक आते-अते यह धारा काफ़ी विस्तृत और विकसित हुई। **प्रेमचन्द** के ज़माने में ख़ुद प्रेमचन्द, ज़हूरबख्श, सुदर्शन जै से कहानीकारों की अनेक कहानियां आईं, जिनमें आज भी प्रेमचन्द की कहानी 'ईदगाह' को कोई भुला नहीं सकता। आज भी अनेक ऐसे रचनाकार हैं, जिनका योगदान इतिहास में मील का पत्थर साबित होगा । बाल साहित्य और किशोर साहित्य के सृजन, सम्पादन और प्रयोगों की दिशा में मौलिक उद्भावनाओं का समावेश करने वाल हरिकृष्ण देवसरे हैं ....। इसके साथ ही श्रीप्रसाद, विभा देवसरे, प्रकाश मनु, प्रयाग शुक्ल, देवेन्द्र कुमार, दिविक रमेश, सुरेन्द्र विक्रम, मधु पंत, श्याम सुशील सरीखे अनेकानेक लेखक हैं , जिनका योगदान बाल साहित्य और किशोर साहित्य में भुलाया नहीं जा सकता ।" इसके साथ ही जयप्रकाश भारती जी के मत का सहारा लेकर यह भी कहा जा सकता है कि जहाँ तक बालक की पहली पुस्तक का प्रश्न है, तो वह 1623 ई0 में जटमल द्वारा लिखित 'गोरा बादल की कथा' मानी जाती है। मिश्र बंधुओं ने कथा का गद्य में कहा जाना मानते हुए पुस्तक की भाषा में खड़ी बोली का प्राधान्य माना है। इस कृति में मेवाड़ की महारानी पद्मावती की रक्षा करने वाले गोरा-बादल

की कथा है। उपर्युक्त मत यहाँ देने का आशय इतना भर है कि हल्के से बताया जाए कि हिन्दी बाल-साहित्य में कहानी या गद्य लेखन का संकुचित सा, विशेष रूप से पूर्वपीठिकानुमा परिदृश्य क्या है।

नि:संदेह जहाँ तक हिन्दी में बाल कहानियों के उदय का प्रश्न है वह भारतेन्दु युग से ही मान लिया गया है। इस युग में एक ओर अनूदित कहानियाँ मिलती हैं जिनमें संस्कृत कहानियाँ भी सम्मिलित हैं तो दूसरी और कुछ मौलिक कहानियाँ भी उपलब्ध हो जाती हैं। शोध के अनुसार यह भी मान लिया गया है कि शिवप्रसाद सितारे हिन्द ने सबसे पहले "राजा भोज का सपना", "बच्चों का इनाम", और "लड़कों की कहानी" जै सी मौलिक कहानियाँ लिखीं । वस्तुत: १९वीं शताब्दी में अंग्रेजी बालसाहित्य की प्रगति का प्रभाव हिन्दी साहित्य पर भी पड़ा। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में कहा जाए तो -"भारतेन्दु युग में अनेक लेखक भरतेन्दु हरिश्चन्द्र से प्रभावित थे। उन्होंने तत्कालीन साहित्यिक प्रवृत्तियों को ही नहीं स्वीकार किया, बल्कि साहित्य की विभिन्न विधाओं को समृद्ध किया, जिनमें **बाल साहित्य** भी एक थी ?" लेकिन जहाँ तक हिन्दी बाल कहानी में विशिष्टता के प्रारम्भ का का प्रश्न है उसके लिए हमें **प्रेमचन्द** को ही याद करना होगा । सच है कि उनकी अनेक कहानियों में पहली बार बाल-मन का प्रवेश हुआ भले ही वे प्राथमिक तॊर पर बड़ों के लिए लिखी कहानियाँ ही क्यों न हों । परमानन्द श्रीवास्तव के इस मत से सहमत हुआ जा सकता है कि "प्रेमचन्द बड़ी संवेदना के लेखक हैं , उनके यहाँ सबके लिए साहित्य मिल जाता है - बच्चों के लिए साहित्य मिल जाएगा, किशोरों के लिए भी मिल जाएगा ।'गुल्ली डंडा' किशोर भी मज़ा लेकर पढ़ेगा, बड़े लोग भी पढ़ सकते हैं ।" प्रेमचन्द की ईदगाह आदि कितनी ही कहानियाँ हैं बालकों और किशोरों के मनोविज्ञान का सूक्ष्म चित्रण हुआ है । इस रूप में प्रेमचन्द को हम हिन्दी में बाल कहानी का सच्चा मौलिक रूप प्रस्तुत करने वाला पहला लेखक कह सकते हैं । बल्कि आगे संभव हुई बाल कहानी की परम्परा के लिए भी प्रेमचन्द को टटोला जा सकता है।

अभी तक हमने थोड़े-बहुत उदाहरणॊं के द्वारा यह जाना कि मूलत: बड़ों के लिए लिखी गई प्रेमचन्द की कहानियों में से अनेक ऐ सी कहानियाँ भी हैं जिन्हें हम बाल कहानी के थैले में डाल सकते हैं । ऐसा हुआ भी है । मसलन साहित्य अकादमी ने 'प्रेमचन्द की चुनिन्दा कहानियाँ (दो भाग) प्रकाशित किए हैं जिनमें 17 कहानियाँ हैं जो मूलत: बड़ों के लिए लिखी गई हैं लेकिन उन्हें यहँ प्रस्तुत किया गया है बच्चों के लिए। इसी प्रकार नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया द्वारा प्रकाशित ऐसी ही पुस्तक में भी ऐसा ही किया गया है जबकि सम्पादक को

प्रेमचन्द की उन तमाम कहानियों के बारे में भी जानकारी रही प्रतीत होती है जो मूलत: बच्चों के लिए ही लिखी गई हैं । ऐसी कहानियों के संबंध में सम्पादक का कहना है -"उन्हें इस संकलन में लेने का विशेष कारण यह है कि उन कहानियों का बच्चों से बरसों से संबंध

रहा है। पाठ्य-पुस्तकों तथा अन्यत्र, इन कहानियों को बचपन में पढ़कर कई पीढ़ियां बड़ी हुई हैं और उनकी छाप मन पर आज भी है। यह सत्य स्वीकार करना होगा कि प्रेमचंद को अधिकांश बाल पाठकों ने अपनी पाठ्य-पुस्तकों में उनकी कहानियां पढ़कर ही जाना और याद रखा। बाद में पठन-रुचि वालों ने उनका साहित्य बड़े होकर पढ़ा। इस संकलन में ये वही कहानियां हैं जिनके द्वारा प्रेमचंद ने बच्चों की कई पीढ़ियों में मानवीय संवेदनाओं के साथ मानवता, न्याय-अन्याय, नैतिकता और सामाजिक आचार-व्यवहार से जुड़े मूल्यों और सामाजिक रिश्तों की महत्ता का संदेश पाठकों को दिया।" लेकिन मूलत: बड़ों के लिए लिखी गई सभी कहानियों को हू ब हू बच्चों के लिए परोसे जाने को मैं, विनम्रता के साथ कहना चाहूंगा, उचित नहीं मानता । अपने अनुभव से कहना चाहूंगा कि उनमें अनेक ऐसे स्थल देखे जा सकते हैं जिनकी बाल कहानी के रूप में कोई आवश्यकता नहीं जान पड़ती । मसलन "नमक का दारोगा" को ही लें । इसका टिप्पणीनुमा प्रारम्भ ही मेरी नगाह में, बच्चों की दृष्टि से फ़ालतू है । बाल कहानी के रूप में अच्छा होता यदि कहानी कुछ यूं शुरु होती--"एक थे वंशीधर । उन्हें नौकरी की ज़रूरत थी । उनके पिता चाहते थे कि वे ऐ सी नौकरी करें जिसमें ऊपर की आय हो। ...." कहने का तात्पर्य यह है कि प्रेमचन्द की अनेक कहानियों में यह गुण है कि उन्हें संपादित करके या उनका पुनर्लेखन करके उन्हें उत्कृष्ट बाल कहानियाँ बनाया जा सकता है । कहानियाँ ही नहीं प्रेमचन्द के उपन्यासों के भी किशोर संस्करण निकाले जा सकते हैं बल्कि निकाले जाने चाहिए । अन्य बड़े लेखकों के संदर्भ में भी यही कहा जा सकता है।

आगे बढ़ने से पूर्व साहित्य और बालक के बारे में प्रेमचन्द के विचारों का जान लेना अछा रहेगा क्योंकि उनमें उनकी दृष्टि के दर्शन होते हैं और वह उनके साहित्य और बाल साहित्य में भी अनुस्यूत नज़र आती है । सभापति के पद से प्रगतिशील लेखक संघ के पहले अधिवेषण में उन्होंने कहा था -‘‘हमारी कसौटी पर वही साहित्य खरा उतरेगा जिसमें उच्च चिन्तन हो, स्वाधीनता का भाव हो, सौंदर्य का सार हो, सृजन की आत्मा हो, जीवन की सचाइयों का प्रकाशन हो–जो हममें गति, संघर्ष और बेचैनी पैदा करे, सुलायें नहीं क्योंकि अब और सोना मृत्यु का लक्षण है।’’ इससे पूर्व हंस के एक संपादकीय में बच्चे को लेकर उनका विचार था -"—‘बालक को प्रधानतः ऐसी शिक्षा देनी चाहिए कि वह जीवन में अपनी रक्षा आप कर सके। बालकों में इतना विवेक होना चाहिए कि वे हर एक काम के गुण-दोष को भीतर से देखें।’

अच्छी बात यह है कि बाद के समय में ही सही, प्रेमचन्द ने बच्चों के लिए विशेष रूप से ऐसी कहानियाँ लिखीं जो मूलत: बच्चों के ही लिए हैं। आज उनका समग्र बाल साहित्य उपल्ब्ध है । एक ही जिल्द में देखना हो तो डॉ कमल किशोर गोयनका द्वारा संपादित पुस्तक "प्रेमचन्द: बाल-साहित्य समग्र" को देखा जा सकता है जिसका प्रकाशन दिल्ली के मेधा बुक्स ने किया है । प्रेम्चन्द की बाल-साहित्य की 7 पुस्तकें हैं। इनमें "जंगल की

कहानियाँ" और "कुत्ते की कहानी" सर्वाधिक प्रसिद्ध हैं जो सृजनात्मक साहित्य के अन्तर्गत आती हैं। कुते की कहानी एक लम्बी कहानी है जिसे बाल-उपन्यास कहना अधिक उपयुक्त होगा। साथ ही महापुरुषों को लेकर उनका बालपोयोगी जीवनी साहित्य मिलता है । ऐसे साहित्य को हम जानकारी पूर्ण साहित्य भी कह सकते हैं । उनकी एक विशिष्ट पुस्तक है - राम चर्चा । पहले यह उर्दू में प्रकाशित हुई थी। इस पुस्तक की भूमिका में प्रेमचन्द ने लिखा, "हिन्दुओं में दो ऐसे महापुरुष हुए हैं , जिन्हें ईसवर का अवतार माना जाता है -एक कृष्ण और दूसरे हैं राम। ...यह रुतबा रामचन्द्र जी को कै से हासिल हुआ, आज हम तुम्हें वही किस्सा कहते हैं। दिल लगाकर पढ़ो । हमें उम्मीद है कि इस लासानी (अद्वितीय) बुजुर्ग के हालात ध्यान से पढ़ोगे और उनसे सबक हासिल करोगे ।" रामचन्द्र को लेकर इस प्रकार की पुस्तक कदाचित पहली बार लिखी गई थी जिसकी प्रशंसा गांधी जी ने भी की थी। ध्यान देने वाली बात यह भी है कि प्रगतिशील विचारों के प्रेमचन्द ने रामचन्द्र को महापुरुष ही माना है । गोर्की आदि की तरह प्रेमचन्द का भी बालक को लेकर किया गया चिन्तन बहुत महत्त्वपूर्ण है । प्रेमचन्द की बाल-कृतियां इस प्रकार हैं : माहात्मा शेख सादी, राम चर्चा, जगंल की कहानियां, कुत्ते की कहानी, दुर्गादास और क़लम, तलवार और त्याग (दो भाग) ।

जंगल की 12 कहानियों को पढ़ें तो पाएंगे कि ये जंगल के प्राणियों से जुड़ी कहानियाँ हैं । शीर्षक हैं: शेर और लड़का, बनमानुष की दर्दनाक कहानी, दक्षिण अफ्रीका में शेर का शिकार, गुब्बारे का चीता, पागल हाथी, साँप की मणि, बनमानुष का खानसामा, मिट्ठू, पालतू भालू, बाघ्ह की खाल, मगर का शिकार, और जुड़वा भाई । छोटे-छोटे आकार की हैं। ये निरी पशु-पक्षियों की कहानियाँ नहीं हैं । अंतत: ये मानवीय संवेदनाओं का ही साक्षात कराती हैं । मज़ेदार बात यह है कि इनमें जानवर पात्र और मानवीय पात्र दोनों की ही भूमिका अपने अनिवार्य रूप में है । बालक और मनुष्य के ही नहीं बल्कि, लगने लगता है , कि जानवरों के मनोविज्ञान को भी प्रेमचन्द बखूबी समझते थे। जानवरों के मन की बातों की ऐसी पकड़ औ र उसकी अभिव्यक्ति साहित्यकारों में दुर्भल ही होती है । अक्सर तो जानवरों का मानवीयकरण ही कर दिया जाता है । लेकिन प्रेमचन्द जानवरों को जनवरों के रूप में ही मौजूद रखते हुए उनके अन्तर्मन को बाहर लाने में सक्षम नज़र आते है भले ही उन्हें वाणी मानवीय पात्रों की सी दी गई हो । मूलत: बड़ों के लिए लिखी कहानियों में "दो बैलों की कथा" में यही कमाल उजागर हुआ है । एक कुत्ते की कहानी में भी ऐसा ही देखा जा सकता है। ऐसी कहानियां जहां एक ओर पशु जगत से परिचित कराती हैं वहीं पशुओं के प्रति संवेदनशील बनाने में भी कारगर सिद्ध होती हैं। पंचतंत्र के कहानी-शिल्प से ये कहानियां हट कर हैं। कभी-कभी सोचता हूं कि "प्रेमचन्द के जानवरों का मनोविज्ञान" विषय पर भी शोध होना चाहिए। जंगल की कहानियो के विस्तार में जाने से पूर्व यह भी बताना चाहूंगा कि प्रेमचन्द की इन कहानियों में साहस और रोमांच अधिक मिलता है। शिकार करना हावी है। अत: इन्हें शिकार की कहानियाँ भी कहा जा सकता है। मुगली और रोबिन्हुड की भी याद आ

जाती है। इन्हें बड़ों को भी अवश्य पढ़ना चाहिए। यहीं यह भी बता दूं कि आज जबकि जानवरों के शौकिया शिकार की बात गले से नहीं उतरती ऐसे में कम से कम प्रेमचन्द की एक कहानी "मगर का शिकार" में एक क्रूर यथार्थ भी सामने आता है । दिक्कत यह है कि इस क्रूर यथार्थ को लेखकीय स्वीकृति भी मिल गई है जो छोटे-बड़े किसी को भी अस्वीकार्य होगी। उदाहरण के लिए यह वर्णन देखिए:"मैं पार जाना भूल गया । वहीं मगर का शिकार देखने के लिए ठहर गया। देखा कि लोगों ने उस बकरी के बच्चे को एक पेड़ के नीचे बांध दिया । वह पेड़ दरिया से कुल बीस गज़ पर था। इसके बाद उन्होंने एक हाँडी से कुछ जोंक निकाले और उन्हें बकरी के बच्चे पर लगा दिया। जब बच्चा में-में करने लगा तो हम लोग एक पेड़ की आड़ में छिप गए और मगर का इंतज़ार करने लगे ।" बेशक यह कहानी एक निर्दोष मगरमच्छ के शिकार करने की एक दिलचस्प जानकारी रोमांचकारी किस्से की शैली में देती है लेकिन इसके अतिरिक्त कुछ नहीं करती। बल्कि अपने चित्रण में क्रूर हो उठती है । अत: इसे अप्रेमचन्दीय कहानी ही कहा जा सक्ता है । यह अपवाद स्वरूप ही है। यहीं एक दूसरी कहानी देखिए' मिट्ठू''। यह एक बंदर है। मिट्ठू सरकस का जानवर है। गोपाल को वह बहुत अच्छा लगता है । वह उसे मटर, केले आदि खूब खिलाता है । सरकस के जाने की बात सुनी तो गोपाल उदास हो जाता है। माँ से से मांगता है ताकि बंदर खरीद कर ला सके। मालिक अपने बंदर को अभी बेचना नहीं चाहता । गोपाल मिट्ठू को इधर-उधर ढूंढने लगा लेकिन बेध्यानी में एक चीते के पिंजरे के पास जा पहुंचा । चीता उसके हाथ को पकड़ेन ही वाला था कि मिट्ठू ने खुद जख्मी होकर उसे बचा लिया । मिट्ठू बेहोश तक हो गया। उसका इलाज हुआ औ र वह अच्छा हो गया । गोपाल उसके पास रोज़ आता औ र प्यार करता। आखिर सरकस के मालिक ने मुफ्त में ही बंदर गोपाल को दे दिया। "दोनों खेलते-कूदते घर पहुंच गए।" जानवर के प्रति मनुष्य की औ र मनुष्य के प्रति जानवर की गहरी संवेदना, आत्मीयता, मित्रता, कृतज्ञता को यह कहानी बखूबी बच्चे की दुनिया में आत्मसात करने में सक्षम है। और वह भी बिना बड़बोली हुए । बिना शिक्षा देने के अतिरिक्त भार से बोझिल हुए। एक कहानी जुड़वां भाई का जिक्र भी करना चाहूंगा। यह कहानी एक ऐ सी औ रत की कहानी से शुरु होती है जो किसान की पत्नी है और किसान उसे मूर्ख मर्द की तरह बत बात पर पीटता था । इस औरत के जुड़वां बच्चे हुए । एक को भालू उठा ले गया। यहां भालू का चित्रण पढ़ने लायक है: " भालू उस बच्चे को ले जाकर अपनी मांद में घुस गाया और बच्चों के पास छोड़ दिया । बच्चे को हँसते-खेलते देखकर भालू के बच्चों को न मालूम कैसे उस पर तरस आ गया। पशु कभी-कभी बालकों पर दया करते हैं । यह लड़का भालू के बच्चों के साथ रहने लगा । " सच तो यह है कि प्रेमचन्द की ये कहानियां कहीं से भी उपदेश या शिक्षा के अतिरिक्त भार से बोझिल नहीं हैं । और अन्तत: अपने सुखद अन्त से विभोर करने वाली भी हैं । कहीं-कहीं आदर्श का स्वर ज़रूर फूटा है लेकिन अधिकतर स्वाभाविक रूप मे । साहस, विपत्ति में भी सूझबूझ से काम लेना आदि इन कहानियों में भरपूर है । मूसीबतों का गहरा और परेशान कर देने वाला चित्रण भी है तो

उनसे निकलने के सूझबूझ भरे साहसी रास्ते भी। वस्तुत: ये कहानियां बालक के आत्मविश्वास को जागृत करने में नायाब भूमिका निभा सकती हैं । ज़मीनी पकड़ बराबर बनी रहती है , कोरी आसमानी उड़ानें या कहें दूर की कौड़ियां कम ही हैं । न के बराबर । अत: ये केवल चौंकाती नहीं है । "गुब्बारे का चीता" कहानी में कल्पना की उड़ान है । बलदेव और चीता दोनों ही उड़ेते हुए गुब्बारे पर चढ़ गए थे । आगे की कहानी दिलचस्प है । लेकिन यह कहानी भी और कहानियों की तरह जिज्ञासा औ र विश्वसनीयता को साथ लेकर चलती है। प्रेमचन्द की कुछ कहानियों को संकुचित और आंशिक अर्थ में वैज्ञानिक कहानियां भी कहा जा सकता है क्योंकि लेखकीय दृष्टि वैज्ञानिक है । उनकी एक कहानी है-"साँप की मणि" । इसका अंत देखिए जिसके द्वारा मणि के रहस्य को खोला गया है -"दर्याफ्त करने पर मालूम हुआ कि यह एक किस्म का पत्थर है , जो गर्म होकर अँधेरे में जलने लगता है । जब तक वह ठंडा नहीं हो जाता, वह इसी तरह रोशन रहता है । साँप इसे दिन-भर अपने मुँह में रखता है , ताकि यह गर्म रहे । रात को वह इसे किसी जंगल में निकालता है और इसकी रोशनी में कीड़े-मकोड़े पकड़कर खाता है ।"

कुत्ते की कहानी, जैसा कह चुका हूं वस्तुत: बाल-उपन्यास ही है । संक्षेप में इतना ही कि 10 भागों में बँटी यह कहानी एक माँ के जाए दो कुत्तों की कहानी है जिनके नाम कल्लू और जकिया है । अपनी बहादुरी और भाग्य से कल्लू (जो कथावाचक भी है) साहबी में पलता है अत: सुख सुविधाओं से सम्पन्न है । अपने करिश्माई कारनामों के कारण उसे लोग देवता का दर्जा देने लगते हैं । प्रेमचन्द कुत्ते के मुँह से कहलावाते हैं ,"शायद सब समझ रहे थे, यह कोई देवता है और इस रूप में संसार का कल्याण करने आया है । जेण्टलमैन लोग देवता का अर्थ तो न समझते थे. पर कोई गैर-मामूली, चमत्कारी जीव अवश्य समझ रहे थे। कई देवियों ने तो मेरे पांव भी छुए । मुझे उनकी मूरख्ता पर हँसी आ रही थी । आदमियों में भी ऐसे-ऐसे अक्ल के अन्धे मौजूद हैं ।" साहस, रोमांच औ र सूझबूझ की तरकीबों से भरी यह कहानी एक ऋपक के रूप में पढ़ी जा सकती है लेकिन बालक इसे कुत्ते की कहानी के रूप में ही पढ़ेंगे औ र आनन्द उठाएंगे । कहानी का अंत प्रेमचन्द के सवतंत्रता के सिद्धान्त की पुष्टि करता है -"मगर अब यह मान-सम्मान मुझे बहुत अखरने लगा है । यह बड़प्पन मेरे लिए कैद से कम नहीं है । उस आज़ादी के लिए जी तड़पता रहता है, जब मैं चारों तरफ मस्त घूमा करता था । न जाने आदमी साधु बनकर मुफ्त का माल कै से उड़ाता है ! मुझे तो सेवा करने में जो आनन्द मिलता है , वह सेवा पाने में नहीं मिलता, शतांश भी नहीं ।"

विशेष रूप से बालकों के लिए लिखी गई इन कहानियों की भाषा-शैली भी बहुत सहज-सरल है । बाल-सुलभ प्राय: छोटे-छोटे सरल वाक्य हैं । लिख दूं कि आगे चलकर छोटे-छोटे वाक्यों वाला गुण जयप्रकाश भारती जी कहानियों में देखते ही बनता है । वर्णन शैली में लिखी गई

इन कहानियाँ बालक को अपने से जोड़ने में सफल हैं और इनमें वाचिकता का या कहन शॆली का भी अद्‌भुत गुण है । लोककथाएं न होते हुए भी इनमें लोककथाओं का सा मज़ेदार स्वाद है। मूलत: बड़ों के लिखी गई कुछ कहानियों के प्रारम्भ करने की टिप्पणीनुमा शॆली यहां भी मिलती हैलेकिन कहानी क आकार के अनुपात में। बीच-बीच में भी लेखकीय सुक्तियां मिल जाती हैं। अच्छी बात यह है कि वे अधिक व्यवधान पैदा नहीं करतीं ।

जैसा ऊपर संकेत दिया जा चुका है मैं प्रेमचन्द की मूलत: बड़ों के लिए लिखी गई कहानियों को हू ब हू उसी रूप में बाल कहानियों के रूप में बालकों को परोसने के पक्ष में नहीं हूं । यह कुतर्क ही है कि क्योंकि हम उन कहानियों को बच्चों को पाठ्‌यक्रम रख कर या यूं भी पढ़ाते आए हैं अत: उन्हें बाल कहानियाँ मान लिया जाए । मजबूरी को प्रतिमान नहीं बनाया जाना चाहिए । निश्‍चित रूप से, बाल कहानी की दृष्टि से तॆयार किए गए उनके सम्पादित रूप या पुनर्लिखित रूप ही बला कहानियों की श्रेणी में लिए जाने चाहिए । मूलत: बड़ों के लिए लिखी गईं जिन कहानियों को प्राय: बाल कहानियों के रूप में भी गिना जाता है उनमें बोध, नमक का दारोगा, स्वत्व-रक्षा, नादान-दोस्त, सत्याग्रह, नेउर, सुजान भक्त, सुभागी, कोई दु:ख न हो तो बकरी ख़रीद लो, बड़े भाई साहब, ईदगाह, गुल्ली-डण्डा, दो बै लों की कथा, परीक्षा, बड़े घर की बेटी, रामलीला, कजाकी आदि को सम्मिलित किया जाता है । नि:संदेह इन कहानियों में बाल-मनोविज्ञान की दृष्टि से सफल चित्रण मिलता है और बाल मनोविज्ञान को समझने के लिए ये ऐ सी कहानियाँ हैं जो बड़ों के लिए महत्तवपूर्ण भी हैं । यही नहीं इनमें बालकों के लिए प्रेरणादायी सामग्री भी है । उनमें बच्चों में नैतिकता, साहस, स्वतंत्र-विचार, अभिव्यक्ति और आत्मरक्षा की भावना जगाने वाले तत्त्व भी मौजूद हैं। कुछ कहानियां ऐ सी भी हैं जिनमें बड़ी आयु के हो जाने पर बचपन को याद किया गया है। फिर भी अपने अखण्ड रूप में वे बच्चों के लिए बाल कहानियां नहीं कही जा सकतीं। हां उन्हें बाल-कहानियां या किशोर कहानियां बनाया जा सकता है । ठीक है अभाव के चलते ऐ से उदाहरण मिल जांएगें जिनसे यह सिद्‌ध किया जा सके कि हिन्दी ही नहीं अन्य भाषाओं में भी ऐ सी कालजयी कृतियां हैं जिन्हें बड़ी आयु के पाठकों के लिए लिखा गया था और वे बालकों की पसन्द की भी हैं, लेकिन आज जब हिन्दी में बाल-कहानी अपने उत्कृष्ट रूप में लिखी जा रही है तो यह भ्रम क्यों फैलाया जाए कि बड़ी आयु के पाठकों के लिए लिख कर भी कोई लेखक बाल कहानीकार कहलाया जा सकता है । यदि प्रेमचन्द भी ऐसे भ्रम में आस्था रखते तो वे कदाचित "जंगल की कहानियां" जैसी बाल कहानियां न लिखते । आज ऐसी बाल-पत्रिकाएं भी देखी जा सकती हैं जिनमें बड़ों के लिए लिखी गई रचनाओं को बाल रचनाओं के रूप में प्रस्तुत कर दिया जाता है । प्रेमचन्द की "गुल्ली-डण्डा को ही लें । प्रारम्भ का एक बड़ा अंश निबंधनुमा अधिक है और उसे आसानी से निकाला जा सकता है । तो भी चिड़िया और चिड़िया के अण्डो को लेकर लिखी गई 'नादान दोस्त' जैसी कहानी (लगभग) बाल कहानी कही जा सकती है ।

अच्छी बात है कि आज जब प्रेमचन्द के साहित्यिक योगदान की बात आती है तो प्राय:लिखा यही जाता है कि कुल 15 उपन्यास, 300 से अधिक कहानियां, 3 नाटक, 10 अनुवाद, **7 बाल पुस्तकें** तथा हज़ारों पृष्ठों के लेख, सम्पादकीय भाषण, भूमिका, पत्र आदि कि रचना की । इस संदर्भ शायद ही कोई अपवाद हो ।

संक्षिप्त परिचय

दिविक रमेश-हिंदी के वरिष्ठ एवं प्रतिष्ठित कवि, बाल साहित्यकार ऑर अनुवादक हैं । इनकी अब तक 60 से ऊपर पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं जिनमें रास्ते के बीच, गेहूं घर आया है , बाँचो लिखी इबारत, माँ गाँव में है आदि 9 कविता संग्रह, काव्य-नाटक खण्ड-खण्ड अग्नि, अनुवाद और आलोचना (कोरियाई कविता-यात्रा, संवाद भी विवाद, समझा परखा' हिंदी बाल-साहित्य: कुछ पड़ाव आदि) की अनेक पुस्तकें तथा लगभग 45 बाल साहित्य की पुस्तकेँ (एक सौ एक बाल कविताएं, समझदार हाथी: समझदार चींटी, लूल की सनक, अपने भीतर झाकों, बल्लू हाथी का बालघर आदि), सम्मिलित हैं।सोवियत लैंड नेहरू अवार्ड, हिन्दी अकादमी का साहित्यकार सम्मान,एन.सी.ई.आर.टी. का बाल राष्ट्रीय पुरस्कार, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान का सर्वोच्च बाल साहित्य भारती सम्मान आदि अनेक प्रतिष्ठित सम्मान/पुरस्कार मिल चुके हैं ।ये दिल्ली विश्वविद्यालय के प्राचार्य पद से सेवानिवृत है और एक लंबे समय के लिए कोरिया में अतिथि आचार्य के पद पर कार्य कर चुके हैं।अनेक देशों की यात्राएं कर चुके हैं।
जन्म: गाँव किराड़ी (दिल्ली), 6 फरवरी, 1946, **संपर्क:** बी-295, सेक्टर -20, नोएडा-201301, मो- 9910177099 divik_ramesh@yahoo.com



हिन्दी कहानी के पितामह, प्रेमचंद



प्रो. सी.बी.श्रीवास्तव 'विदग्ध'

प्रेमचंद, हिन्दी और उर्दू के महानतम भारतीय लेखकों में से एक हैं। उनका मूल नाम धनपत राय श्रीवास्तव था । विख्यात उपन्यासकार शरतचंद्र चट्टोपाध्याय ने उन्हें उपन्यास सम्राट कहकर संबोधित किया । प्रेमचंद ने हिन्दी कहानी और उपन्यास की एक ऐसी परंपरा का विकास किया जिसने पूरी शती के साहित्य का मार्गदर्शन किया। प्रेमचंद ने साहित्य की यथार्थवादी परंपरा की नींव रखी। उनका लेखन हिन्दी साहित्य की एक ऐसी विरासत है जिसके बिना हिन्दी के विकास का अध्ययन अधूरा होगा। वे एक संवेदनशील लेखक, सचेत नागरिक, कुशल वक्ता तथा सुधी संपादक थे। बीसवीं शती के पूर्वार्द्ध में, जब हिन्दी की तकनीकी सुविधाओं का अभाव था, उनका योगदान अतुलनीय है।

प्रेमचंद का जन्म ३१ जुलाई १८८० को वाराणसी के निकट लमही गाँव में हुआ था। उनकी माता का नाम आनन्दी देवी था तथा पिता मुंशी अजायबराय लमही में डाकमुंशी थे। उनकी शिक्षा का आरंभ उर्दू, फारसी से हुआ और जीवनयापन का अध्यापन से। पढ़ने का शौक उन्हें बचपन से ही लग गया। 13 साल की उम्र में ही उन्होंने तिलिस्मे होशरूबा पढ़ लिया और उन्होंने उर्दू के मशहूर रचनाकार रतननाथ 'शरसार', मिरजा रुसबा और मौलाना शरर के उपन्यासों से परिचय प्राप्त कर लिया । १८९८ में मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद वे एक स्थानीय विद्यालय में शिक्षक नियुक्त हो गए। नौकरी के साथ ही उन्होंने पढ़ाई जारी रखी १९१० में उन्होंने अंग्रेजी, दर्शन, फारसी और इतिहास लेकर इंटर पास किया और १९१९ में बी।ए। पास करने के बाद शिक्षा विभाग के इंस्पेक्टर पद पर नियुक्त हुए। सात वर्ष की अवस्था में उनकी माता तथा चौदह वर्ष की अवस्था में पिता का देहान्त हो जाने के कारण उनका जीवन संघर्षमय रहा। उनका पहला विवाह उन दिनों की परंपरा के अनुसार पंद्रह साल की उम्र में हुआ जो सफल नहीं रहा। वे आर्य समाज से प्रभावित रहे, जो उस समय का बहुत बड़ा धार्मिक और सामाजिक आंदोलन था। उन्होंने विधवा-विवाह का समर्थन किया और १९०६ में दूसरा विवाह अपनी प्रगतिशील परंपरा के अनुरूप बाल-विधवा शिवरानी देवी से किया। उनकी तीन संताने हुईं- श्रीपत राय, अमृत राय और कमला देवी श्रीवास्तव। १९१० में उनकी रचना सोजे-वतन (राष्ट्र का विलाप) के लिए हमीरपुर के जिला कलेक्टर ने तलब किया और उन पर जनता को भड़काने का आरोप लगाया। सोजे-वतन की सभी प्रतियाँ जब्त कर नष्ट

कर दी गईं। कलेक्टर ने नवाबराय को हिदायत दी कि अब वे कुछ भी नहीं लिखेंगे, यदि लिखा तो जेल भेज दिया जाएगा। इस समय तक प्रेमचंद ,धनपत राय नाम से लिखते थे। उर्दू में प्रकाशित होने वाली ज़माना पत्रिका के सम्पादक और उनके अजीज दोस्त मुंशी दयानारायण निगम ने उन्हें प्रेमचंद नाम से लिखने की सलाह दी। इसके बाद वे प्रेमचन्द के नाम से लिखने लगे। उन्होंने आरंभिक लेखन ज़माना पत्रिका में ही किया। जीवन के अंतिम दिनों में वे गंभीर रुप से बीमार पड़े। उनका उपन्यास मंगलसूत्र पूरा नहीं हो सका और लम्बी बीमारी के बाद ८ अक्टूबर १९३६ को उनका निधन हो गया।उनका अंतिम उपन्यास मंगल सूत्र उनके पुत्र अमृत ने पूरा किया।

प्रेमचंद आधुनिक हिन्दी कहानी के पितामह माने जाते हैं। यों तो उनके साहित्यिक जीवन का आरंभ १९०१ से हो चुका था , पर उनकी पहली हिन्दी कहानी सरस्वती पत्रिका के दिसंबर अंक में १९१५ में सौत नाम से प्रकाशित हुई और १९३६ में अंतिम कहानी कफन नाम से छपी । मरणोपरांत उनकी कहानियाँ मानसरोवर नाम से 8 खंडों में प्रकाशित हुई। कथा सम्राट प्रेमचन्द का कहना था कि साहित्यकार देशभक्ति और राजनीति के पीछे चलने वाली सच्चाई नहीं बल्कि उसके आगे मशाल दिखाती हुई चलने वाली सच्चाई है। यह बात उनके साहित्य में उजागर हुई है। १९२१ में उन्होंने महात्मा गांधी के आह्वान पर अपनी नौकरी छोड़ दी। कुछ महीने मर्यादा पत्रिका का संपादन भार संभाला, छह साल तक माधुरी नामक पत्रिका का संपादन किया, १९३० में बनारस से अपना मासिक पत्र हंस शुरू किया और १९३२ के आरंभ में जागरण नामक एक साप्ताहिक और निकाला। उन्होंने लखनऊ में १९३६ में अखिल भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ के सम्मेलन की अध्यक्षता की। उनकी अधिकांश रचनाएं मूल रूप से उर्दू में लिखी गई हैं लेकिन उनका प्रकाशन हिंदी में पहले हुआ। तैंतीस वर्षों के रचनात्मक जीवन में वे साहित्य की ऐसी विरासत सौप गए जो गुणों की दृष्टि से अमूल्य है और आकार की दृष्टि से असीमित।

प्रेमचन्द की रचना-दृष्टि विभिन्न साहित्य रूपों में प्रवृत्त हुई। बहुमुखी प्रतिभा संपन्न प्रेमचंद ने उपन्यास, कहानी, नाटक, समीक्षा, लेख, सम्पादकीय, संस्मरण आदि अनेक विधाओं में साहित्य की सृष्टि की। प्रमुखतया उनकी ख्याति कथाकार के तौर पर हुई और अपने जीवन काल में ही वे 'उपन्यास सम्राट' की उपाधि से सम्मानित हुए। उन्होंने कुल १५ उपन्यास, ३०० से कुछ अधिक कहानियाँ, ३ नाटक, १० अनुवाद, ७ बाल-पुस्तकें तथा हजारों पृष्ठों के लेख, सम्पादकीय, भाषण, भूमिका, पत्र आदि की रचना की लेकिन जो यश और प्रतिष्ठा उन्हें उपन्यास और कहानियों से प्राप्त हुई, वह अन्य विधाओं से प्राप्त न हो सकी। यह स्थिति हिन्दी और उर्दू भाषा दोनों में समान रूप से दिखायी देती है।

<u>प्रेम चंद के चर्चित कुछ उपन्यास</u>: सेवासदन १९१८, प्रेमाश्रम१९२२, रंगभूमि १९२५, निर्मला१९२५, कायाकल्प१९२७, गबन १९२८, कर्मभूमि १९३२, गोदान १९३६, मंगलसूत्र (अपूर्ण)

डॉ॰ कमलकिशोर गोयनका ने प्रेमचंद की संपूर्ण हिंदी-उर्दू कहानी को प्रेमचंद कहानी रचनावली नाम से प्रकाशित कराया है। उनके अनुसार प्रेमचंद ने कुल ३०१ कहानियाँ लिखी हैं जिनमें ३ अभी अप्राप्य हैं। प्रेमचंद का पहला कहानी संग्रह सोज़े वतन नाम से जून १९०८ में प्रकाशित हुआ। इसी संग्रह की पहली कहानी दुनिया का सबसे अनमोल रतन को आम तौर पर उनकी पहली प्रकाशित कहानी माना जाता रहा है। डॉ॰ गोयनका के अनुसार कानपूर से निकलने वाली उर्दू मासिक पत्रिका ज़माना के अप्रैल अंक में प्रकाशित सांसारिक प्रेम और देश-प्रेम (इश्के दुनिया और हुब्बे वतन) वास्तव में उनकी पहली प्रकाशित कहानी है। जीवन काल में उनके कुल नौ कहानी संग्रह प्रकाशित हुए- 'सप्त सरोज', 'नवनिधि', 'प्रेमपूर्णिमा', 'प्रेम-पचीसी', 'प्रेम-प्रतिमा', 'प्रेम-द्वादशी', 'समरयात्रा', 'मानसरोवर' दो भागो में , और 'कफन'। उनकी मृत्यु के बाद उनकी कहानियां 'मानसरोवर' शीर्षक से 8 भागों में प्रकाशित हुई। उन्होंने समाजसुधार, देशप्रेम, स्वाधीनता संग्राम आदि से संबंधित कहानियाँ लिखी हैं। उनकी ऐतिहासिक कहानियाँ तथा प्रेम संबंधी कहानियाँ भी काफी लोकप्रिय साबित हुईं। प्रेमचंद की प्रमुख कहानियों में ये नाम लिये जा सकते हैं- 'पंच परमेश्वर', 'गुल्ली डंडा', 'दो बैलों की कथा', 'ईदगाह', 'बडे भाई साहब', 'पूस की रात', 'कफन', 'ठाकुर का कुआँ', 'सद्गति', 'बूढी काकी', 'तावान', 'विध्वंश', 'दूध का दाम', 'मंत्र' आदि।

प्रेमचंद ने 'संग्राम' (1923), 'कर्बला' (1924), और 'प्रेम की वेदी' (1933) नाटकों की भी रचना की। ये नाटक शिल्प और संवेदना के स्तर पर अच्छे हैं लेकिन उनकी कहानियों और उपन्यासों ने इतनी ऊँचाई प्राप्त कर ली थी कि नाटक के क्षेत्र में प्रेमचंद को नाम नही मिला । प्रेमचंद एक संवेदनशील कथाकार ही नहीं, सजग नागरिक व संपादक भी थे। उन्होंने 'हंस', 'माधुरी', 'जागरण' आदि पत्र-पत्रिकाओं का संपादन करते हुए व तत्कालीन अन्य सहगामी साहित्यिक पत्रिकाओं 'चांद', 'मर्यादा', 'स्वदेश' आदि में अपनी साहित्यिक व सामाजिक चिंताओं को लेखों या निबंधों के माध्यम से अभिव्यक्त किया। ।

प्रेमचंद एक सफल अनुवादक भी थे। उन्होंने दूसरी भाषाओं के जिन लेखकों को पढ़ा और जिनसे प्रभावित हुए, उनकी कृतियों का अनुवाद भी किया। 'टॉलस्टॉय की कहानियां' (1923), गाल्सवर्दी के तीन नाटकों का 'हड़ताल' (1930), 'चांदी की डिबिया' (1931) और 'न्याय' (1931) नाम से अनुवाद किया। उनके द्वारा रतननाथ सरशार के उर्दू उपन्यास 'फसान-ए-आजाद' का हिंदी अनुवाद 'आजाद कथा' बहुत मशहूर है । समाज को अपने इस महान दार्शनिक, सम्वेदनशील ,परिवेश के सूक्ष्म निरीक्षक और उसे जनभाषा में सहज ग्राहय तरीके से अभिव्यक्त करने की कला में पारंगत लेखक पर गर्व है ।

प्रेमचंद की दृष्टि : नारी विमर्श



डॉ. बलजीत कुमार श्रीवास्तव
असिस्टेंट प्रोफेसर हिन्दी विभाग

आज का समय विमर्शों के दौर से ग्रसित है। नारी विमर्श, दलित अल्पसंख्यक विमर्श, आदिवासी विमर्श दिव्यांग आदि पर बहस हो रहा है। जो इस युग के ज्वलंत मुद्दे हैं। नारी विमर्श इसलिए अन्यतम है क्योंकि वह व्यवस्था सुधार की नहीं बल्कि परिवर्तन की अपेक्षा रखता है। यह सामाजिक विकास के लिए आवश्यक भी है क्योंकि समाज के स्वस्थ रहने के लिए समाज के सभी अंगों का ठीक रहना और काम करना जरूरी है। अगर देखा जाये तो वैदिक काल में नारी को विशेष धर्माधिकार प्राप्त थे 'नारियों को धार्मिक ऋचाओं की रचना करने योग्य समझा जाना इस बात का प्रयास है कि वे इस समय धार्मिक क्षमताओं से युक्त मानी जाती थीं।'[1] इसलिए नारी समाज का विकास देश एवं समाज के विकास के लिए नितांत आवश्यक माना जाता है। वर्तमान समय में नारी जीवन से जुड़े प्रश्नों पर व्यापक चर्चा हो रही है, ऐसा होना भी चाहिए क्योंकि समाज में इस हिस्से की इतिहास में बहुत अनदेखी हुई है। जहाँ पुरूष को प्रकृति रू^प से शारीरिक बल मिला वहीं नारी को दृढ़ता और शारीरिक सौन्दर्य। नारी संचालनकर्ता की धुरी है जहां समस्त जीवन संचालित होता है। 'वर्तमान स्वरू^प में नारी का अपने-अपने अधिकारों के प्रति संघर्ष आधुनिक युग की देन है।[2] "सामान्य धारणा है कि प्रारम्भ में नारी की स्थिति इतनी दयनीय नहीं थी। समाज में उसे पुरूष के समान अधिकार प्राप्त थे। मगर यह सम्पूर्ण सत्य नहीं है, क्योंकि यह समानता कुछ ही क्षेत्रों में थी। वास्तव में पुरूष सत्तामक समाज में वह द्वितीय श्रेणी की नागरिक ही थी।"[3] समाज ने तमाम बंधन स्त्री पर ही आरोपित कर रखे थे। बाल-विवाह, बहुपत्नी विवाह, अनमेल विवाह, सती प्रथा, विधवा पुनर्विवाह निषेध, दहेज प्रथा जैसी कुरीतियों ने नारी के जीवन को कष्ट दायक ही बनाया। मध्यकाल में तो वह पूरी तरह भोग्य पदार्थ बन गयी। सिर्फ शारीरिक एवं मांसलता प्रिय रह गयी। किन्तु भारतीय इतिहास में उन्नीसवीं सदी बहुत महत्त्व रखती है, सुधारवादी आन्दोलन इस सदी को विशिष्ट बनाते हैं। "उन्नीसवीं सदी में एक समय यह भी आया जब महिलाओं की भलाई-बुराई के मुद्दे प्रमुखता से उभरे और भारतीय महिलाओं की जीवन स्थिति में सुधार के प्रारंभिक प्रयास पुरूषों द्वारा किए गए। उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में इस काम को अंजाम दिया उनकी पत्नियों, बहनों, पुत्रियों और उनके संरक्षणाधीन लोगों ने क्योंकि नारी शिक्षा जैसे अभियानों से प्रभावित होकर ही ये सब आंदोलन में शामिल हुए। बीसवीं सदी के आरम्भ में महिलाओं के सवायत्त संगठन बनने शुरू हो गए तथा कुछ ही दशकों में मसलन तीस और चालीस के दशक तक नारी सक्रियता की एक विशेष श्रेणी का निर्माण हो गया। स्वाधीन भारत का संविधान 'लिंग समानता' की गारंटी देता है। अतः 1970 तक नारीवादी कार्यकलापों में अपेक्षाकृत शांति रही किंतु इसी दशक में जब 'लिंग समानता' के संवैधानिक आश्वासन का पाखण्ड खुलने लगा तो महिला आंदोलन में भी तेजी आई"[4] यही वह दौर है जिसमें कृष्णा सोबती पुष्पा, मैत्रेयी पुष्पा मृदुला गर्ग, उषा प्रियवंदा मृणाल पाण्डेय नमिता सिंह, सूर्यबाला आदि लेखिकाएँ अपनी सशक्त उपस्थिति दर्ज कराती हैं। स्त्री जीवन के अन्तर्मन, उसके संघर्ष से पाठकों को रू-बरू कराया और अधिकांश अभी भी करा रही हैं। लेकिन स्त्री और उससे जुड़े प्रश्नों पर जब भी विचार किया

जायेगा तो बीसवीं सदी के सबसे बड़े हिन्दी के लेखक प्रेमचंद की अनदेखी नहीं करनी चाहिए। प्रेमचन्द ने वास्तव में अपने रचनात्मक एवं वैचारिक लेखन-कहानी, उपन्यास, संपादकीय एवं लेख में नारी जीवन से जुड़े मुद्दों को प्रबल एवं सार्थक स्वर दिया है।

प्रेमचंद को स्त्री की क्षमताओं पर पूरा भरोसा था। उन्होंने नारी को अपने साहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है चाहे वह 'सेवासदन' की सुमन हो, 'कर्मभूमि' की सुखदा, 'निर्मला' की निर्मला, 'गबन' की जालपा और रतन, 'गोदान' की धनिया और मालती-नारी जीवन के विविध पक्षों से साक्षात्कार कराते हैं। उनके ये नारी चरित्र बेहद जीवन्त हैं, ये परिस्थितियों से संघर्ष करते दिखाई देते हैं। उन्होंने अपनी रचनाओं में नारी-जीवन से जुड़ी विविध समस्याओं-दहेज की समस्या, अनमेल विवाह, विधवा विवाह समस्या को संजीदगी के साथ उठाया है। उन्होंने तो वेश्या समस्या के लिए भी जिम्मेदार हमारी सामाजिक व्यवस्था और उसमें व्याप्त भ्रष्टाचार को ही ठहराया। उन्होंने स्त्री जीवन की समस्याओं को प्रस्तुत कर ही अपना पल्ला झाड़ नही लिया बल्कि उसका समाधान देने का प्रयास भी किया। उन्होंने अपनी रचनाओं में पुरूष द्वारा स्त्री के शोषण की तस्वीरे भी पूरी ईमानदारी के साथ प्रस्तुत की हैं। वास्तव में "केवल सामाजिक सन्दर्भ में ही नहीं स्त्री-पुरूष सम्बन्ध में निहित शोषक तत्व की पड़ताल के लिए भी प्रेमचन्द के ऋणी हैं।"[5]

प्रेमचंद केवल अपने रचनात्मक लेखन में ही नारी-जीवन से जुड़े विविध पहलुओं का उद्घाटन नहीं कर रहे थे बल्कि अपने संपादकीय लेखों और टिप्पणियों में भी स्त्री मुद्दों को उठा रहे थे। वे समाज को कबीर की तरह कटु लेकिन वास्तविकता का आभास करा रहे थे। वे समाज में व्याप्त स्त्री-पुरूष के लिए दोहरे मापदण्ड पर प्रश्न चिह्न लगाते हुए कहते हैं- "यह कहाँ का न्याय है कि जिस अपराध के लिए पुरूष को दंड देने में हम असमर्थ हो, उसी अपराध के लिए कुमारियों या विधवाओं को कलंकित किया जाए? सौभाग्यवतियों को हमने इसलिए छोड़ दिया है कि परिस्थितियाँ उनके अनुकूल हैं और समाज उन्हें दंड देने में असमर्थ है। जो पुरूष स्वयं बड़े धड़ल्ले से व्यभिचार करता है, वह भी अपनी स्त्री को पिंजरे में बंद रखना चाहता है और यदि वह मानव स्वभाव से प्रेरित होकर पिंजरे से निकलने की इच्छा करे, तो उसकी गरदन पर छुरी फेरने से भी नहीं हिचकता। यह सामाजिक विषमता असह्य हो उठी है और बड़ी तेजी से विद्रोह का रूप धारण कर रही है।[6] प्रायः यह कहा जाता है कि स्त्री-पुरूष एक गाडी के दो पहिये हैं लेकिन यह विड़म्बना ही है कि दोनों में समानता की दृष्टि में कितनी असमानता है। प्रेमचंद जिस दौर में लिख रहे थे, नारी मुक्ति के स्वर मुखर हो रहे थे। प्रेमचंद नारी सशक्तीकरण के लिए आर्थिक सुदृढ़ता और तलाक के अधिकार को आवश्यक मानते थे। तलाक के समर्थन में उसी समय प्रसाद "ध्रुवस्वामिनी" नाटक लिखकर करते है। प्रेमचंद स्त्री-अधिकारों का पुरजोर समर्थन करते हैं और लिखते हैं-

"1. एक विवाह का नियम स्त्री-पुरूष दोनों के लिए समान रूप से लागू हो। कोई पुरूष अपनी पत्नी के जीवन-काल में दूसरा विवाह न कर सके।
2. पुरूष की सम्पत्ति पर पत्नी का पूरा अधिकार हो। वह उसे रेहन-वय जो कुछ चाहे कर सके।
3. पिता की सम्पत्ति पर पुत्रों और पुत्रियों का समान अधिकार हो।
4. तलाक का कानून जारी किया जाए और वह स्त्री-पुरूष दोनों ही के लिए समान हो।
5. तलाक के समय स्त्री-पुरूष की आधी सम्पत्ति पाये और यदि मौरूसी जायदाद हो, तो उसका एक अंश।"[7]

प्रेमचंद के उपर्युक्त विचारों को आजादी के पश्चात् कानूनी स्वीकृति भले ही प्राप्त हो गयी लेकिन व्यवहार में अभी भी मंजिल पूरी तरह तय नहीं हुई है। स्त्री आज भी आर्थिक असुरक्षा के वातावरण में जीने के लिए विवश है। यही नहीं दहेज की विभीषिका ने स्त्री जीवन को बहुत दारूण बनाया है। कन्या भ्रूण हत्या और अनमेल विवाह इसी की परिणिति हैं। नारी सशक्तिकरण के इस युग में जब स्त्री ने हर

क्षेत्र में अपनी योग्यता सिद्ध कर दी है दहेज का प्रश्न समाप्त नहीं हुआ है। प्रेमचंद को इस समस्या के हल में समाज से कोई अपेक्षा नहीं थी। 1933 में वह लिखते हैं कि "अब तो इस अनीति का कोई दवा है तो यही कि बालिकाएँ स्वयं अपना भाग्य अपने हाथ में लें और विवाह के बंधन में उस वक्त तक न पड़े जब तक कोई ऐसा वर न मिले जो प्रेम भाव से उनके सामने माथा न टेके जब बालिकाओं में यह आत्म सम्मान उदय होगा तभी इस जाति का उद्धार होगा।"[8]

शिक्षा नारी सशक्तिकरण का सर्वाधिक प्रबल अस्त्र है, स्त्री में जागृति उत्पन्न की, अपने प्रति होने वाले अन्याय को समझने में सहायता दी। स्त्री-शिक्षा को लेकर भी समाज में भिन्न दृष्किोण रहे हैं। कुछ लोग स्त्री और पुरूष की शिक्षा के स्वरूप को अलग-अलग रखने के पक्षपाती हैं जिसमें स्त्री अच्छी गृहणी बन सके। प्रेमचंद ऐसे किसी विचार का न तो समर्थन करते हैं और न विरोध, बल्कि उनका मत था कि "इसका फैसला हमारी देवियों को ही करना चाहिए कि उनकी कन्याएँ कैसी शिक्षा पाएं, स्वार्थी पुरूषों का फैसला वह क्यों मंजूर करने लगी।"[9] प्रेमचंद स्त्री शिक्षा को समाज के विकास के लिए आवश्यक मानते थे, वे उनके सम्पूर्ण व्यक्तित्व के विकास के हामी थे। राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन में स्त्रियों ने भी सक्रिय भागीदारी की ओर यह साबित कर दिया की उनमें भी प्रबल राजनीतिक चेतना होती है। देश प्रेम की भावना उनमें पुरूषों से कम नहीं है।। वास्तव में स्त्रियों ने घर और बाहर दोनों भूमिकाओं का स्फल निर्वहन किया। प्रेमचंद भविष्य में उनकी भूमिका के प्रति आशावादी थे- "भारतीय महिलाओं ने घर की चारदीवारी के अन्दर जिस तरह अपनी दक्षता प्रमाणित की है, उसी तरह राष्ट्र के क्षेत्र में वे पुरूषों से आगे रहेंगी।"[10] होते भी क्यों नहीं उनकी पत्नी शिवरानी देवी ने स्वाधीनता आन्दोलन में सक्रिय भाग लिया और गिरफ्तार कर ली गईं। प्रेमचंद ने अपने निकट संबंधी को सूचना देते हुए लिखा कि- "तुम्हारी मौसी 9 तारीख को विदेशी कपड़े की दुकान पव पिकेटिंग करते हुए पकड़ ली गयीं। मैं कल उनसे जेल में मिला और हमेशा की तरह प्रसन्न पाया। उनकी इज्जत मेरी आँखों में सौ गुना बढ़ गयी।"[11] प्रेमचंद हिन्दू समाज में विधवाओं की दुर्दशा को लेकर बेहद चिंतित रहे। कई बार तो विवाह का मतलब समझने से पूर्व ही लड़कियाँ विधवा हो जाती थीं और आजीवन वैधव्य का जीवन व्यतीत करना पड़ता था। विधवा स्त्री को पति की सम्पत्ति में कोई अधिकार नहीं था और न ही वह स्वाभाविक जीवन व्यतीत कर सकती थी, उसके ऊपर अनेक सामाजिक वर्तजनाएं आरोपित कर दी जाती थीं। विधवा होने के पश्चात् वह स्वामिनि से दासी हो जाती थी। प्रेमचंद ने विधवा जीवन की त्रासदी को अपनी रचनाओं में तो प्रस्तुत किया ही है, साथ ही साथ उन्होंने एक बाल विधवा शिवरानी देवी से विवाह किया। उन्होंने विधवाओं के सम्बन्ध में टिप्पणी करते हुए कहा कि - "विधवाओं के साथ समाज ने बड़ा अन्याय किया और अन्याय को पालकर कोई समाज सरसब्ज नहीं हो सकता।"[12]

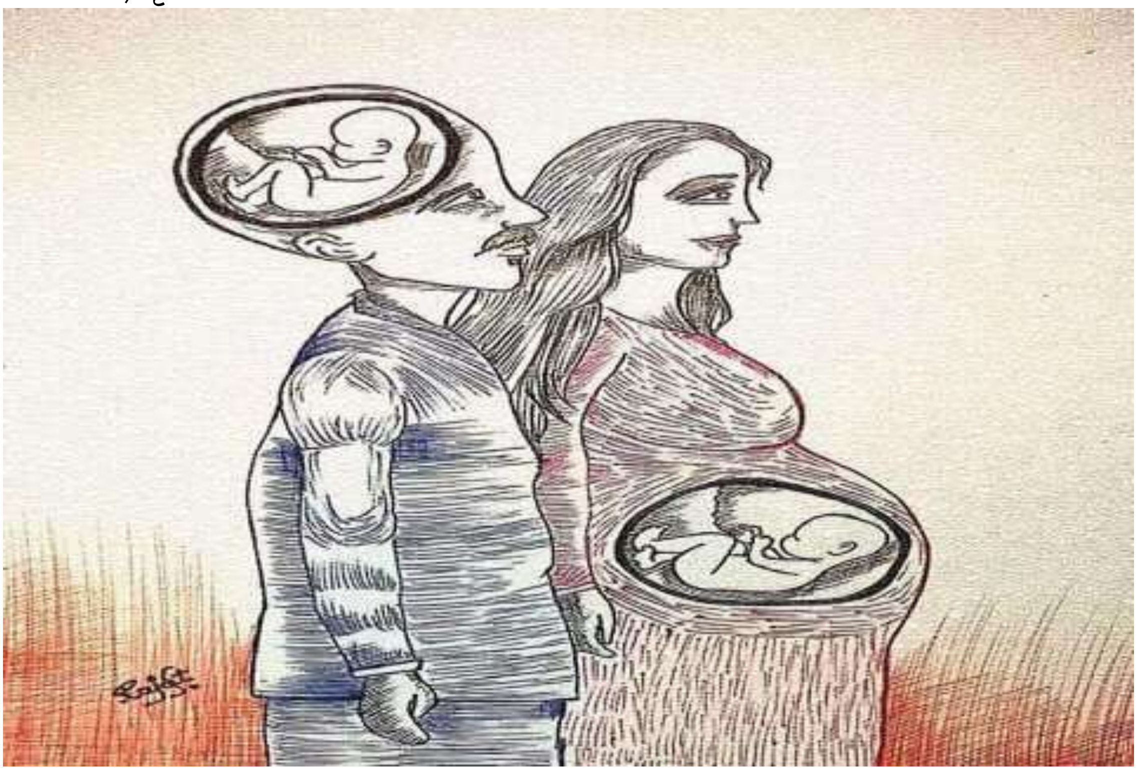
हमारी व्यवस्था में स्त्रियाँ पुरूषों के श्रम के मूल्य को अलग-अलग निर्धारित किया गया। यह धारणा थी कि स्त्रियां पुरूषों के मुकाबले कम कार्य करती हैं तथा उन पर परिवार का दायित्व नहीं होता। वास्तव में ये पूर्वाग्रह ग्रस्त मिथ्या धारणाएं हैं, पुरूष वर्चस्ववादी मानसिकता की देन हैं। प्रेमचंद ऐसी किसी भी राय से सहमत नहीं थे बल्कि वे तो लिखते हैं कि -"अब नारियों ने सिद्ध कर दिया है कि बहुत से कामों में वह पुरूषों के बराबर ही नहीं पुरूषों से ज्यादा काम करती हैं। रहा परिवार का सवाल। तो अब यह जरूरी नहीं रह गया है कि नारी परिवारहीन हो। अब बेकारी के जमाने में कितने ही पुरूष अपनी पत्नियों की कमाई पर गुजर-बसर करते हैं।"[13]

कुल मिलाकर कह सकते हैं कि प्रेमचंद की नारी विषयक दृष्टिकोण प्रगतिशील है वे स्त्री-पुरूष को समान अधिकारों का समर्थन करते हैं। आज स्त्रियों ने अपनी प्रतिभा एवं परिश्रम के बल पर जीवन के सभी क्षेत्रों में सफलता अर्जित की है। वे अपने अधिकारों एवं अपनी अस्मिता के लिए संघर्षरत हैं, कानून द्वारा भी उनको संबल मिल रहा है लेकिन यह भी कटु यथार्थ है कि जितनी चर्चा हो रही है व्यवहार में परिणिति बहुत कम। समाज की मानसिकता में बदलाव की बहुत आवश्यकता है कि वह

उसको 'अबला', 'देवी' और 'दासी' के रूप में न देखकर मनुष्य के रूप में देखे। उसकी क्षमताओं का उपयोग करे क्योंकि नारी की सम्यक् भागीदारी से ही विकास का वातावरण निर्मित हो सकता है। समाज में नारी की सकारात्मक भूमिका और उसके महत्त्व को समझने में प्रेमचंद का साहित्य एवं उनके विचार बहुत उपयोगी हैं। उनका साहित्य समकालीन नारी विमर्श को दिशा प्रदान करने में सहायक सिद्ध होता है।

सन्दर्भ :

1. पी. थामस : इंडियन वुमन थ्रू द ऐजज, एशिया पब्लिकेशन हाउस, नई दिल्ली पृ. 56
2. शोधसृजन-संपादक डॉ. बलजीत कुमार श्रीवास्तव, वर्ष-5, अंक-1, जून 2013, पृ. 10
3. संपादक कुंवर पाल सिंह, नमिता सिंह- 'वर्तमान साहित्य', अक्टूबर 2006 डॉ. ऋतु अग्रवाल के 'नारी इतिहास के आइने में लेचा से पृ. 56
4. राधा कुमार- स्त्री संघर्ष का इतिहास, वाणी प्रकाशन, तृतीय संस्करण पृ. 56
5. ए. अरविंदास, संपादक- प्रेमचंद के आयाम, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, मृदुला गर्ग के लेख से, पृ. 237
6. अमृतराय, संकलनकर्ता- विविध प्रसंग भाग-3, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ. 52
7. वही, पृ. 249-250
8. वही पृ. 256
9. वही, पृ. 266
10. वही, पृ. 254
11. अमृतराय-कलम का सिपाही, हंस प्रकाशन, संस्करण 1992 पृ. 463
12. अमृतराय, संकलनकर्ता-विविध प्रसंग भाग-3, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ. 264
13. वही, पृ. 270



प्रेमचंद का भाषा विमर्श



गुर्रमकोंडा नीरजा

प्रेमचंद (31 जुलाई 1880 – 8 अक्टूबर 1936) अपने समय के लिए जितने प्रासंगिक थे आज भी वे उतने ही प्रासंगिक हैं । "यह तथ्य इस बात से ही प्रमाणित हो जाता है कि आज दलित विमर्श, स्त्री विमर्श, बाजारीकरण, भ्रष्ट व्यवस्था, संवेदनात्मक छीजन आदि पर जब भी कहीं चर्चा होती है तो वह अंततः प्रेमचंद के ही इर्द-गिर्द आकर अपनी सार्थकता पाती है। प्रेमचंद की भाषा भी आज तक नए गद्यकारों का आदर्श बनी हुई है। यह अलग बात है कि प्रेमचंद के निकट कोई नहीं पहुँच सका। " (संपादकीय, प्रेमचंद की भाषाई चेतना, (सं) प्रो.दिलीप सिंह, प्रो.ऋषभ देव शर्मा, पृ. 5).

मानव जीवन में भाषा की भूमिका निर्विवाद है चूँकि भाषा के अभाव में मनुष्य केवल जैविक जंतु है। भाषा ही वह चीज है जो उसे समाज-सांस्कृतिक प्राणी के रूप में परिवर्तित करती है। शायद इसीलिए प्रेमचंद ने अपने एक व्याख्यान में कहा था, "जीवित भाषा तो जीवित देह की तरह बनती है। भाषा सुंदरी को कोठरी में बंद करके आप उसका सतीत्व तो बचा सकते हैं, लेकिन उसके स्वास्थ्य का मूल्य देकर। उसकी आत्मा इतनी बलवान बनाइए कि वह अपने सतीत्व और स्वास्थ्य दोनों की ही रक्षा कर सके। *** हमारा आदर्श तो यह होना चाहिए कि हमारी भाषा अधिक से अधिक आदमी समझ सकें। " (नमिता सिंह, 'प्रेमचंदोत्तर कथा साहित्य और भाषा के मंतव्य'; साहित्य और संवेदना, (सं) पी॰वी॰ विजयन, पृ॰ 268 से उद्धृत)। भाषा एक तरफ व्यक्ति विशेष के व्यक्तितत्व को प्रतिबिंबित करती है तो दूसरी तरफ वह सामाजिक संबंधों को व्यक्त करती है। प्रेमचंद की भाषा इन दोनों कर्तव्यों को बखूबी निभाना जानती है, इसीलिए वह आज भी सर्वाधिक अनुकरणीय और प्रासंगिक कथाभाषा के रूप में स्वीकृत है।

समाज में हिंदी की तीन शैलियाँ प्रचलित हैं – उच्च हिंदी, उच्च उर्दू और हिंदुस्तानी। प्रेमचंद पहले तो उर्दू में लिखते थे, लेकिन बाद में वे हिंदी – बोलचाल की हिंदुस्तानी में लिखने लगे। वे हिंदुस्तानी के प्रबल पक्षधर बने। उन्होंने यह महसूस किया था कि हिंदी का यह शैलीभेद प्रायः राजनीतिक था। उनकी भाषा-चेतना बहुत गहरी थी। इसलिए उन्होंने बार बार यह लिखा कि "बंगाल का मुसलमान बंगला बोलता है और लिखता है, गुजरात का गुजराती, मैसूर का कन्नड़ी, मद्रास का तमिल और पंजाब का पंजाबी आदि। यहाँ तक कि उसने अपने अपने सूबे की लिपि भी ग्रहण कर ली है। उर्दू लिपि और भाषा से यद्यपि उसका धार्मिक-सांस्कृतिक अनुराग हो सकता है, लेकिन नित्य प्रति के जीवन में उसे उर्दू की बिलकुल आवश्यकता नहीं पड़ती। " (प्रो। दिलीप सिंह, 'प्रेमचंद की भाषाई चेतना', प्रेमचंद की भाषाई चेतना, (सं) प्रो। दिलीप सिंह, प्रो। ऋषभ देव शर्मा, पृ। 23 से उद्धृत)। इतना ही नहीं उनके मतानुसार हिंदुओं और मुसलमानों की भाषा में कोई अंतर नहीं है तथा हिंदुस्तानी बोलचाल की हिंदी का

सहज और सरल रूप है। ध्यान से देखा जाए तो प्रेमचंद के लिए हिंदुस्तानी केवल एक भाषा-शैली ही नहीं थी, बल्कि उनके लिए तो वह जातीय अस्मिता का एक प्रतीक थी। इसलिए उन्होंने कहा था कि "बोलचाल की हिंदी और उर्दू प्रायः एक-सी हैं। उर्दू-हिंदी के सर्वनाम एक हैं – वह, तुम, मैं, हम इत्यादि। हिंदी-उर्दू की क्रियाएँ एक ही हैं – जाना, सोना, खाना, पीना, करना, मरना, जीना, लिखना, पढ़ना इत्यादि। उर्दू के संबंधवाचक शब्द – पर, का, में, से आदि वही हैं जो हिंदी के। दोनों का मूल शब्दभंडार भी एक है, लेकिन यहाँ बहुत दिनों तक फारसी के राजभाषा रहने से हिंदी शब्दों के फारसी या अरबी पर्यायवाची शब्द भी प्रचलित हो गए हैं। जैसे : देश – मुल्क, आकाश – आसमान, नदी – दरिया, रोगी – बीमार आदि। इन शब्दों का व्यवहार बोलचाल की हिंदी-उर्दू में बिना किसी भेदभाव के होता है। " (वही, पृ॰ 25 से उद्‌धृत)। उनकी मान्यता थी कि "बोलचाल की हिंदी समझने में न तो साधारण मुसलमानों को कोई कठिनाई होती है और न बोलचाल की उर्दू समझने में हिंदुओं को ही। " (वही, पृ॰ 24 से उद्‌धृत)। अभिप्राय यह कि इस दुष्प्रचार के खंडन का प्रेमचंद ने अपनी ओर से पूरा प्रयास किया कि हिंदी और उर्दू दो अलग भाषाएँ हैं तथा इनका किसी धर्म-मजहब से कुछ लेना देना है।

प्रेमचंद ने अपनी बातों को सिर्फ सैद्‌धांतिक स्तर तक सीमित नहीं रखा बल्कि व्यावहारिक स्तर पर भी उन्हें लागू किया। उनकी रचनाओं में घटना और अनुभव की बहुलता है। वे अपनी रचनाप्रक्रिया में भाषा का संपूर्णतः दोहन कर लेते हैं। (रामस्वरूप चतुर्वेदी, हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास)। इसीलिए वे कहा करते थे कि "साधारण वकीलों की तरह साहित्यकार अपने मुवक्किल की ओर से उचित-अनुचित सब तरह के दावे नहीं पेश करता, अतिरंजना से काम नहीं लेता, अपनी ओर से बातें गढ़ता नहीं। वह जानता है कि इन युक्तियों से वह समाज की अदालत पर असर नहीं डाल सकता। उस अदालत का हृदय परिवर्तन तभी संभव है, जब आप सत्य से तनिक भी विमुख न हों, नहीं तो अदालत की धारणा आपकी ओर से खराब हो जाएगी और वह आपके खिलाफ फैसला सुना देगी। " (नंदकिशोर नवल, 'प्रेमचंद का सौंदर्यशास्त्र', प्रेमचंद का सौंदर्यशास्त्र, पृ॰ 13)

विद्‌वानों ने यह लक्षित किया है कि मृदु और ललित शब्दयोजना, गूढ़शब्दार्थहीनता और जनपद सुखबोध्यता वास्तव में काव्यभाषा के लक्षण हैं लेकिन प्रेमचंद ने अपने साहित्य को व्यापक जनता से जोड़ने के लिए जनपद की भाषा को अपनाया। जब वे यह कहते हैं कि "साहित्य न चित्रण का नाम है, न अच्छे शब्दों को चुनकर सजा देने का, न अलंकारों से वाणी को शोभायमान बना देने का" तो वे निस्संदेह बोलचाल की हिंदुस्तानी – देशजता की बात कर रहे होते हैं। प्रेमचंद अपनी जमीन से जुड़े साहित्यकार हैं। इसलिए उनकी रचनाओं में ठेठ देहाती शब्द पाए जाते हैं। उन्होंने "ग्रामीण जन की बोली-बानी में निहित ऊर्जा का दोहन करके ही अपनी कथाभाषा का गठन किया है। "(प्रो॰ ऋषभ देव शर्मा, 'प्रेमचंद दे देसिल बयना : संदर्भ 'गुल्ली डंडा' का", प्रेमचंद की भाषाई चेतना, (सं) प्रो। दिलीप सिंह, प्रो॰ ऋषभ देव शर्मा, पृ॰36)।

प्रेमचंद की भाषा - विशेष रूप से ग्रामीण पात्रों की भाषा - को देखने से यह स्पष्ट होता है कि "देहाती बोली और हिंदी के एकीकरण में उन्हें इतनी सफलता मिली है कि गाँव का रहने वाला पाठक भी प्रेमचंद

के किसानों की बात सुनकर उसे अस्वाभाविक नहीं कह सकता। *** परंतु प्रेमचंद किसानों की बातचीत के लिए ही देहात से शब्द नहीं लेते; उनकी भाषा का गठन ही उस देहाती बोली की भूमि पर हुआ है। जो सुंदर मुहावरे, कहावतें, उपमाएँ और हास्य के पुट उनके गद्य में हमें मिलते हैं उन्हें प्रेमचंद ने अपने गाँव की बोली से सीखा था। अपनी उपमाएँ उन्होंने बहुधा ग्रामीण जीवन से ली हैं। *** प्रेमचंद की भाषा के अलंकार उसके प्रवाह में सहज ही सज जाते हैं। सारी बात अनुभव और सचाई की है। प्रेमचंद जनता को जानते थे, उसकी भाषा को जानते थे; वहीं से उन्हें शक्ति मिली है। " (डॉ॰ रामविलास शर्मा, प्रेमचंद, पृ॰138)।

'गोदान' का ही एक उदाहरण देखें – प्रेमचंद का होरी अपने विद्रोही पुत्र गोबर को समझाता है–

- "फिर मरजाद भी तो पालना ही पड़ता है। खेती में जो मरजाद है, वह नौकरी में तो नहीं है। मज़ूरी मज़ूरी है, किसानी किसानी है। मजूर लाख हो, तो मजूर ही कहलाएगा। सर पर घास रखे जा रहे हो, कोई इधर से पुकारता है, ओ घासवाले, कोई उधर से। किसी की मेड़ पर घास धर लो तो गालियाँ मिलें। किसानी में मरजाद है। "

होरी 'मरजाद' अर्थात मर्यादा के लिए अपने आपको समर्पित/ होम कर देता है।

'कर्मभूमि' का अमरकांत कहता है –

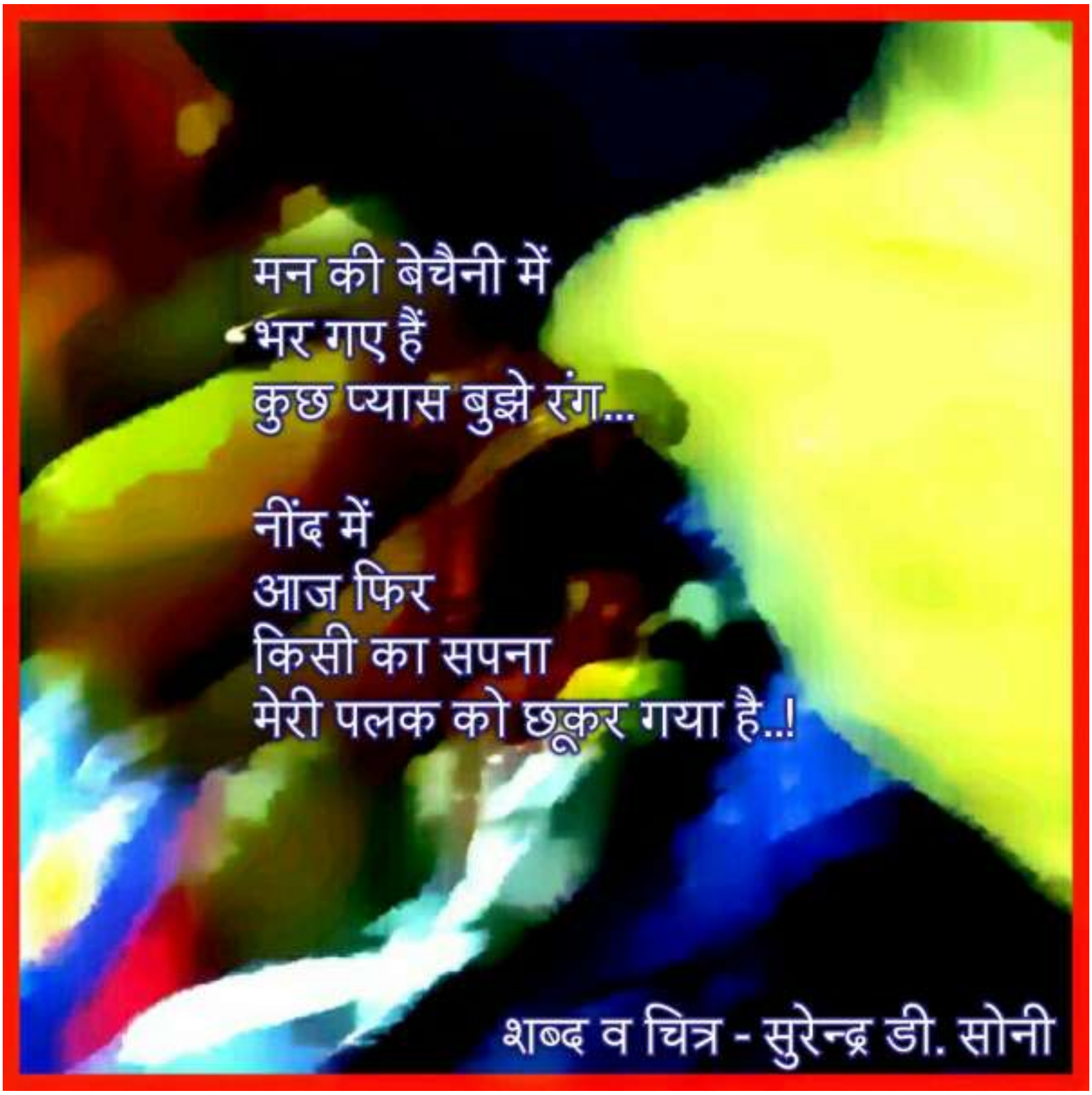
- “काम की कौन कमी है घास भी काट लो, तो एक रुपए रोज की मजूरी हो जाए। नहीं जूते का काम है। बल्लियाँ बनाओ, चरसे बनाओ। मेहनत करने वाला आदमी भूखों नहीं मरता। धेली की मजूरी कहीं नहीं गई। "

ऐसे कथन स्वतः सिद्ध करते हैं कि प्रेमचंद की भाषा में देसी मुहावरे सहज रूप से उभरते हैं जो उसे जनभाषा बनाते हैं।

'गुल्ली-डंडा' कहानी बहुत ही छोटी है पर प्रेमचंद की भाषा के इस देशज पक्ष को उजागर करने में सक्षम है। इस कहानी में देशजता के साथ आभिजात्यता भी निहित है। इस कहानी में पग पग पर प्रेमचंद का ठेठ देसीपन झलकता है। यहाँ प्रेमचंद भारतीय खेल गुल्ली-डंडा के हवाले से यह कहते हैं – "हमारे अँग्रेजीदां दोस्त मानें या न मानें मैं तो यही कहूँगा कि गुल्ली-डंडा सब खेलों का राजा है। *** न लान की जरूरत, न कोर्ट की, न नेट की, न थापी की। मजे से किसी पेड़ से एक टहनी काट ली, गुल्ली बना ली, और दो आदमी भी आ जाए, तो खेल शुरू हो गया। विलायती खेलों में सबसे बड़ा ऐब है कि उनके सामान महँगे होते हैं। जब तक कम-से-कम एक सैंकड़ा न खर्च कीजिए, खिलाड़ियों में शुमार ही नहीं हो पाता। यहाँ गुल्ली-डंडा है कि बना हर्र-फिटकरी के चोखा रंग देता है; पर हम अँगरेजी चीजों के पीछे ऐसे दीवाने हो रहे हैं कि अपनी सभी चीजों से अरुचि हो गई। स्कूलों में हरेक लड़के से तीन-चार रुपये सालाना केवल खेलने की फीस ली जाती है। किसी को यह नहीं सूझता कि भारतीय खेल खिलाएँ, जो बिना दाम-कौड़ी के खेले जाते हैं। अँगरेजी खेल उनके लिए हैं, जिनके पास धन है। गरीब लड़कों के सिर क्यों यह व्यसन मढ़ते हो?" खेल से लेकर शिक्षा तक का जो महँगा अंग्रेजीपन आज भी हम अपने

सिर पर ढो रहे हैं प्रेमचंद ने उसके खतरे को अपने समय में भली प्रकार भाँप लिया था। यदि गुल्ली-डंडा को प्रतीक मान लें तो कहना होगा कि उन्होंने इस महँगे अंग्रेजीपन का विकल्प भी यहाँ सुझाया है – गुल्ली-डंडा अर्थात देहातीपन या देसीपन के वरण के रूप में।

अंततः डॉ। रामविलास शर्मा के शब्दों में कहे तो "प्रेमचंद की कला का रहस्य एक शब्द में उनका देहातीपन ही है; ग्रामीण होने के कारण वह समाज के हृदय में पैठकर उसके सभी तारों से संबंध स्थापित कर सके हैं। "



प्रेमचंद की वर्तमानता : 'रंगभूमि' और 'गोदान'



प्रो. ऋषभदेव शर्मा

प्रेमचंद (1880-1936) भारत के उन अमर साहित्यकारों में अग्रणी हैं जिनकी प्रासंगिकता कभी कम नहीं होती तथा जो अपने समय का अतिक्रमण करके सब समयों में वर्तमान बने रहते हैं। वस्तुतः शाश्वतता की जड़ें समकालीनता में ही होती हैं। प्रेमचंद अपने समकाल से गहरे जुड़े थे इसलिए वे आज भी हमें समकालीन प्रतीत होते हैं। आज के समय में प्रेमचंद की वर्तमानता से पहले हमें उनके अपने समय और उसमें उनकी वर्तमानता को समझना होगा। यदि हम उनकी दो प्रमुख औपन्यासिक कृतियों 'रंगभूमि' (1925) और 'गोदान' (1936) के संदर्भ में उनके समय और तत्कालीन प्रवृत्तियों का अवलोकन करें तो सबसे पहली बात यह सामने आती है कि प्रेमचंद का समय हिंदी साहित्य और भारतीय समाज दोनों ही के हवाले से यथार्थवाद का समय नहीं था। वह युग आदर्शवाद और रोमांटिसिज़्म का युग था। तमाम राजनैतिक और साहित्यिक हलचलें उस समय आदर्शवाद से अनुप्राणित थीं और 'रामराज्य' का सपना सबकी आँखों में तैर रहा था। 'प्रेमचंद अपने युग के साथ थे और अपने युग की उथलपुथल को उन्होंने अपनी रचनाओं में चित्रित किया है। ' (रामविलास शर्मा : प्रेमचंद और उनका युग)। दरअसल वह धर्म और संस्कृति के पुनः आविष्कार का समय था और प्रेमचंद ने भी तदनुरूप अपनी रचनाधर्मिता का निर्वाह किया। उन्होंने धर्म को एक सामाजिक रूप दिया और तटस्थ रहकर, सामाजिक परिस्थितियों में उलझे हुए मनुष्य के धार्मिक विचारों को बनते-बिगडते दिखाया। (वही)। उन्होंने अपनी कथाकृतियों में सामाजिक संघर्ष का चित्रण करते समय आदर्श से अनुप्राणित यथार्थ के चित्रण की प्रविधि अपनाई। 'उन्होंने परिस्थितियों को घटा-बढ़ाकर नहीं चित्रित किया। अपने युग की निर्धनता, दासता और पीड़ितों की आर्त वेदना को जैसा उन्होंने अनुभव किया था वैसा दूसरे ने नहीं। प्रेमचंद की कृतियों का हमारे लिए यह संदेश है कि हम जनता में जाकर रहें और काम करें; अपनी रचनाओं में जनता जनता कम चिल्लाएँ। ' (वही)। यहाँ प्रेमचंद की तत्कालीन लोकप्रियता और आज के समय में प्रासंगिकता दोनों के मूल कारण को डॉ। रामविलास शर्मा ने एकदम सही पकड़ा है। प्रेमचंद न तो यथार्थ को आदर्श के सम्मुख छोटा करते हैं और न ही विकृति की हद तक बड़ा बनाते हैं। इसीलिए उनके यहाँ यदि निर्धनता, दासता और पीड़ा की पुकार है तो संघर्ष, जिजीविषा, स्वाभिमान और मानवीय मूल्यों के प्रति प्रतिबद्धता भी है जो उनके लेखन को भारत की ज़मीन से जोड़ती है। यह ज़मीन से जुड़ने का गुण ही उन्हें सदा वर्तमान बने रहने की ताकत देता है। डॉ। रामविलास शर्मा ने इसी को उनकी रचनाधर्मिता से प्राप्त होने वाला संदेश माना है – 'जनता में जाकर रहें और काम करें। ' इस स्तर पर प्रेमचंद मध्यवर्ग के अनेक निष्क्रिय बुद्धिजीवियों से एकदम अलग दिखाई देते हैं – जन से प्रतिबद्ध। यह प्रतिबद्धता उन्हें अपने स्तर पर सक्रिय आंदोलनकारी बनाती है। एक ऐसा लेखक जिसकी किताब अपने आंदोलनी तेवर के कारण जब्त की जाती है और जिसे अंततः सरकारी नौकरी

छोड़नी पड़ती है। अपनी भाषा और अपनी नाम तक बदलना पड़ता है। जनता के साथ एकमेक होने के कारण ही उनकी रचनाओं में नारेबाजी नहीं बल्कि गहरी लोकानुभूति मिलती है।

प्रेमचंद के युग की तुलना में अगर हम आज (2016) के युग को देखना चाहें तो कहना होगा कि यह युग पानी भरने के लिए धूप में सूखे होंठों प्रतीक्षा करती खड़ी ग्रामबालाओं के मरने और क़र्ज में डूबे किसानों के आत्महत्या करने का युग है। हमारे युग का यह यथार्थ ही प्रेमचंद की अद्यतन वर्तमानता का आधारभूत कारण है। जबतक भारतीय किसान की भूख और प्यास कायम है, तब तक प्रेमचंद के साहित्य की वर्तमानता कायम रहेगी। दरअसल, प्रेमचंद का समय भारतीय किसानों के लिए भारी परीक्षा का समय था। 1920 के आसपास भारत में अनेक स्थानों पर किसान आंदोलन फूट रहे थे। एक सजग रचनाकार के नाते प्रेमचंद इनसे भली प्रकार परिचित थे। प्रेमचंद ने भारतीय समाज की संरचना को भी उसकी विसंगतियों के साथ गहरे विश्लेषित किया था, समझा था। इसमें संदेह नहीं कि भारतीय समाज तब भी और आज भी धर्मों, वर्णों और जातियों में बंटा समाज था और है। लेकिन प्रेमचंद इस ऊपरी संरचना को भेदकर भारतीय समाज की भीतरी आर्थिक संरचना को देख पा रहे थे। उन्हें मालूम था कि यह समाज हिंदू और मुसलमान में बँटा हुआ है। उन्हें यह भी मालूम था कि यह समाज अगड़ों और पिछडों में बँटा हुआ है। वे यह भी जानते थे कि इस समाज में पुरुष और स्त्री के अधिकारों में बहुत अंतर है। लेकिन अपनी रचनाओं में उन्होंने इन विरुद्धों को संघर्षरत नहीं दिखाया। उन्हें उस असली विरोधी द्वंद्व की पहचान थी जो इस देश की निर्धनता, दासता और पीड़ा का मूल कारण है। वह परस्पर विरोधी द्वंद्व है - प्रभुतासंपन्न वर्ग बनाम दीन हीन जनता का द्वंद्व। इनमें से प्रभुतासंपन्न वर्ग में जमींदार, महाजन और अंग्रेजी राज के हाकिम तथा उनके पिछलग्गू शामिल हैं। यही कारण है कि प्रेमचंद धर्म, वर्ण, जाति, भाषा या क्षेत्र के आधार पर संगठित होने या आंदोलन चलाने की बात कहीं भी नहीं करते; बल्कि बार-बार इस प्रभु वर्ग के शोषक चरित्र को बेनकाब करके दीन हीन शोषित जनता को जागरूक और सक्रिय बनाने का प्रयास करते हैं। आज जब भारतीय समाज और राजनीति में एक बार फिर धर्म, वर्ण, जाति, भाषा और क्षेत्र के भेद और इन भेदों के आधार पर संगठित होकर सत्ता प्राप्त करने के प्रयास इस देश को खंडित करने की सीमा तक सक्रिय दिखाई दे रहे हैं, प्रेमचंद की वर्गदृष्टि और राष्ट्रीय चेतना उनके साहित्य की प्रासंगिकता को रेखांकित कर रही है। इसमें संदेह नहीं कि 'ऊँच नीच के भेदभाव के प्रति प्रेमचंद से अधिक सचेत और कोई हिंदी लखक नहीं था। पर उनके कथासाहित्य में वर्ग संघर्ष है, जमींदारों, महाजनों, अंग्रेजी राज के हाकिमों के विरुद्ध संघर्ष है; अगड़ी-पिछड़ी जातियों के बीच संघर्ष नहीं है। कहीं भी यह संकेत नहीं है कि बिरादरी के आधार पर सब लोग एक हो जाएँ तो उनका उद्धार हो जाएगा। ' (रामविलास शर्मा, 1994)।

यह तो हुई भारतीय राजनैतिक और सामाजिक परिदृश्य की बात। अब यदि तब के और अब के अंतरराष्ट्रीय परिदृश्य का तुलनात्मक अवलोकन करें तो सबसे पहले यह सत्य दिखाई देगा कि पहले दो महाशक्तियाँ थीं परंतु अब एक ही रह गई है। यह महाशक्ति मीडिया और बाजार से खाद-पानी पाकर निरंतर दैत्याकार होती जा रही है। पूँजी और मुनाफ़े पर आधारित इस महाशक्ति के पास दुनिया को पलक झपकते नष्ट कर सकने में समर्थ आणविक अस्त्र-शस्त्रों का जखीरा है लेकिन नैतिक शक्ति का अभाव है। जैसा कि डॉ। रामविलास शर्मा ने लक्षित किया है, 'जनतंत्र का ढोल पीटने वाला अमेरिकी पूँजीवाद दुनिया पर

अपनी डिक्टेटरशिप कायम कर रहा है। इस डिक्टेटरशिप को खत्म करने का मूलमंत्र है – स्वदेशी। भारत जितना ही आत्मनिर्भर बनेगा, उतना ही वह अपनी एकता और स्वाधीनता की रक्षा करने में समर्थ होगा, उतना ही साम्राज्यवादी दासता से विश्वजनता की मुक्ति में सहायक होगा। आगे आने वाले दिनों में हमारे महान लेखक प्रेमचंद का साहित्य संघर्ष में प्रेरणा देगा, विजय में हमारी आस्था को दृढ़ करेगा। हमारे साहित्य की और हमारे राष्ट्रीय जीवन की सचाई एक दिन अवश्य सारे अंधकार को चीरकर दुनिया में अपनी ज्योति का उजाला फैला देगी। ' (वही)।

प्रेमचंद की कालजयी वर्तमानता राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय परिदृश्य की उनकी समझ और तदनुरूप साहित्यिक प्रयास से तो सिद्ध होती ही है; उनकी साहित्य दृष्टि से भी प्रमाणित होती है। उनकी साहित्य दृष्टि उनकी विश्व दृष्टि का आधार है। वे साहित्य को मनोरंजन और विलासिता का उपकरण बनाने के सख्त खिलाफ थे। वे मानते थे कि साहित्य उस उद्योग का नाम है जो आदमी ने आपस के भेद मिटाने और उस मौलिक एकता को व्यक्त करने के लिए किया है, जो इस जाहिरी भेद की तह में, पृथ्वी के उदर में व्याकुल ज्वाला की भांति छिपी हुई है। यहाँ आपस के भेद मिटाने और मौलिक एकता को व्यक्त करने जैसे प्रयोजनों के साथ साहित्य को जोड़कर प्रेमचंद ने रस, साधारणीकरण और लोकमंगल जैसी अवधारणाओं को नितांत मौलिक अर्थबोध से संपन्न किया है। पृथ्वी के उदर में छिपी व्याकुल ज्वाला, प्रेमचंद की इस मौलिक साहित्य दृष्टि में, वह स्थायी भाव है जो संपूर्ण मनुष्यता को मानवीय करुणा के धरातल पर जोड़ता है। उन्होंने बलपूर्वक यह रेखांकित किया कि 'सत्य' और 'असत्य' का संघर्ष बराबर चला आता है और जब तक साहित्य की सृष्टि होती रहेगी, यह संघर्ष साहित्य का मुख्य आधार बना रहेगा। वास्तव में, साहित्य की सामाजिक उपयोगिता और इस विश्व दृष्टि से ही होकर उसकी शाश्वतता का रास्ता जाता है। इसके लिए आवश्यक है कि लेखक को अपने समय में विद्यमान 'सत्य' और 'असत्य' की सही पहचान हो और इनके संघर्ष में वह सत्य के पक्ष में डटकर खड़ा हो। प्रेमचंद को इन शक्तियों और इनके संघर्ष की पहचान तो थी ही, 'सत्य' के प्रति उनकी वचनबद्धता भी स्पष्ट थी। यही कारण है कि आदर्शवादी युग में वे यथार्थवादी दृष्टिकोण अपना रहे थे। आदर्श और यथार्थ का संघर्ष कथाकार प्रेमचंद का भी संघर्ष है। इस संघर्ष में उन्होंने सामंजस्य का मार्ग चुना और आर्थिक शोषण का उसकी पूरी भयावहता के साथ यथार्थ चित्रण किया। वे यही नहीं रुके बल्कि इस यथार्थ का विश्लेषण करते हुए समाज समीक्षा के दायित्व को भी संपन्न किया। साथ ही अपनी आदर्शवादी भावना के अनुरूप जहाँ संभव हुआ, वहाँ समाधान भी सुझाया।

प्रेमचंद को उस समय में आज की बाज़ारवादी सभ्यता की आहटें सुनाई देने लगी थीं। इस नई सभ्यता को उन्होंने 'महाजनी सभ्यता' कहते हुए आलोचना का निशाना बनाया। उनकी यह समझ आज भी अत्यंत सटीक है कि 'नई सभ्यता में पैसे का स्थान सर्वोपरि है। साम्राज्यवाद के आवश्यक गुण मजबूत कलेजा और बलवान भुजाएँ नहीं हैं। उसके लिए बुद्धि का धन संचय के लिए उपयोग तथा मौन आज्ञा पालन आवश्यक है। इस सभ्यता ने समाज को दो अंगों में बाँट दिया है : जिनमें एक हड़पने वाला है, दूसरा हड़पा जाने वाला है। ' (महाजनी सभ्यता)। वे मानते थे कि अंग्रेजी राज द्वारा कायम की गई नई शिक्षा स्वार्थ की भित्ति पर खड़ी हुई है और उसके द्वारा प्रवर्तित आधुनिक व्यापार और नई औद्योगिकता मनुष्य को क्रमशः दैत्य बना रही है। आर्थिक परिदृश्य की उनकी यह समझ 1925 में प्रकाशित 'रंगभूमि' में स्पष्ट देखी जा

सकती है। स्मरण रहे कि यह उनके सरकारी नौकरी छोड़ने (1921) के बाद का उपन्यास है। अतः इसमें ब्रिटिश रीति-नीति की आलोचना अधिक मुखर होकर अभिव्यक्त हुई है। प्रेमचंद सूरदास के माध्यम से उन प्रयासों का विरोध करते हैं जो गाँव को आधुनिक व्यापार और नए उद्योग धंधे का केंद्र बनाकर ग्रामीण सभ्यता को उलटना चाहते हैं। उनका स्पष्ट मत है कि गाँव में कारखाना लगने से किसान और जमींदार दोनों ही निकम्मे हो जाएँगे। किसान भूमिहीन होकर मजदूर बनेगा और 'मरजाद' से पतित होगा जबकि ज़मींदार उद्योग के हिस्से (शेयर) खरीदकर क्रमशः भयंकर शोषक शक्ति के रूप में तब्दील हो जाएगा। सूरदास और जॉन सेवक आमने सामने खड़े हुए दो पात्र ही नहीं है, बल्कि परस्पर विरोधी दो सभ्यताएँ हैं। सूरदास भारतीय ग्राम सभ्यता का प्रतीक है तो जॉन सेवक पश्चिमी महाजनी सभ्यता का। सूरदास अपनी पैतृक परंपरा से प्रेम करता है। अपनी ज़मीन को अपने बाप-दादों के नाम से जोड़कर देखता है और उसे अपनी यादगार बनाना चाहता है। इस वैयक्तिक लगाव के बावजूद वह अपनी ज़मीन का विचार करते समय सामाजिक लाभ का विचार पहले करता है। वह चाहता है कि वहाँ गाँव भर के बच्चे खेलें और गाँव भर के पशुओं के लिए चरागाह बने। वह व्यक्तिगत लाभ-हानि से ऊपर उठकर चाहता है कि उसकी ज़मीन 'अनाचार का ठिकाना' न बने। दूसरी ओर जॉन सेवक जाति उद्धार, रोजगार सृजन, यात्रियों के लिए मकान, दूध-मलाई और उपलों की बिक्री, पान की बिक्री और मदरसे की स्थापना ही नहीं, राष्ट्रीयता की ऊँची-ऊँची बातें करता है। लेकिन उसका आचरण झूठ और पाखंड से परिपूर्ण है। यदि 'सत्य' और 'असत्य' के संघर्ष में लेखकीय पक्षधरता वाली प्रेमचंद की कसौटी पर इन दोनों पात्रों को घिसकर देखें तो सूरदास के रूप में सत्य और न्याय के साथ प्रेमचंद खड़े हुए दिखाई देते हैं। आज नैतिकता और अनैतिकता के धुंधलके वाले मूल्यमूढ़ उत्तर आधुनिक समय में ऐसी साफ़ सुथरी प्रतिबद्धता प्रेमचंद को प्रासंगिक बनाती है।

यह जो महाजनी सभ्यता है न; इसने एक नया मूल्य गढ़ा है – प्रोफेशनलिज्म या व्यावसायिकता का मूल्य। महाजनी या बाजारवादी सभ्यता में व्यवसाय या लाभ सर्वोपरि मूल्य है। हम आज देख रहे हैं कि बाजार के समक्ष सब प्रकार की नैतिकताएँ और सारे संबंध बौने हो गए हैं क्योंकि बाज़ार का तो नियम यही है कि 'बाप बड़ा न भैया, सबसे बड़ा रुपैया। ' महँगाई बढ़ती है तो बढ़ा करे, लोग मरते हैं तो मरा करें, प्रोफेशनलिज्म इन विषयों पर द्रवित होना नहीं सिखाती। यही कारण है कि जॉन सेवक कुंवर भरत सिंह से कहता है, 'व्यवसायी लोग इन गोरखधंधों में नहीं पड़ते; उनका लक्ष्य केवल वर्तमान परिस्थितियों पर रहता है। ' (रंगभूमि)। वह सूरदास को भी समझाता है, बल्कि धमकाता है, 'अब व्यापार का राज्य है, और जो इस राज्य को स्वीकार न करे, उसके लिए तारों को निशाना मारने वाली तोपें हैं। ' (वही)। अभिप्राय यह है कि व्यावसायिकता का आगमन प्रकारांतर से मर्यादा और मूल्यों के ह्रास का प्रतीक बन गया है। सूरदास मज़दूरों के आचरण के माध्यम से यह लक्षित करता है कि "वे सारी बस्ती में फैले हुए हैं और रोज ऊधम मचाते रहते हैं। हमारे मुहल्ले में किसी ने औरतों को नहीं छेड़ा था, न कभी इतनी चोरियाँ हुई, न कभी इतने धड़ल्ले से जुआ हुआ, न शराबियों का हुल्लड़ रहा। जब तक मजूर लोग यहाँ काम पर नहीं आ जाते, औरतें घरों से पानी भरने नहीं निकलतीं। रात को इतना हुल्लड़ होता है कि नींद नहीं आती। " इसी प्रकार मकान खाली कराने के संदर्भ में नाकाफी मुआवजा दिए जाने पर सिपाही का कथन भी द्रष्टव्य है, "मानो दिन दहाड़े डाका पड़ रहा हो। " अभिप्राय यह है कि महाजनी सभ्यता के आगमन से गाँव का पारंपरिक तंत्र

टूट गया है, आपसी संबंधों की कड़ियाँ तडक गई हैं और लाभ, लोभ तथा मुनाफे के लिए लगभाग लूटपाट और डाके जैसी स्थिति उत्पन्न हो गई है। यह स्थिति आगे चलकर इतनी विकट हो जाती है कि गोली चालन की नौबत आ जाती है जिसमें बारह लोग मारे जाते हैं।

यहाँ सूरदास के सत्याग्रह पर भी चर्चा की जा सकती है। इस सत्याग्रह के कारण ही सूरदास कई बार महात्मा गांधी की झलक देता प्रतीत होता है। एक प्रकार से सूरदास और जॉन सेवक का संग्राम व्यापक स्तर पर महात्मा गांधी के नेतृत्व में अंग्रेजों के खिलाफ़ चल रहे स्वतंत्रता संग्राम का प्रतीक बन जाता है। सूरदास के सत्याग्रह रूपी संग्राम को छिड़े हुए दो महीने हो गए, समस्या प्रतिदिन भीषण होती जाती थी, क्योंकि बाजार और सत्ता की शक्तियाँ अपने स्वार्थपूर्ण और दमनकारी हथकंडों से बाज नहीं आ रही थीं। बहुतों की पकड़-धकड़ हुई, बहुतों को शारीरिक कष्ट दिया गया, जाने कितनों को अपमानित किया गया, महाजनी सभ्यता अमानुषिक कृत्य पर उतारू थी। "सारे नगर में, गली-गली में, घर-घर यही चर्चा होती रहती थी। सहस्रों नगरवासी रोज वहाँ पहुँच जाते थे, केवल तमाशा देखने नहीं बल्कि एक बार उस पर्णकुटी और उसके चक्षुहीन निवासी का दर्शन करने के लिए और अवसर पड़ने पर अपने से जो कुछ हो सके कर दिखाने के लिए। " (रंगभूमि)। सत्याग्रह का संबंध संयम और धैर्य से है। सत्याग्रह में सत्याग्रही के ही संयम और धर्य की परीक्षा नहीं होती, जनता के भी संयम और धैर्य की परीक्षा होती है। जिस प्रकार महात्मा गांधी के आंदोलनों में व्यापक भारतीय जन गण ने अपने संयम और धैर्य का विस्मयकारी प्रदर्शन किया, सूरदास के सत्याग्रह के अवसर पर भी कुछ-कुछ वही नज़ारा देखने को मिला। "जनता का संयम और धैर्य अब अंतिम बिंदु तक पहुँच गया है। कोई नहीं कह सकता कि कब क्या हो जाए। साधारण जनता इतनी स्थिरचित्त और दृढ़व्रत हो सकती है इसका आज विनय को अनुभव हुआ। " यहाँ जनता और उसके साधारणत्व पर प्रेमचंद का विशेष बल है जो इसलिए विशिष्ट बन गई है कि स्थिरचित्त और दृढ़व्रत है। चित्त की स्थिरता और व्रत की दृढ़ता भारतीय काव्यशास्त्रीय परंपरा में नायकत्व की कसौटी है। इसका अर्थ यह है कि सूरदास के माध्यम से साधारण जनता को नायकत्व प्राप्त हुआ। साधारण जनता को नायकत्व प्रदान करने की प्रेमचंद की यह सूझ आज भी महत्वपूर्ण है क्योंकि आज भी पैसे और ताकत की राजनीति करने वालों के लिए यह समझना आवश्यक है कि लोकतंत्र में जनता संप्रभु होती है और उसमें अपने समय को दिशा देने वाले नायकत्व की सारी संभावनाएँ निहित होती हैं। प्रसंगवश क्लार्क के प्रति सोफी का यह कथन भी विचारणीय है कि "अन्यायपूर्ण शासन, शासन नहीं युद्ध है। " इस अन्यायपूर्ण शासन के विरुद्ध युद्ध का प्रतीक है सूरदास। तत्कालीन भारतीय राजनीति में स्वतंत्रता संग्राम के नेतागण इसके प्रतीक थे और आज भी बाजार, उपभोक्तावाद, आतंकवाद आदि के विरुद्ध मनुष्य के पक्ष में, मनुष्य के अधिकारों के पक्ष में, युद्ध का प्रतीक है यह भारतीय विश्वास कि पशुबल चाहे कितना भी प्रबल हो आत्मबल उसकी तुलना में श्रेष्ठ होता है। यह ठीक है कि अंततः सूरदास धराशायी हो जाता है लेकिन यह आत्मबल की पराजय नहीं है। इसीलिए तो जनता से विनय ज़ोर देकर यह कहता है, "सत्य की विजय पर आनंद और उत्सव मनाने का अवसर है। " हम फिर याद करें कि प्रेमचंद के लिए साहित्य की कसौटी सत्य और असत्य के संघर्ष में सत्य की पक्षधरता है। जिस महाजनी सभ्यता और व्यावसायिक दृष्टिकोण से आज का पूरा समाज ग्रसित है उसके प्रतिनिधि के रूप में जॉन सेवक का यह कथन बाजार की भीतरी सच्चाई को अनावृत करता है कि "व्यवसाय कुछ नहीं है अगर नर हत्या नहीं है। आदि से अंत तक मनुष्यों को पशु

समझना और उनसे पशुवत व्यवहार करना इसका मूल सिद्धांत है। जो यह नहीं कर सकता वह सफल व्यवसायी नहीं हो सकता। ” यहाँ यह भी ध्यान में रहे कि तत्कालीन सत्ता अर्थात अंग्रेज भारत में व्यवसाय के लिए ही आए थे और जब उन्हें लगने लगा कि भारत में अब और बने रहना घाटे का सौदा है तो वे इस देश के टुकड़े करके बड़ी सफाई से वापस लौट गए। उनकी शासन नीति का आधार शोषण था। महात्मा गांधी हों या प्रेमचंद हों, दोनों ही ग्राम सभ्यता पर केंद्रित ऐसे स्वराज्य की कामना करते थे जिसमें सत्ता और जनता के बीच सहृदयता का संबंध हो। लेकिन अंग्रेज अधिकारी इसका उलटा सोचते हैं। उदाहरण के लिए सोफी से क्लार्क कहता है, “हम यहाँ शासन करने के लिए आते हैं। अपने मनोभावों और व्यक्तिगत विचारों का पालन करने के लिए नहीं। जहाज से उतरते ही हम अपने व्यक्तित्व को मिटा देते हैं। हमारा न्याय, हमारी सहृदयता, हमारी सदिच्छा सबका एक ही अभीष्ट है। हमारा प्रथम और अंतिम उद्देश्य शासन करना है। ” ऐसे शासन से किसी प्रकार के लोक कल्याणकारी कार्य की आशा नहीं की जा सकती। यही कारण है कि सूरदास इस पूरी व्यवस्था के खिलाफ खड़ा होता है और अपने अंतिम क्षण में यह भी कह जाता है कि हम भारतीय अपने संघर्षों में इसलिए हारते हैं कि हम अलग-अलग होकर लड़ते हैं। हम धर्मों, जातियों, वर्णों, क्षेत्रों। , भाषाओं जैसे भेदभावों में बंटे हुए हैं और इसलिए एकजुट होकर नहीं लड़ते हैं, जबकि अंग्रेज एक होकर लड़ते हैं। सूरदास चेतावनी देता है कि आज हम अनाड़ी हैं लेकिन तुम्हारी इस नीति को पहचान गए हैं और एक दिन वह आएगा जब हम एकजुट होकर लड़ेंगे और तुम्हें तुम्हारे ही खेल में हराकर दिखाएँगे। और तमाम बातों को छोड़ भी दें तो इसमें संदेह नहीं कि सूरदास के इस कथन में आज भी हमारे लिए अनिवार्य संदेश निहित है। विकास के पथ पर बढ़ते हुए आज के भारत को दुनिया की अनेक शक्तियाँ दबाना और रोकना चाहती हैं। ऐसे में यदि इस देश को विभिन्न क्षेत्रों में विकास के उच्च शिखरों पर पहुँचना है तो हर चुनौती का एक होकर एकजुट होकर, मुकाबला करना सीखना पड़ेगा। निस्संदेह यह समझ ‘रंगभूमि’ की प्रासंगिकता और वर्तमानता का बहुत बड़ा आधार है।

प्रेमचंद “उन सारी बातों के विरुद्ध थे जो मनुष्य-मनुष्य के बीच, स्त्री-पुरुष के बीच, अमीर-गरीब के बीच, ज़मींदार और किसान के बीच, यहाँ तक कि भगवान और आदमी के बीच भी फाँक पैदा करती हैं। ” (डॉ। गोपाल राय)। इसके अलावा जैसा कि प्रेमचंद के अत्यंत निकट रहे और कथा जगत में उनके वारिस जैनेंद्र ने एक साक्षात्कार में बताया है, प्रेमचंद ‘धन के दुश्मन’ थे। वे आज़ादी की समस्या को भी आर्थिक शोषण और दमन सु जुड़ी समस्या के रूप में देखते थे। भारत के गाँवों के अर्थशास्त्र को उन्होंने भली प्रकार समझा था और वे जान गए थे कि सरकार, महाजन और जमींदार तीनों मिलकर एक ऐसे गठबंधन की रचना करते हैं जिसका एकमात्र उद्देश्य शोषण को बरकरार रखना है। किसानों की निर्धनता, उनकी दयनीय जीवन दशा और अमानवीय परिस्थितियाँ इस गठबंधन के दबाव के कारण निरंतर विकट से विकटतर होती जाती थीं। भूमिकर और वसूली तंत्र के सहारे यह गठबंधन किसानों को जन्म जन्म तक गुलाम बनाए रखने का षड्यंत्र चला रहा था। प्रेमचंद ने अपनी रचनाओं में इस षड्यंत्र का बेख़ौफ़ खुलासा करते हुए तत्कालीन शिक्षा, अदालत और पुलिस जैसी सरकारी संस्थाओं की जो आलोचना की है उसके लिए आत्मबल और निष्ठा से जुड़ा साहस चाहिए। लेखन कर्म से जुड़े तमाम लोगों के लिए प्रेमचंद अपने इस आत्मबल और साहस के कारण आज भी चुनौती हैं। तंत्र की आलोचना के साथ साथ वे भारतीयों की गुलाम मानसिकता की भी आलोचना करने से गुरेज नहीं करते। उन्हें हिंदुस्तानियों की अंग्रेजियत अत्यंत विडंबनापूर्ण लगती है।

'रंगभूमि' में राजपूताने के राजा विशाल सिंह के राज्य के बहाने प्रेमचंद ने भारतीयों की गुलाम मानसिकता पर करारी टिप्पणी की है। विनय ने देखा कि उस राज्य के शहरों में सड़कें, पाठशालाएँ, चिकित्सालय सबके नाम अंग्रेजी में थे। "ऐसा जान पड़ता था कोई भारतीय नगर नहीं, अंग्रेजों का शिविर है। ××× इतना नैतिक पतन, इतनी कायरता! यों राज्य करने से डूब मरना अच्छा है। " आजादी के बाद भी भारतीयों की इस गुलाम मानसिकता में कोई खास बदलाव आया है, कहा नहीं जा सकता। आज फिर किसी प्रेमचंद की आवश्यकता है जो सीना तानकर हिंदुस्तानी अवाम और नेतागण की आँख में आँख डालकर कह सके – 'इतना नैतिक पतन, इतनी कायरता, यों राज्य करने से डूब मरना अच्छा है। '

अब कुछ बातें 'गोदान' के हवाले से। जिस प्रकार की नई सभ्यता का विकास पिछले साठ या सत्तर वर्षों में हमने किया है उसका लब्बोलुआब यह है कि आज जीवन के हर क्षेत्र में मूल्यों, आदर्शों, सिद्धांतों अथवा नैतिकताओं का अकाल सा पड़ गया है। इसका कारण है कि प्रेमचंद का सर्वथा साधनहीन और विपन्न पात्र भी जिस 'मरजाद' की चिंता करता है, आज का सुविधाओं और संसाधनों से संपन्न समाज उसकी तनिक भी परवाह नहीं करता। चंद्र प्रकाश खन्ना जो एक शुगर मिल का मालिक है, उस ज़माने में कम से कम इतना तो मनुष्य था कि उसे यह अहसास था कि व्यावसायिक लाभ के लिए उसने बार बार सिद्धांतों की हत्या की है। इसके विपरीत आज स्थिति यह है कि हम सीना ठोककर यह पूछने लगे हैं कि सिद्धांत किस चिड़िया का नाम है। जल्दी से जल्दी, अधिक से अधिक धन बटोरने की स्पर्धा में न्याय, सिद्धांत, सत्य जैसे मूल्य कहीं नहीं ठहर रहे हैं। करोड़ों करोड़ का घोटाला करके भी लोग इस महाजनी सभ्यता में सुर्खुरू घूमते दिखाई देते हैं। प्रेमचंद को मालूम है कि ये जो लोग लखपति, करोड़पति और अरबपति बनते हैं, उनकी सच्चाई क्या है। खन्ना के शब्दों में, "आप नहीं जानते मिस्टर मेहता, मैंने अपने सिद्धांतों की कितनी हत्या की है। कितनी रिश्वतें दी है, कितनी रिश्वतें ली है। किसानों की ऊख तौलने के लिए कैसे आदमी रखे, कैसे नकली बाँट रखे। " (गोदान)। आज हालात इससे बदतर है और विडंबना यह है कि चोर ही शाह बने बैठे हैं। अपराध, पूँजी और राजनीति के बीच एक ऐसी दुरभिसंधि है जिसमें आम आदमी निरंतर पिस रहा है। 'गोदान' में प्रेमचंद ने इस दुरभिसंधि को पहचान लिया था। तभी तो उन्होंने यह दर्शाया कि चंद्र प्रकाश खन्ना मजदूरों के नेता भी है और धनपतियों के रक्षक भी। यह हमारी आज की राजनीति का भी चरित्र है। नेता आप मज़दूरों और किसानों के हैं, लेकिन हित-चिंता आपको व्यापारियों, व्यवसायियों, उद्योगपतियों और पूँजीपतियों की है क्योंकि चुनाव उन्हीं के पैसे लड़े जाते हैं। जिस प्रकार यह संभव नहीं है कि मज़दूरों के नेता बने हुए खन्ना शक्कर मिल के अपने हिस्सेदारों के हित का विचार न करें, उसी प्रकार यह संभव नहीं है कि दीन हीन विपन्न जनता के नेता बने हुए लोग अपने दलों के संरक्षक धनपतियों के हितों का विचार न करें। ऐसा प्रतीत होता है कि प्रेमचंद ने पिछली शताब्दी के आरंभिक दशकों में ही इस शताब्दी के आर्थिक, राजनैतिक विद्रूप के दर्शन कर लिए थे। यह हिस्सेदारी आज भी कई तरह से चालू है। और इसीलिए मेहता के रूप में प्रेमचंद का यह तर्क भी वर्तमान संदर्भ में भी पूरी तरह प्रासंगिक है कि "क्या आप का विचार है कि मजूरों को इतनी मजूरी दी जाती है कि उसमें (मंदी के बहाने से) चौथाई कम कर देने से मजूरों को कष्ट न होगा? आपके मजूर बिलों में रहते हैं – गंदे बदबूदार बिलों में – जहाँ आप एक मिनट भी रह जाए तो आपको कै हो जाए। कपड़े वे जो पहनते हैं उनसे आप अपने जूते भी न पोंछेंगे। खाना जो वे

खाते हैं, आपका कुत्ता भी न खाएगा। आप उनकी रोटियाँ छीनकर अपने हिस्सेदारों का पेट भरना चाहते हैं। ” (गोदान)।

आज भी विभिन्न सरकारें क्या यही नहीं कर रही हैं? उस पर तुर्रा यह कि कथनी और करनी का अंतर बेशर्मी की हद तक बढ़ गया है। राय साहब के चरित्र के दोगलेपन में प्रेमचंद ने इसका पूर्वाभास प्रस्तुत किया है। राय साहब जब मेहता के समक्ष पूँजीवाद की आलोचना करते हुए यह कहते हैं कि “किसी को भी दूसरों के श्रम पर मोटे होने का अधिकार नहीं है। उपजीवी होना घोर लज्जा की बात है। ” (गोदान); तो इस पर मेहता की बेबाक टिप्पणी आज भी इस देश के अनेक नेताओं के संदर्भ में सटीक प्रतीत होती है, “आपकी ज़बान में जितनी बुद्धि है, काश उसकी आधी भी मस्तिष्क में होती। ” (गोदान)।

प्रेमचंद की समझ में यह बात भली भाँति आ गई थी कि पूँजीवाद उस समय (पिछली शताब्दी के चौथे दशक) तक जिस अवस्था में पहुँच चुका था, उससे आगे मूल्यों का बड़ा संकट पैदा होने वाला था। पूँजीवादी व्यवस्था बुरी चीज है लेकिन बाज़ारवादी सभ्यता उससे भी बुरी चीज है – ऐसा प्रेमचंद को लगता था; और सही ही लगता था। उसका कारण है; और इस कारण को उन्होंने होरी के मुँह से कहलवाया है। होरी की समझ में यह बात आ गई है कि “ज़मींदार तो एक ही है मगर महाजन तीन-तीन हैं। सहुआइन अलग, मंगरू अलग और दातादीन पंडित अलग। ” (गोदान)। आगे के समय में ज़मींदारी प्रथा तो समाप्त हो गई, लेकिन महाजनी सभ्यता बाज़ारवाद के रूप में इतनी अधिक फैल गई कि बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशकों में और इक्कीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में पूरे देश में इस महाजनी सभ्यता से ग्रसित और त्रस्त किसानों की आत्महत्या की घटनाएँ आम हो गईं। दुलारी सहुआइन और मंगरू साह का जो चित्र प्रेमचंद ने प्रस्तुत किया है वह किसी सुरसा या किसी यमदूत जैसा है। दुलारी सहुआइन के दर्शन कीजिए, “पाँव में मोटे-मोटे चाँदी के कड़े पहने, कानों में सोने का झूमक, आँखों में काजल लगाए, बूढ़े यौवन को रँगे रँगाए। ” (गोदान)। शायद यही वह पूँजीवाद है जिसकी कोख से उत्तर आधुनिक उपभोक्तावाद जन्मता है। अब ज़रा मंगरू साह रूपी यमदूत का भी अवलोकन कर लें - “काला रंग, तोंद कमर के नीचे लटकती हुई, दो बड़े-बड़े दाँत सामने जैसे काट खाने को निकले हुए। गठिया का मरज हो गया था। खाँसी भी आती थी। ” (गोदान)। प्रेमचंद ने उसे ‘कुकर्म का साक्षात अवतार’ कहा है। स्पष्ट है कि ये महाजनी सभ्यता के दूत प्रेमचंद के समय से आज तक भारतीय किसान की छाती पर चढ़े हुए हैं, लगातार उसका गला दबा रहे हैं। ऐसी स्थिति में यदि गिरधर पगार मिलने पर इकन्नी की ताड़ी पीकर मिल के फाटक पर आसन जमा लेता है तो यह पूरे परिदृश्य को और अधिक कारुणिक बनाने वाली सच्चाई है – “गिरधर ने पेट दिखाकर कहा – साँझ हो गई जो पानी की बूँद भी कंठ तले गई हो तो गोमांस बराबर। एक इकन्नी मुँह में दबा ली थी। उसकी ताड़ी पी ली। सोचा साल भर पसीना गारा है, तो एक दिन ताड़ी भी पी लूँ। मगर सच कहता हूँ नसा नहीं है। एक आने में क्या नसा होगा। हाँ, झूम रहा हूँ जिससे लोग समझें कि खूब पिए हुए हूँ। बड़ा अच्छा हुआ काका (झिंगुरी सिंह), बेबाकी हो गई। बीस लिए थे, उसके एक सौ साठ भरे हैं, कुछ हद है?” (गोदान)। हद न ‘गोदान’ के समय थी और न ‘कफ़न’ के समय। आज भी नहीं है।

जिस प्रकार गिरधर का ताड़ी पीना जहाँ ‘कफ़न’ के घीसू और माधव के ताड़ी पीने की याद दिलाता है और दरिद्रता के अमानुषिक यथार्थ पर से पर्दा उठाता है, इसी प्रकार धनिया का होरी के प्रति कथन ‘पूस की रात’

की याद दिलाता है। किस तरह किसान अपनी माँ समान धरती को खोकर महाजनी सभ्यता के शिकार होकर मज़दूर बनाने को विवश हैं! देखें – "अब और कौन आमदनी है जिससे गोई आवेगी? हल में क्या मुझे जोतोगे, या आप जुतोगे? पूस की यह ठंड; और किसी की देह पर लत्ता नहीं। ले जाओ सबको नदी में डुबो दो। कब तक पुआल में घुसकर रात काटेंगे। और पुआल में घुस भी लें तो पुआल खाकर रहा न जाएगा। तुम्हारी इच्छा हो घास ही खाओ, हमसे तो खाई न जायगी। " (गोदान)। आक्रोश, करुणा, रुदन, विडंबना, व्यंग्य – क्या नहीं है धनिया के इस कथन में; और कौन कह सकता है कि यह कथन आज प्रासंगिक नहीं रह गया है? अस्तु।

'गोदान' का अंतिम अंश देखते चलें – "ऐसी लू लगी होरी को कि उसके प्राण ही ले लिए। " (गोदान)। प्रेमचंद की इसी तेवर की कहानी 'सद्गति' यहाँ याद आती है। और साथ ही आँखों के सामने घूम जाता है सन 2016 के अप्रैल माह के तपते भारत का यह नंगा सच कि आज भी भीषण धूप और लुओं के बीच पानी के लिए तरसते हुए किसान, मज़दूर और उनके बच्चे तड़प तड़प कर मर जाते हैं। उस समय में दातादीन पंडित महाजनी सभ्यता का एजेंट बना होरी की मृत्यु का गोदान स्वीकार कर रहा था तो एक तरफ आज के नेतागण पानी के लिए मरती साधारण जनता की मौत पर राजनीति करते हैं तथा दूसरी तरफ मीडिया अपनी टीआरपी का खेल खेलता है। ये सब भी दातादीन की तरह ही बाज़ार संस्कृति के एजेंट हैं – "पति के ठंडे हाथ में रखकर सामने खड़े दातादीन से बोली - महाराज, घर में न गाय है, न बछिया, न पैसा। यही पैसे हैं, यही इनका गोदान है। – और पछाड़ खाकर गिर पड़ी। " (गोदान)।

प्रेमचंद के दोनों चर्चित उपन्यासों 'रंगभूमि' और 'गोदान' को देखने से यह बात स्पष्ट होती है कि प्रेमचंद यह भली प्रकार समझते थे कि असंगठित किसान शोषित बने रहने के लिए अभिशप्त है क्योंकि वह शोषक शक्तियों का प्रतिरोध करने में असमर्थ रहता है। प्रेमचंद ने अपने ढंग से उन शक्तियों का विरोध और प्रतिरोध करने का साहस दिखाया। जैसा कि डॉ। गोपाल राय मानते हैं, देसी राजाओं, ताल्लुकेदारों, महाजनों, पूँजीपतियों, सरकारी अमलों, अंग्रेज भक्त बुद्धिजीवियों, अंग्रेजी शिक्षा पद्धति, अंग्रेजी न्यायपालिका आदि का विरोध अंततः औपनिवेशिक शासन का ही विरोध था। इसमें संदेह नहीं कि उस समय यह औपनिवेशिक शासन ही समस्त प्रकार के शोषण में लिप्त था। इसके प्रतिवाद के रूप में जहाँ 'रंगभूमि' में सूरदास, सोफिया और विनय जैसे पात्र सामने आते हैं वहीं 'गोदान' में एक ओर तो होरी और धनिया अपने अपने पारंपरिक विश्वासों के साथ इस शोषक व्यवस्था के समक्ष खड़े होने का प्रयास करते हैं तथा दूसरी ओर लेखक गोबर और झुनिया, मातादीन और सिलिया तथा मेहता और मालती के माध्यम से सामाजिक, सांस्कृतिक और वैचारिक परिवर्तन का मार्ग भी सुझाता है। एक भारतीय साहित्यकार के रूप में प्रेमचंद की भारतीय जनता, भारतीय किसान और वस्तुतः भारत की मुक्ति के प्रति प्रतिबद्धता अंतर्धारा के रूप में उनके साहित्य में प्रवाहित दिखाई देती है। वे इस बात से चिंतित और दुखी है कि किसानी सभ्यता मर रही है और महाजनी सभ्यता उभर रही है। उनकी चिंता और वेदना का कारण यह है कि इस सभ्यता संघर्ष में सत्य, न्याय, मर्यादा आदि मूल्य मिट रहे हैं और असत्य, अन्याय तथा अमर्यादित आचरण को गौरवान्वित किया जा रहा है। यह संकट प्रेमचंद के समय का ही संकट नहीं था बल्कि हमारे समय का भी संकट है और यही वह केंद्रबिंदु है जो प्रेमचंद को आज भी प्रासंगिक और वर्तमान बनाए हुए है।

प्रेमचंद एक अनुभव



दयानंद पांडेय

जिस बरस प्रेमचंद जन्मशती मनाई जा रही थी यानी 1980 में, जनवादी लेखक संघ ने प्रेमचंद के जन्म-स्थान लमही में त्रिदिवसीय प्रेमचंद मेला लगाया था। मैं भी गया था। बड़ी तड़क भड़क तो नहीं थी मेले में - मेला गंवईं भी नहीं था। मेला था कुछ जनवादी लेखक और रंगकर्मी बंधुओं का। मेले में गोष्ठियां हुईं, गोष्ठियों में फ़तवेबाज़ी हुई। फ़तवेबाज़ी में कई खुश हुए और कई नाराज। गांव के लोग यानि लमही के 'लाला जी लोग' यह सब ताकते रहे थे दूर-दूर से। और सी.आई.डी. वाले चोरी छिपे अपनी रिपोर्ट लिखते रहे थे। कुछ लोग ऐसे भी थे जो लगभग कटे कटे से यह सब देख रहे थे। हैरानी कई बातों को ले कर हो रही थी:

- कि प्रेमचंद मेले में सी.आई.डी. वालों की दिलचस्पी क्यों है?
- कि इस मेले में इस तरह की फ़तवेबाज़ी की ज़रुरत क्या है?
- कि लमही के लाला लोग प्रेमचंद मेले में हिस्सेदार क्यों नहीं हैं?
- कि यह प्रेमचंद मेला है या कुछ शहरियों का पिकनिक?

जो भी हो इन सवालों का जवाब बहुत मुश्किल नहीं था - सब के पास था। लेकिन इन सारी बातों को जबान पर ला कर कोई भी मजा बदमजा नहीं करना चाहता था। हां मजा। इस मेले में हिंदुस्तान के लगभग हर कोने; कस्बों से महानगर तक के महिला पुरुष, युवक युवतियां आए थे। लगभग तीन साढ़े तीन सौ लोग रहे होंगे, जिन में बहुत मजे हुए लोग भी थे और एकदम नए भी। इन में बहुत सारे कस्बाई ऐसे थे - जो 'महानगर' को नहीं देखे थे। बहुत से 'महानगरीय' ऐसे थे जो 'गांव' नहीं देखे थे। और मजा यह कि दोनों 'महानगर' और 'गांव' फ़िल्मों में देखे हुए थे। और उसी आधार पर अपना- अपना आकलन बिठा रहे थे। तो गांव के लोग महानगर न देख - महानगरियों को 'घूरते' रहे...बड़े निरापद भाव से । सहज और सरल हो कर या कहिए इस का पन दिखा कर। और महानगरीय लोग लमही में अपना वह 'फ़िल्मी गांव' ढूंढ रहे थे। जो ढूंढे नहीं मिला था - उन्हें। तो भी लमही में भारी बागीचा था। मंदिर और तालाब समेत सारी गवंई चीज़ें उपलब्ध थीं। एक वाकिया बताऊं।

'सांझ का समय था। जून का उमस भरा महीना। हवा एकदम बंद थी। कुछ महानगरीय लड़कियां, जिन्हें गोष्ठियों में मजा नहीं आ रहा था, गांव घूमने का इरादा बना बैठीं। हम भी उन के साथ थे। एक किसी गरीब घर में वे ताबड़ तोड़ घुसीं। उस घर की बेटियां और बहुएं चिहुंक कर परदे में हो गईं। घर की 'बूढ़ा' ने घूंघट काढ़े भरसक खातिरदारी की। वह बिना बोले बेना (हाथ पंखा) के जुगाड़ में थीं, और यह 'देवियां' अपने अपने कपड़ों की शिकन

सवांरते क्रीज़ उभारते बोल रही थी, 'हाय क्या तो अभी ठंडी हवा चल रही...आ हा...!' और 'बूढ़ा' ने कहा, 'हां बचवा!' इस बेतहाशा गरमी में भी इन 'देवियों' को 'ठंडी ठंडी हवा' इस लिए लग रही थी 'वह गांव में थीं...।' वैसे तो लमही के इन तीन दिनों के किस्से बहुत हैं। फिर कभी अलग से बयान करुंगा। यों लमही में मैं व्यक्तिगत तौर पर कई लोगों से मिला। प्रेमचंद के बारे में उन से जानना चाहा। अधिकांश प्रेमचंद को इतना ही जानते थे कि वे एक लेखक थे। उन्हें इस बात पर गर्व था बस। या फिर वे अपने वंशज के रूप में अपने परदादा, दादा, काका, भइया के रूप में ही जानते थे - इस का भी उन्हें गर्व था। और कुछ बुजुर्गों के पास सिर्फ़ उन्हें देखने भर की एक धुंधली सी याद थी और कुछ नहीं। सच तो यह है कि एक आम हिंदुस्तानी की तरह उन्हें भी अपनी सामान्य जिंदगी से फुर्सत नहीं मिलती कि वह कुछ 'इस तरह' का सोचें - उन के अपने ही महाभारत से उन्हें छुट्टी नहीं मिलती। चाहे वह नई पीढ़ी हो या बीच की या बूढ़ी पीढ़ी। सब का अपना अपना रोना है।

लमही गांव की अन्य जातियों में लोग प्रेमचंद के बारे में यही जानते हैं कि वह लाला थे, मनसिधुवा थे। बड़े बढ़िया आदमी थे... बस। उन की नई पीढ़ी जो सिर्फ़ 'साक्षर' है, प्रेमचंद नाम भी नहीं जानती। बहुत कुरेदने पर गांव में उन की मूर्ति याद दिलाने पर उन का कहना था कि-'अरे हां, उन का त जानी ले..'.का जान ल?' पूछने पर वह चुप ही रहे। प्रेमचंद की यह स्थिति लमही ही में नहीं, पूरे हिंदुस्तान में है। क्यों कि प्रेमचंद सरकारी तौर पर, सार्वजनिक तौर पर उपेक्षित हैं-यहां तक कि साहित्यिक तौर पर भी। कहने को तो प्रेमचंद को मैं ने भी तब जाना जब पांचवीं या छठवीं में पढ़ता था। 'पंच परमेश्वर' और 'ईदगाह' के मार्फ़त। वैसे ईमानदारी की बात यह है - प्रेमचंद को मैं तब न जानता था। एक सामान्य पाठ्यक्रम की दृष्टि से उन्हें पढ़ा था। पढ़ाया ही ऐसे गया। तब साहित्य में मेरी दिलचस्पी भी न थी। दिलचस्पी तो दूर साहित्य क्या बला है से अनभिज्ञ, साहित्य शब्द से ही गोल था।

हां तो मैं कह रहा था कि प्रेमचंद को मैं ने जाना - 'पंच परमेश्वर' और 'ईदगाह' के मार्फ़त। वो भी इम्तहान के लिहाज़ से। और हम हमारे सहपाठी प्रेमचंद को कम हामिद ईदगाह का मेला, दादी, हामिद के समवयस्कों को अधिक जानते महसूसते थे। बल्कि जब वह कहानी पढ़ी थी, उस साल दशहरे के मेले में जाते वक्त हर दोस्त हामिद जैसा उत्साह बल्कि अतिरिक्त उत्साह जता रहा था। लेकिन हामिद जैसी संवेदना हम में न थी, इसे भला कैसे नकार सकता हूं। बल्कि इस के पूर्व 'पंच परमेश्वर' पढ़ कर लगता था कि अरे, यह तो हमारे गांव की कहानी है। हमारे बाबू जी(चाचा) की एक छोटी बिटिया थी - मंजू। 'पंच परमेश्वर' के चाव में हम उसे 'जुम्मन जुम्मन' कहने लगे। कहने क्या चिढ़ाने लगे। बात यहां तक बढ़ी कि बड़की माई (चाची) से डांट खानी पड़ी। बड़की माई ने कहा, 'का ई मुसुरमाने क बिटिया है...कि जुम्मन जुम्मन कह ल...।' लेकिन आदत नहीं गई...और सीधे जुम्मन जुम्मन न कह

कर मंजू मंजू इस लहजे में कहते कि वह जुम्मन बन जाए मतलब कि वह चिढ़े भी और हम डांट भी न खाएं...। लेकिन डांट खाने से बढ़ कर नौबत कनेठी और तमाचा खाने की भी आ गई। तब मैं ने बड़की माई को पलट कर जवाब दिया था, 'हम उसे मुसलमान कहां बनाते हैं? हम तो उस के नाम 'मंजू' का उलटा भर कर करते हैं - और वह जुम्मन हो जाए तो हम क्या करें - आपने नाम ही ऐसा रखा है - नहीं अच्छा लगता तो - नाम ही बदल डालिए!' तब इतनी समझदारी न थी न ही इतनी हिम्मत कि बड़की माई से कहता कि, 'मुसलमान भी हाड़ मांस का होता है - और हमारे ही जैसा। बस नाम में ही फ़र्क होता है...'।

बहरहाल यह किस्सा कई दिनों तक चला। बड़ी घटनाएं घटी। अब हम किशोर हो रहे थे। 'गुल्ली डंडा' और 'दो बैलों की कथा' तक आ पहुंचे थे। और अपने को एक अजीब दुनिया में पा रहे थे। 'गुल्ली डंडा' खूब छक कर खेलते कोई 'बड़ा' मना करता तो पलट कर पूछते कि, किताब में भी कभी कुछ गलत लिखा होता है...। जवाब मिलता, 'नहीं तो!' और तब हम अपनी अकल के मुताबिक 'बघारते' हुए बताते कि हमारी हिंदी की किताब में पढ़िए, गुल्ली डंडा...!' और वह चुप हो जाते। अपने बैलों में हीरा मोती की ही छाप ढूंढता...नाद...कनहौद...सब कुछ वैसा ही। लेकिन प्रेमचंद कौन बला हैं - हम तब भी नहीं ही जानते थे। हम जानते थे सिर्फ़ उन कहांनियों को; जिन में हम अपनी चेतना, अपना आस-पास देखते महसूसते। लेकिन यह तो महसूस होने ही लगा था कि यह बात हर कहानी में नहीं मिलती - और भूख बढ़ती गई, ऐसी कहानियों को पढ़ने की। फिर जानकार लोगों ने कहा, प्रेमचंद की कहानियां खरीद कर पढ़ो...। अभी खरीदने की जुगत लगा ही रहा था कि गरमियों की छुट्टी में एक दोस्त से 'निर्मला' पढ़ने को मिली। 'मंसाराम, तोता राम...बतौर शैलेष जैदी,...सामान्य पाठक के लिए निर्मला में 'आह' और 'वाह' की पर्याप्त सामग्री है...।' तो साहब हम भी निर्मला के 'आह' और 'वाह' से मुक्त न हो सके। और यहीं से लत पड़ी उपन्यासों को पढ़ने की।

इस बहाव में आ कर बहुत सारे सड़ियल उपन्यास अधिक, पोख्ता उपन्यास कम पढ़े - ये ससुरे पल्ले ही नहीं पड़ते थे और उपलब्ध भी नहीं होते थे आसानी से। खैर इस उपन्यास पढ़ने की लत ने भारी नुकसान दिया। ग्यारहवी में फेल हुआ। फेल कैसे न होता - पाठ्यक्रम की किताबों के नीचें जो एक किताब हुआ करती थी - वह चाहे क्लास हो या घर। बिना पढ़े चैन ही नहीं आता था। हर वक्त गुलशन नंदा, कर्नल रंजीत वगैरह ही दिमाग में छाए रहते। यहां यह बता दू कि प्रेमचंद का रंग दिमाग से उतर चुका था...बुजुर्गों की राय में दीवाना हो चला था। समझदारी के किले तोड़ता - दीवानगी की हद तोड़ रहा था। बहरहाल फेल हुआ तो क्या - गरमी की छुट्टी तो हुई ही। और हर साल की तरह गया गांव, छुट्टी बिताने। अम्मा ने कहा, मौसी के वहां ज़रा हो आओ। मौसी के यहां गया। वहां मौसी के एक देवर थे। पॉकेट बुकों का एक भारी खजाना रख रखा था। मैं गया दो दिनों के लिए था लौटा दस दिन बाद।

वह भी बड़े बेमन से। तो भी कुछ पॉकेट बुक्स मांग लाया था। पढ़ता रहता । अम्मा खुश रहतीं कि बेटा फेल हुआ - इस को महसूस कर रहा है और खूब पढ़ रहा है। उसे क्या पता कि मैं कोर्स नहीं पॉकेट बुक्स पढ़ रहा हूं, यानि फिर फेल होने की तैयारी...बहरहाल अम्मा अम्मा थी और मैं मैं।

गांव में एक हिंदी से एम.ए. चाचा जी थे। बेकार चल रहे थे उन दिनों। अब एक डिग्री कॉलेज में हिंदी के प्रवक्ता हो गए हैं। लेकिन भारतेंदु को 'भारतेंदू जी' ही कहते हैं - और साहित्य की कोई बात हो तो खैनी रगड़ते हुए वह भारतेंदू जी पर ही ला पटकते हैं... इतना कि हम लड़के उन्हें 'भारतेंदू जी' ही नाम से नवाजने लगे। बहरहाल तब उन्हें चाचा कहता था। उमर में काफी बड़े थे पिता जी से कुछ ही बरस छोटे। लिहाज़ ज़बरदस्त ढंग से करना पड़ता था। उन दिनों मुझे ट्रांजिस्टर से फ़िल्मी गानों के सुनने का शौक भी जोर मारने लगा था। गांव में अपने घर ट्रांजिस्टर उपलब्ध न था। सो दुपहरिया में गाने सुनने अपने एक हमजोली दोस्त के पास जाता था। इत्तफाक ही था कि एम.ए. चाचा का वह भतीजा लगता था। भतीजा तो मैं भी लगता था लेकिन ज़रा दूर का। वह सगा था। बहरहाल 'फिल्मी गाना सुनने जाता था लेकिन हमेशा तो गाने नहीं आते थे ट्रांजिस्टर पर। सो बकिया वक्त काटने के लिहाज़ से वहीं पॉकेट बुक्स साथ होते थे। एक दिन मैं पढ़ ही रहा था कि - शायद गुरुदत्त थे कि वही एम.ए. चाचा आ पड़े। मेरे पास पॉकेट बुक देख कर खिल उठे। बोले, 'का रे दयवा...बड़ी नीक किताब लेल बाड़े, देखीं त...' सकुचाते लजाते वह पॉकेट बुक उन्हें थमा मैं फुर्र हो गया। और चोरी पकड़ी गई...सोच सोच कर दिल धक-धक करने लगा। दूसरी सुबह एम.ए. चाचा हाजिर। वह किताब हाथ में लिए आते दिखे...मैं मरा जा रहा था। आते ही मुझे गुहराने लगे अपनी ही शैली में, 'दयवा रे...!' मैं नहीं आया छोटे भाई को भेज दिया। लेकिन उन्हों ने मुझे बुलाया। बड़े स्नेह के साथ वह पॉकेट बुक वापस दी और दुलराते हुए पूछा, 'औरो किताब धइले बाटे..'। मैं गदगद हो उठा था उन के स्नेह से। दौड़ा-दौड़ा घर में गया तीन चार पॉकेट बुक्स ला कर उन्हें थमा दी। फिर तो यह सिलसिला निकल पड़ा - वह मुझ से पॉकेट बुक्स लाते - मैं उन से। अम्मा और खुश हुई कि '...' बहरहाल यह सिलसिला शुरू हुए कुछ ही दिन हुए होंगे कि पिता जी आए। मैं शरमाया-शरमाया सा आंख चुराए रहने लगा - फेल जो हो गया था...। तिस पर आग में घी भी पड़ गया...। हमारे एम.ए. चाचा ने बताया कि आप का लड़का खराब हो रहा है, उपन्यास पढ़ने लगा है...। और शाम मेरी शामत हाजिर थी। वो डांट पिलाई गई कि मत पूछिए। बहरहाल, तफ्तीश के दौरान पाया गया कि मैं यह सारी किताबें मौसी के वहां से लाया हूं, पहले भी मौसी बदनाम थीं। मैं जाता था - वह भेंट में पर्याप्त पैसे देती थीं - और मैं उसे सिनेमा में उड़ाता था - क्लास छोड़-छोड़ कर...। वैसे भी मौसी बड़ी प्रिय थीं मुझे, अब भी उतनी ही प्रिय हैं। खैर, पूछा गया, मैं मौसी के यहां फिर क्यों गया था। मैं ने कोई चारा न देख बताया, अम्मा ने भेजा था। अम्मा की भी खबर ली गई। और फ़ैसला हुआ कि मौसी क्या किसी भी रिश्तेदार के यहां आना जाना बिलकुल बंद। सारी पॉकेट बुकें

जब्त। जुलाई करीब थी, किसी तरह काटा। स्कूल खुला। शहर आ गया। फिर कोर्स में जुट गया। लोगों ने कहा साइंस तुम्हारे बस की नहीं, छोड़ दो। साइंस छोड़ दी। कला विषय ले लिए। अब वक्त ही वक्त होता - मन नहीं मानता - फिर उपन्यासों की ओर आया। पिता जी ने कहा, 'पढ़ना ही है तो ज़रा ढंग की किताबें पढ़ो - क्या उपन्यासों के चक्कर में पड़े रहते हो - वो भी जासूसी फासूसी।' पिता जी के एक मित्र थे। उन्हों ने 'सत्यार्थ प्रकाश' दी। सच, मैं पूरा नहीं पढ़ पाया। एक दिन घूमते-घामते एक बुक स्टाल पर गया - 'प्रेमचंद की सर्वश्रेष्ठ कहानियां' देखीं मन में आया खरीद लूं। किताब एक रुपया की थी। जेब में चवन्नी भी न थी। मन मार कर रह गया। पिता जी से इस मद में पैसे मांगते भी डर लगता था। कि मुहल्ले की एक लड़की जो उमर में मुझ से काफी बड़ी थी के पास वही किताब देखी। मैं ने कहा, 'दीदी इसे मुझे भी पढ़ने को दे दीजिए न!' दीदी पिघल गईं और यह कहते हुए कि, 'गायब नहीं करना, न फाड़ना, जल्दी ही वापस कर देना...।' जाहिर है दीदी मुझे कोरा नादान समझ रही थीं। मैं तब नेकर पहनता ज़रुर था लेकिन क्या क्या खुराफातें सोचा करता था- कोई भी भला क्या जाने...।

मुझे आब भी याद है - वह बरसाती दिन। और दिन भर में ही सारी कहानियां पढ़ गया था। पूस की रात, कफन, मिस पद्मा, बूढ़ी काकी, नमक का दारोगा, शतरंज के खिलाड़ी, सदगति, बड़े घर की बेटी, गृहदाह आदि...और मैंने अब प्रेमचंद की रचनाएं, किताबें ढूंढ ढूंढ कर पढ़नी शुरू कर दी। सच बताऊं - और लेखक रुमानी तौर पर जितना उड़ाते थे - प्रेमचंद नहीं उड़ा पाते थे - हमारे किशोर दिमाग को। प्रेमचंद की कहानियां पढ़ते-पढ़ते कभी-कभी एक अजीब टूटन और घुटन सी होने लगती। लेकिन तभी लगा कि यह ईदगाह से गुल्ली डंडा की यात्रा में मैं भी शामिल...। कफन, पूस की रात, सदगति से पूरा पूरा तो नहीं कहीं कहीं साक्षात्कार ज़रूर हो जाता था - अपने गांव की चमरौटी में। खास कर अपने गांव की चौहद्दी में प्रेमचंद के पात्रों को मैं भरा-पुरा पाने लगा था, चाहे वह रंगभूमि के हों- गबन या गोदान के। रुढ़ियों, शोषकों के जबड़े में फंसे प्रेमचंद के पात्रों को देख कर अजीब सी उत्तेजना मन में समा जाती। जब कि उन रुमानी जासूसी उपन्यासों के चरित्र देखना, महसूसना तो दूर, सोचने में भी कहीं नज़र नहीं आते...। कोफ्त होने लगती। मैं पछताने लगा कि उफ्फ इतना सारा वक्त मैं ने इन बेहूदी किताबों पर क्यों जाया किया? अब मैं बी.ए. में पढ़ने लगा था। हिंदी, अंगरेजी, संस्कृत लिए थे। इस लिए साहित्य चाहे वह किसी तरह का हो - पढ़ने की मनाही न थी। भीतर ही भीतर यह समझा जाने लगा कि लड़का 'समझदार' होने लगा है...लेकिन आलमारी की तलाशी कभी कभार हो ही जाती कि 'लड़का, क्या पढ़ रहा है और बार बार जबानी तौर पर भी ताकीद की जाती, 'कोर्स पर ध्यान नहीं दे रहे हो पछताओगे...।' सचमुच मैं कोर्स पर ध्यान कम बेस क्या नहीं ही दे पाता था - जी उचट गया था। कुछ 'कामरेड' दोस्त मिल गए थे, उन्हों ने पूरी तौर पर कनविंस कर रखा था कि यह शिक्षा प्रणाली घटिया है, सो यह

अकादमिक पढ़ाई करना भी घटियापन के सिवा कुछ नहीं। और मैं भी बाकायदा जब तब 'यह सब' लोगों को सुनाने लगा था! लोग सुनते - ऊबते और उकता कर खिसक लेते। मैं किला फतह समझता। नतीज़ा यही निकला कि फिर फेल हुआ। कई मोड़ों पर । टूटते जुड़ते तमाम लेखकों से गुज़रा फिर प्रेमचंद की ओर आ पलटा। [इस बीच थोड़ा बहुत लिखने पढ़ने लगा था। कब कैसे यह दूसरी बात है।] प्रेमचंद मुझे अपनी दीवानगी, असफलता, संघर्ष हर कहीं अपने साथ मिलते। यह वह घड़ी थी जब मैं प्रेमचंद को सिर्फ ऊपर ही ऊपर जानता था। गोरखपुर में रहता था। और यह भी नहीं जानता था कि प्रेमचंद यहां कभी बचपन के अनमोल क्षण और प्रौढ़ता के जुझारूपन से गुज़रे हैं। बाले मियां के मैदान रोज जाता, खेलने-घूमने। रावत पाठशाला, तुर्कमानपुर, नार्मल स्कूल, घंटाघर और रेती के पास से भी कभी कभार ज़रूर गुज़रता। कभी पैदल, कभी साइकिल से। लेकिन बेखबर कि प्रेमचंद का यहां से कभी कोई वास्ता रहा होगा। साहित्यिकों में विश्वविद्यालय में कभी कोई चर्चा भी न करता - इन सारी बातों की - और प्रेमचंद की रचनाएं छोड़ उन के बारे में फिलहाल गंभीरता से, कुछ पढ़ने को न मिला था - तो क्या मैं सपना देखता कि प्रेमचंद गोरखपुर में..।'

खैर, 31 जुलाई को नार्मल स्कूल के कुछ छात्रों ने एक गोष्ठी रखी- मुझे भी बुलाया गया...फिर मालूम हुआ कि अरे, प्रेमचंद और गोरखपुर...हद है ...मैं बड़ा अभिभूत हुआ। और सचमुच पहली बार प्रेमचंद से बड़ी आत्मीयता महसूस हुई। हद दरजे की आत्मीयता। नार्मल स्कूल, रेती चौक, बाले मियां का मैदान मेरे लिए अब पहले जैसा निर्जीव नहीं रह गया था। कह सकते हैं - ये जगहें मेरे लिए मक्का मदीना सी बन गईं। फिर प्रेमचंद और गोरखपुर के मुत्तलिक मैं ने जानकारी लेनी शुरू कर दी - बड़े उत्साह से इस काम में लगा रहा। गोरखपुर में हर जगह प्रेमचंद को ढूंढता फिरने लगा...। लेकिन मुक्कमल तौर पर प्रेमचंद मुझे नहीं मिले। गोरखपुर वालों ने प्रेमचंद को भुलाया ही नहीं गायब कर रखा था। और मैं था कि बेचैन था।* प्रेमचंद मेरे अजीज बन चले थे। तरह तरह की कल्पनाएं करता...। आकार पर आकार गढ़ता-उसी राप्ती किनारे जहां गांधी जी से प्रभावित हो कर प्रेमचंद ने सरकारी नौकरी छोड़ स्वराज आंदोलन में हिस्सा लेने का निश्चय किया था। लेकिन मेरे दिमाग में प्रेमचंद की एक अनगढ़ सी तस्वीर उगती मिटती, मिटती उगती। और यह क्रम चलता टूटता कि प्रेमचंद से मैं चिढ़ने लगा। क्यों कि जो आदर्श, जो सूत्र उन से सीखे थे - वे व्यावहारिक स्तर पर देखने में तो बड़े 'साबूत', 'एक्टिव' लगते। लेकिन 'करने' के स्तर पर 'तोड़' डालते थे। इस बीच प्रेमचंद की व्यक्तिगत ज़िंदगी के पन्ने भी पढ़ने को मिलने लगे। जो ढेर सारी अनैतिक बाते उन के बारे में बताती ही नहीं पुष्ट भी करती थीं। उन के साहित्य के बारे में भी अजब गजब बातें सुनने पढ़ने को मिलने लगीं। लेकिन स्थिति यह थी कि लाख चाहने पर भी अंतर्मन प्रेमचंद को गरियाने न देता। कि तभी लगा अरे, प्रेम-चंद-प्रेमचंद ही हैं। प्रेमचंद को कई कोनों से जान लेने के बाद मैं इसी निष्कर्ष पर अपने को पाया, निहायत व्यक्तिगत स्तर पर

कि : प्रेमचंद न होते तो मैं जिंदा न होता - कभी का मर गया होता। हर मोड़ पर। वही मोड़ जो 'किशोर' था तब तोड़ते थे, आज 'युवा' हूं तब भी 'तोड़ते' हैं - आगे भी 'तोड़ेंगे'। लेकिन यह जानता हूं - कि इस टूटने से मैं बचूंगा, इस टूटने से लड़ूंगा, इस 'टूटने' को मैं तोड़ूंगा। यहां यह बता दूं कि प्रेमचंद के कई पात्रों को जब तब स्थितियों के मुताबिक हमेशा ही अपने भीतर बाहर, जीता महसूसता रहा हूं। चाहे वह पात्र छोटा से छोटा हो - नायक, खलनायक हो यहां तक कि संवेदना के स्तर पर महिला पात्रों को भी जीता रहा हूं - अपने ढंग से। न सही पूरा पूरा उन का जुझारुपन मुझे बहुत भाता रहा है। खास कर इन स्थितियों में:

तह में भी है हाल वही जो तह के ऊपर हाल
मछली बच कर जाय कहां जब जल ही सारा जाल।

माधव मधुकर उन दिनों एक कविता गोदान पर पढते थे। उन्हों ने प्रेमचंद के गोदान पर एक छोटी सी कविता में आज की स्थितियों को बड़ी खूबी से उभारा है।

होरी की गाय
अभी तक घर नहीं आई
बैंकर खन्ना
अब भी नेता है
देशी पहनता
और विदेशी पीता है।

स्थितियां चाहें लाख बदल गई हों, देश काल और संदर्भ बदल गए हों - हमारे बुजुर्ग अब भी होरी की स्थितियों विसंगतियों में ही नहीं वरन दस गुणी विपरीत स्थितियों और चौतरफा विसंगतियों को झेल रहे हैं। ऐसे में हम गोबर गांव छोड़ शहर और शहर आ कर, 'जब भी पांव जले धूप में/घर ही याद आए।' को कसमसा-कसमसा कर गुनगुनाते हुए ज़िंदगी बनाम सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक गलाजतों का किला तोड़ने में लगे हुए हैं। तोड़ते हुए खुद टूट रहे हैं। हां लेकिन टूटे नहीं हैं-टूटेंगे भी नहीं। टूटेगी तो यह व्यवस्था - यही हम जैसे तमाम 'गोबरों' की तमन्ना है। और इस तमन्ना को हम गोबर हासिल कर के रहेंगे। हो सकता है इस क्रम में कुछ होरी गोबर पीढ़ी दर पीढ़ी और जुड़े - कहीं और तेज़ धारदार और मज़बूत हौसलों के साथ।

[१९८२ में भावना प्रकाशन, दिल्ली से प्रकाशित प्रेमचंद व्यक्तित्व और रचनादृष्टि, से साभार]

सहज, सरल ग्रामीण प्रेमचंद

-महादेवी वर्मा



प्रस्तुति-रवि रतलामी
संपादक-रचनाकार

प्रेमचंदजी से मेरा प्रथम परिचय पत्र के द्वारा हुआ। तब मैं आठवीं कक्षा की विद्यार्थिनी थी! मेरी 'दीपक' शीर्षक एक कविता सम्भवत: 'चांद' में प्रकाशित हुई। प्रेमचंदजी ने तुरन्त ही मुझे कुछ पंक्तियों में अपना आशीर्वाद भेजा। तब मुझे यह ज्ञात नहीं था कि कहानी और उपन्यास लिखने वाले कविता भी पढ़ते हैं। मेरे लिए ऐसे ख्यातनामा कथाकार का पत्र जो मेरी कविता की विशेषता व्यक्त करता था, मुझे आशीर्वाद देता था, बधाई देता था, बहुत दिनों तक मेरे कौतूहल मिश्रित गर्व का कारण बना रहा।

उनका प्रत्यक्ष दर्शन तो विद्यापीठ आने के उपरान्त हुआ। उसकी भी एक कहानी है। एक दोपहर कौ जब प्रेमचंदजी उपस्थित हुए तो मेरी भक्तिन ने उनकी वेशभूषा से उन्हें भी अपने ही समान ग्रामीण या ग्राम-निवासी समझा और सगर्व उन्हें सूचना दी--गुरुजी काम कर रही हैं।

प्रेमचंदजी ने अपने अट्टहास के साथ उत्तर दिया--तुम तो खाली हो। घडी-दो घड़ी बैठकर बात करो।

और तब जब कुछ समय के उपरान्त मैं किसी कार्यवश बाहर आई तो देखा नीम के नीचे एक चौपाल बन गई है। विद्यापीठ के चपरासी, चौकीदार, भक्तिन के नेतृत्व में उनके चारों ओर बैठे हैं और लोक-चर्चा आरम्भ है।

प्रेमचंदजी के व्यक्तित्व में एक सहज ? संवेदना और ऐसी आत्मीयता थी, जो प्रत्येक साहित्यकार का उत्तराधिकार होने पर भी उसे प्राप्त नहीं होती। अपनी गम्भीर मर्मस्थर्शनी दृष्टि से - उन्होंने जीवन के गंभीर सत्यों, मूल्यों का अनुसंधान किया और ' अपनी सहज - सरलता से, आत्मीयता' से उसे सब ओर दूर-दूर तक पहुंचाया।

जिस युग में उन्होंने लिखना आरम्भ 'किया 'था, उस समय हिन्दी कथा-साहित्य - जासूसी और तिलस्मी कौतूहली जगत् में ही सीमित था। उसी बाल- सुलभ कुतूहल में - प्रेमचन्द उसे एक व्यापक धरातल पर ले आये, जो सर्व सामान्य था। उन्होंने साधारण कथा, मनुष्य की साधारण घर-घर की कथा, हल-बैल की कथा, खेत-खलि-हान की कथा, निर्झर, वन, पर्वतों की कथा सब तक इस प्रकार पहुंचाई कि वह आत्मीय तो थी ही, नवीन भी हो गई।

प्राय: जो व्यक्ति हमें प्रिय होता है, जो वस्तु हमें प्रिय होती है हम " उसे देखते हुए ' थकते नहीं। जीवन का सत्य ही ऐसा है। जो आत्मीय है वह चिर नवीन भी है। हम उसे बार-बार

देखना चाहते हैं। कवि के कर्म से कथाकार का कूर्म भिन्न होता है। 'कवि अन्तर्मुखी रह सकता है और जीवन की गहराई से किसी सत्य को खोज कर फिर ऊपर आ सकता है। लेकिन कथाकार को बाहर-भीतर दोनों दिशाओं में शोध करना पडता है, उसे निरन्तर सबके समक्ष रहना पड़ता है। शोध भी उसका रहस्य- मय नहीं हो सकता, 'एकान्तमय नहीं हो सकता। जैसे गोताखोर जो समुद्र में' जाता है, अनमोल मोती खोजने के लिए, वहीं रहता है और - मोती मिल जाने पर ऊपर आ जाता है। ' परन्तु नाविक को तो अतल गहराई का ज्ञान भी रहना चाहिए और ज्वार-भाटा भी समझना- चाहिए, अन्यथा वह किसी दिशा में नहीं जा सकता।

प्रेमचंद ने जीवन के अनेक संघर्ष झेले और किसी संघर्ष में उन्होंने पराजय की अनुभूति नहीं प्राप्त की। पराजय उनके जीवन में कोई स्थान नहीं रखती थी। संघर्ष सभी एक प्रकार से पथ के बसेरे के समान ही उनके लिए रहे। वह उन्हें छोड़ते चले गये। ऐसा कथाकार जो जीवन को इतने सहज भाव से लेता है, संघर्षों को इतना सहज मानकर, स्वाभाविक मानकर चलता है, वह आकर फिर जाता नहीं। उसे मनुष्य और जीवन भूलते नहीं। वह भूलने के योग्य नहीं है। उसे भूलकर जीवन के सत्य को ही हम भूल जाते हैं। ऐसा कुछ नहीं है कि जिसके सम्बन्ध में प्रेमचंद का निश्चित मत नहीं है। दर्शन, साहित्य, जीवन, राष्ट्र, साम्प्रदायिक एकता, सभी विषयों पर उन्होंने विचार किया है और उनका एक मत और ऐसा कोई निश्चित मत नहीं है, जिसके अनुसार उन्होंने आचरण नहीं किया। जिस पर उन्होंने विश्वास किया, जिस सत्य को उनके जीवन ने, आत्मा ने स्वीकार किया उसके अनुसार उन्होंने निरन्तर आचरण किया। इस प्रकार उनका जीवन, उनका साहित्य दोनों खरे स्वर्ण भी हैं और स्वर्ण के खरेपन को जांचने की कसौटी भी है।



प्रेमचंद और मार्क्सवाद का सौंदर्यशास्त्र

वीरेंद्र यादव

प्रेमचंद ने बिना मार्क्सवाद का नाम लिए कहा था- 'हमारी कसौटी पर वही साहित्य खरा उतरेगा, जिसमें उच्च चिंतन हो, स्वाधीनता का भाव हो, जीवन की सच्चाइयों का प्रकाश हो।



मार्क्सवादी सौंदर्यदृष्टि मनुसंहिता से निस्सृत कोई ऐसी जड़ अवधारणा नहीं है, जो कालांतर में अप्रासंगिक होने को अभिशप्त हो। हां, यह जरूर है कि मार्क्सवादी राजनीति का पराभव कुछ यथास्थितिवादियों और अराजनीति के पैरोकारों को उस महाज्ञानी की भूमिका में जरूर ला खड़ा करता है, जो नवजात शिशु का माथा देख कर कभी न कभी बच्चे की मृत्यु की भविष्यवाणी की दिव्यदृष्टि रखता है। सच तो यह है कि मार्क्सवादी सौंदर्यदृष्टि समाज सापेक्षता और समता-समानता के जिन परिवर्तनकामी मूल्यों को लेकर प्रतिश्रुत रही है, आज उसका विस्तार हुआ है। आज मार्क्सवादी सौंदर्यदृष्टि प्राणवायु की तरह समूचे साहित्यिक-कलात्मक परिदृश्य पर विस्तारित है। हिंदी साहित्य संसार में स्त्री, दलित, आदिवासी और हाशिए के समाज की जीवंत उपस्थिति और केंद्रीयता मार्क्सवादी सौंदर्यबोध का अद्यतन और अधुनातन विस्तार है।

प्रेमचंद ने बिना मार्क्सवाद का नाम लिए कहा था- 'हमारी कसौटी पर वही साहित्य खरा उतरेगा, जिसमें उच्च चिंतन हो, स्वाधीनता का भाव हो, जीवन की सच्चाइयों का प्रकाश हो, सौंदर्य का सार हो, सृजन की आत्मा हो- जो हममें गति और बेचैनी पैदा करे, सुलाए नहीं; क्योंकि अब और ज्यादा सोना मृत्यु का लक्षण है।' कला जीवन के लिए मार्क्सवादी सौंदर्यबोध का यही तो सारतत्त्व है। निराला की कविता 'तोड़ती पत्थर' सौंदर्य और श्रम के समन्वय की कला दृष्टि का उत्कृष्ट उदाहरण है। निराला की आंख मजदूरनी के 'श्याम तन, भर बंधा

यौवन' को देखती अवश्य है, लेकिन वह टिकती है 'नत नयन प्रिय/ कर्म रत मन/ गुरु हथौड़ा हाथ' पर। आखिर क्यों निराला 'चतुरी चमार' को कबीर पदावली का विशेषज्ञ स्वीकार कर उसके बारे में यह लिख सके कि 'वह एक ऐसे जाल में फंसा है, जिसे वह काटना चाहता है, भीतर से उसका, पूरा जोर उभर रहा है, पर एक कमजोरी है, जिसमें बार-बार उलझ कर रह जाता है?' और क्यों आचार्य रामचंद्र शुक्ल दृढ़ विश्वास के साथ यह लिख सके कि 'ऊंची-नीची श्रेणियां समाज में बराबर थीं और बराबर रहेंगीं। अत: शूद्र शब्द को नीची श्रेणी के मनुष्य का- कुल, शील, विद्या, बुद्धि, शक्ति आदि सबमें अत्यंत न्यून का- बोधक मानना चाहिए।' यह लिखते हुए आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने यह भी लिखा था कि 'योरोप में नीची श्रेणियों में ईर्ष्या, द्वेष और अहंकार का प्राबल्य हुआ, जिससे लाभ उठा कर 'लेनिन' अपने समय में महात्मा बना रहा। समाज की ऐसी वृत्तियों पर स्थित 'महात्म्य' का स्वीकार घोर अमंगल का सूचक है।' इस कथन में सर्वहारा के नायक लेनिन के मानमर्दन और वर्णव्यवस्था के समर्थन का जो रिश्ता है वह सौंदर्यदृष्टि से विच्छिन्न नहीं है। आखिर क्यों आचार्य शुक्ल के 'लोकमंगल' में श्रमशील शूद्र समाज 'अत्यंत न्यून का बोधक' है?

मार्क्सवादी सौंदर्यशास्त्र उस 'अभिजनवाद' में भी सूराख करता है, जो साहित्य के केंद्र से 'होरी' (गोदान) को बेदखल करके 'शेखर' (शेखर एक जीवनी) को आधुनिक हिंदी कथा-साहित्य का सबसे सशक्त प्रतिनिधि करार देता है। प्रश्न यह भी है कि आखिर क्यों निर्मल वर्मा का मार्क्सवाद विरोध और वर्ण-व्यवस्था का समर्थन अन्योन्याश्रित है? आखिर क्यों उनकी सौंदर्यदृष्टि से वर्णव्यवस्था की कुरूपता अलक्षित रहती है। इतना ही नहीं, वे इसे प्रश्नांकित करने के बजाय यह कहना जरूरी समझते हैं कि 'जीवन के हर क्षेत्र में अपनी जगह चाहे वह वर्णव्यवस्था में ही निहित क्यों न हो, के प्रति निष्ठा रखने में ही मनुष्य का देवत्व छिपा रहता है।' सच तो यह है कि मार्क्सवादी सौंदर्यदृष्टि को खारिज करने या उसे अप्रासंगिक करार दिए जाने के पीछे उन आस्वादपरक अभिजनवादी कलामूल्यों की रक्षा है, जो साहित्य को जीवनसंग्राम से बेदखल करना चाहते हैं। मार्क्सवादी सौंदर्यचेतना को खारिज किए बिना क्या अशोक वाजपेयी यह कह सकते थे कि '...एक ऐसे समय में जब देह सर्वथा अलक्षित जा रही हो मानो भारतीय परंपरा में देह और शृंगार का इतना बड़ा प्रचलन न रहा हो, ऐसे में जब मसलन ऐसा लिखा जा रहा है मानो हिंदी समाज में या हिंदी के मनुष्य में सेक्सुअलिटी होती ही नहीं है। ऐसे में देह की बात करना वैचारिक हस्तक्षेप है।' कहने की आवश्यकता नहीं कि 'देह और शृंगार' के माध्यम से किया जाने वाला वैचारिक हस्तक्षेप उस भोगवादी दर्शन का ही उपजीव्य है, मार्क्सवाद जिसका प्रत्याख्यान करता है।

विचारणीय यह भी है कि मार्क्सवादी दृष्टि को प्रश्नांकित या खारिज करते हुए किन साहित्यिक कलात्मक मूल्यों को प्रतिष्ठित किया जा रहा है? दलित सौंदर्यशास्त्र की कसौटी पर मार्क्सवादी साहित्य-दृष्टि को प्रश्नांकित किए जाने के निहितार्थ वही नहीं हैं जो कलावादियों

द्वारा मार्क्सवाद को अप्रासंगिक करार दिए जाने के। दलित सौंदर्यशास्त्र की भूमि से मार्क्सवाद की सीमाओं को इंगित किया जाना मार्क्सवादी सौंदर्यदृष्टि के देशज विस्तार की मांग है, जबकि कलावादियों द्वारा मार्क्सवादी दृष्टि को खारिज किया जाना साहित्य से व्यापक सामाजिक सरोकारों को ही खारिज किया जाना है। यह अकारण नहीं है कि मार्क्सवाद को खारिज करने वाला कलावाद 'मैला आंचल' सरीखी कथाकृति में मौजूद 'लोकगीतों की संवेदना, लहलहाते गद्य और अद्भुत लयात्मकता' पर तो लहालोट है, लेकिन उसके सामाजिक निहितार्थों पर नहीं। क्या यह कहने की जरूरत है कि सांस्कृतिक राष्ट्रवाद और वर्णाश्रमी हिंदुत्व का जो क्रिटीक 'मैला आंचल' में उपस्थित है, क्या उसका खुलासा होने के बाद भी रेणु कुलीन साहित्य तंत्र के बीच उतने ही दुलारे लेखक रहेंगे? यह समझने की जरूरत है कि एक ही परंपरा और कथा-भूमि के लेखक होने के बावजूद साहित्य के कुलीनतंत्र से प्रेमचंद क्यों बहिष्कृत हैं और रेणु क्यों समादृत?

दरअसल, मार्क्सवादी कलादृष्टि साहित्य को साहित्यिक संरचना के साथ-साथ सामाजिक संरचना के रूप में पढ़े जाने का जो विवेक प्रदान करती है वह मार्क्सवाद विरोधियों के लिए सांड़ को लाल कपड़ा दिखाने जैसा है। साहित्य का संदर्भविहीन पाठ साहित्यिक कृति को महज एक कलात्मक उत्पाद के रूप में बदल देता है। तकनीक की केंद्रीयता ही 'खिलेगा तो देखेंगे' को प्रासंगिक बनाती है और 'धरती धन न अपना' को साहित्य के कुलीनतंत्र से बहिष्कृत रखती है। कहने की आवश्यकता नहीं कि जब बात महज तकनीकी दक्षता और आस्वादपरक कलावाद तक सीमित होगी तो साहित्य से समाज, लोकजीवन, इतिहास, नारी-विमर्श और दलित-अस्मिता जैसे प्रश्न बेदखल हो जाएंगे और साहित्य महज एक 'उत्पाद' बन कर रह जाएगा, जिसके न कोई सामाजिक संदर्भ होंगे और न कोई जीवन मूल्य। जरूरत मार्क्सवादी सौंदर्यबोध को खारिज किए जाने की न होकर इसे भारतीय यथार्थ में रच-पग कर विस्तारित किए जाने की है। नंदीग्राम और सिंगुर ने मार्क्सवाद की जिस राजनीतिक समझ को प्रश्नांकित किया है उसे महाश्वेता देवी के जनपक्षधर साहित्यबोध से ही समझा जा सकता है। मार्क्सवादी के राजनीतिक पराभव से न तो कलावाद की औचित्यसिद्धि होती है और न ही उसे पुनर्जीवन प्राप्त हो सकता है। साहित्य के जनतंत्र को भोगवाद में रचे-पगे सौंदर्यबोध की नहीं, बल्कि उस परिवर्तनकामी कला-निकष की जरूरत है, मार्क्सवाद जिसकी पूर्वपीठिका है। अफसोस कि यथास्थितिवादी कलावाद की जिन चौकियों से मार्क्सवादी सौंदर्यबोध पर हमले किए जा रहे हैं वे जाने-अनजाने सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के बगलगीर हैं, इसकी अनदेखी नहीं की जानी चाहिए।

मार्क्सवादी कलादृष्टि साहित्य को साहित्यिक संरचना के साथ-साथ सामाजिक संरचना के रूप में पढ़े जाने का जो विवेक प्रदान करती है वह मार्क्सवाद विरोधियों के लिए सांड़ को लाल कपड़ा दिखाने जैसा है। साहित्य का संदर्भविहीन पाठ साहित्यिक कृति को महज एक कलात्मक उत्पाद के रूप में बदल देता है।



लेख

प्रेमचंद से हम कहानी लिखना सीख सकते हैं

रमेश उपाध्याय

कहा जा सकता है कि उन्नीसवीं सदी में पैदा हुए और बीसवीं सदी के पूर्वार्ध में ही चल बसे प्रेमचंद से आज इक्कीसवीं सदी के लेखक क्या सीख सकते हैं! कहाँ प्रेमचंद का समय, कहाँ आज का समय! देश कितना बदल गया है! दुनिया कितनी बदल गयी है! साहित्य भी तो कितना बदल गया है! त्वरित दूरसंचार के साधनों ने, दुनिया भर की सूचनाओं के विस्फोट ने, ऑनलाइन लेखन-प्रकाशन की नयी तकनीक ने और भूमंडलीकरण के दौर में साहित्य के उत्पादन और वितरण के नये तौर-तरीकों ने साहित्य के क्षेत्र में कितने क्रांतिकारी परिवर्तन कर दिये हैं! ऐसे में आज का नया लेखक इतने पुराने प्रेमचंद से क्या सीख सकता है?

यह भी कहा जा सकता है कि प्रेमचंद तो मुखय रूप से गाँवों और किसानों के बारे में लिखने वाले लेखक थे, सीधे-सादे आदमी थे और ऐसी सरल भाषा में लिखते थे कि अल्पशिक्षित साधारण पाठक भी उनके लिखे हुए को पढ़ सके। अगर वे आज भी हिंदी के सबसे लोकप्रिय लेखक हैं, सबसे ज्यादा पढे जाते हैं, तो उनकी इस लोकप्रियता का कारण उनके लेखन में पायी जाने वाली सरलता ही है, जिससे साधारण पाठक भी उन्हें आसानी से समझ लेते हैं। उनके लेखन में श्रेष्ठ साहित्य में पायी जाने वाली सूक्ष्मता, गंभीरता और कलात्मकता कहाँ है, जो आज का जटिल जीवन जीने वाले तथा प्रबुद्ध पाठकों के लिए लिखने वाले श्रेष्ठ लेखकों में पायी जाती है? प्रेमचंद जैसे साधारण लेखक से आज के लेखक क्या सीख सकते हैं?

लेकिन मुझे लगता है कि प्रेमचंद का साहित्य ऊपर से जितना सरल और साधारण लगता है, उतना सरल और साधारण वास्तव में है नहीं। कुछ साल पहले जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय की एक शोधछात्र द्वारा पूछे गये एक प्रश्न के उत्तर में मैंने कहा था--महान लेखकों में कुछ लेखक ऐसे होते हैं, जो पहली बार पढ़ने पर समझ में नहीं आते और जिनकी रचनाएँ बार-बार पढ़े जाने पर ही अपनी महानता के रहस्य खोलती हैं। लेकिन कुछ महान लेखक ऐसे भी होते हैं, जो पहली बार पढ़ने पर बड़े साधारण-से लगते हैं, लेकिन जिन्हें फिर से पढ़ने पर हम उनकी असाधारणता देखकर चकित रह जाते हैं और उन्हें बार-बार पढ़ते हैं। प्रेमचंद ऐसे ही महान लेखक हैं।

और यह मेरा ही नहीं, मेरे समकालीन कई अन्य लेखकों का भी अनुभव है। उदाहरण के लिए, कवि कुँवर नारायण का कहना है--"प्रेमचंद की ऊपर से सरल-सी दिखती हुई कृतियों

के पीछे एक अत्यंत गंभीर, चिंतनशील और सजग-बुद्धि कलाकार छिपा होता है, जो जीवन का न केवल सूक्ष्मता से निरीक्षण करता है, बल्कि उतनी ही सूक्ष्मता से विवेचन भी करता है।...प्रेमचंद इस ओर पूरी तरह सचेत थे कि उनका साहित्य श्रेष्ठतम की तुलना में खरा उतरे। वे अच्छी तरह जानते थे कि इसके लिए जीवन को केवल सतही तौर पर देखना और भाव-द्रवित हो जाना काफी नहीं, एक दूसरी तरह की तैयारी भी जरूरी है--तैयारी जिसका ताल्लुक साहित्यकार की दुनिया से है, उसकी संवेदनाओं और समझ के विस्तार से है।"

प्रेमचंद ने यह तैयारी लड़कपन में ही शुरू कर दी थी। कथासाहित्य में उनकी दिलचस्पी का एक रोचक वर्णन रघुपति सहाय 'फिराक गोरखपुरी' ने किया है। प्रेमचंद जब गोरखपुर के एक हाई स्कूल में पढ़ते थे, उनकी दोस्ती अपनी कक्षा के एक लड़के से हो गयी, जिसका पिता तंबाकू विक्रेता था और अपनी मित्र-मंडली के बीच बैठकर 'तिलिस्मे-होशरुबा' पढ़ा-सुना करता था। प्रेमचंद अपने दोस्त के साथ उसके घर चले जाते और वहाँ घंटों बैठकर उन रूमानी अफसानों को सुना करते। उन कहानियों में बयान की जो रवानी और स्पष्टता होती थी, उससे प्रेमचंद इतने प्रभावित हुए कि आगे चलकर अभिव्यक्ति की ये शक्तियाँ उनके लेखन में बड़ी खूबसूरती के साथ फली-फूलीं।

प्रेमचंद ने जो शिक्षा प्राप्त की थी, वह भी कोई साधारण शिक्षा नहीं थी। वे उर्दू और हिंदी में लिखते थे, लेकिन उर्दू और हिंदी का साहित्य ही नहीं पढ़ते थे। उन्होंने बी.ए. तक अंग्रेजी और फारसी पढ़ी थी। साथ में दर्शन और इतिहास भी पढ़ा था। उन्होंने उर्दू में लिखी 'दास्तानें' पढ़ी थीं, नजीर अहमद के 'किस्से' पढ़े थे, रतन नाथ सरशार का 'फसाना-ए-अजायब' पढ़ा था ('आजाद-कथा' के नाम से उस महाग्रंथ का अनुवाद भी किया था) और मिर्जा हादी रुस्वा का 'उमराव जान' भी पढ़ा था। बांग्ला के रवींद्रनाथ और बंकिम को अनुवादों में पढ़ा था और अंग्रेजी के जरिये यूरोपीय लेखकों को भी खूब पढ़ा था। तोल्स्तोय, रोम्याँ रोलाँ, चार्ल्स डिकेंस और थैकरे से वे बहुत प्रभावित थे। जोला और फ्लाबेयर को भी उन्होंने पढ़ा था, पर इन लेखकों का नग्न यथार्थवाद उन्हें पसंद नहीं था। इकबाल, गांधी और टैगोर जैसे अपने समकालीन चिंतकों के विचारों का आलोचनात्मक अध्ययन भी उन्होंने किया था।

प्रेमचंद की इस 'तैयारी' को देखकर हम समझ सकते हैं कि अच्छा लिखने के लिए अच्छा पढ़ना कितना जरूरी है। खास तौर से विभिन्न भाषाओं के उस्ताद लेखकों को पढ़ना। लेकिन पढ़ने का मतलब उस्तादों की नकल करना नहीं, बल्कि उत्कृष्ट लेखन की परंपरा को आगे बढ़ाना है। (वैसे उस्ताद लेखकों की नकल की भी नहीं जा सकती। जैसे प्रेमचंद हमारे उस्ताद लेखक हैं, पर उनसे सीखा तो जा सकता है, उनकी नकल नहीं की जा सकती।)

प्रेमचंद से हम बहुत-सी जरूरी चीजें सीख सकते हैं। मसलन, अच्छा लिखने के लिए "क्या लिखना है?" के साथ-साथ यह भी तय कर लेना जरूरी है कि "क्या नहीं लिखना है"। प्रेमचंद हिंदी-उर्दू दोनों भाषाओं के तथा भारत और पाकिस्तान दोनों देशों में पढ़े और पढ़ाये जाने वाले साहित्यकार हैं। उर्दू साहित्य का इतिहास लिखने वाले मुहम्मद हसन ने कहा है

कि प्रेमचंद ने अपने से पहले के उर्दू साहित्य को खूब पढ़ा और उससे प्रभावित भी हुए। उन्होंने उसकी परंपरा को आगे भी बढ़ाया, लेकिन उसमें से बहुत कुछ लिया, तो बहुत कुछ छोड़ा भी। और जो लिया, उसमें अपना कुछ नया जोड़ा भी।

पश्चिमी साहित्य से प्रेमचंद ने यथार्थवाद लिया। लेकिन आज के कुछ जादुई यथार्थवादियों की तरह आँख मूँदकर अपनाते या नकल करते हुए नहीं। उस समय यूरोपीय साहित्य में 'नेचुरलिज्म' (प्रकृतवाद) और 'क्रिटिकल रियलिज्म' (आलोचनात्मक यथार्थवाद) नामक दो प्रकार के यथार्थवाद चल रहे थे। प्रेमचंद ने प्रकृतवाद को "नग्न यथार्थवाद" कहा और खारिज किया; जबकि "साहित्य जीवन की आलोचना है" कहते हुए आलोचनात्मक यथार्थवाद को अपनाया। लेकिन उसमें भी उन्होंने अपना कुछ नया जोड़ा और अपने यथार्थवाद को "आदर्शोन्मुख यथार्थवाद" का नाम दिया।

हिंदी के आलोचकों ने प्रेमचंद के आदर्शोन्मुख यथार्थवाद को आज तक भी नहीं समझा है। वे आदर्शवाद को बुरा और यथार्थवाद को अच्छा समझते हैं। वे प्रेमचंद साहित्य के अधिकांश को आदर्शवादी (सुधारवादी, हृदय-परिवर्तनवादी आदि) मानते हैं और अंतिम समय की उनकी 'कफन' और 'गोदान' जैसी कुछेक रचनाओं को ही यथार्थवादी बताते हैं। लेकिन 'अर्ली मार्क्स' और 'लेटर मार्क्स' की तर्ज पर प्रेमचंद को पूर्ववर्ती और परवर्ती प्रेमचंद में बाँटना प्रेमचंद को सही ढंग से समझने के बजाय अपनी गलत समझ को उन पर थोपना है।

प्रेमचंद को प्रेमचंद की शर्तों पर समझकर ही हम उनके आदर्शोन्मुख यथार्थवाद को सही ढंग से समझ सकते हैं। प्रेमचंद अपनी रचनाओं में स्पष्ट रूप से यह मानकर चलते दिखायी देते हैं कि "जो है" वही यथार्थ नहीं है, बल्कि "जो होना चाहिए" वह भी यथार्थ ही है, बशर्ते कि वह "हो सकता हो"। मसलन, पूँजीवाद ही यथार्थ नहीं है, उसे बदलकर बनायी जाने वाली बेहतर व्यवस्था भी यथार्थ है। लेकिन वह बेहतर व्यवस्था (आदर्श) अतीत के किसी रामराज्य की तरह असंभव न हो, बल्कि भविष्य के समाजवाद की तरह संभव हो।

इस बात को हिंदी कथाकार इसराइल ने यों कहा था कि "सिर्फ वही सच नहीं है, जो सामने है; बल्कि वह भी सच है, जो कहीं दूर अनागत की कोख में जन्म लेने के लिए कसमसा रहा है।"

अंततः प्रेमचंद के आदर्शवाद का संबंध उनकी कहानी-कला से भी है, जिसे आधुनिकतावादी नयेपन के मारे हुए हिंदी के आलोचक (चाहे प्रगतिशील हों या प्रतिक्रियावादी) कभी समझ ही नहीं पाये। ये लोग कहानी में प्लॉट और क्लाइमैक्स का होना पुरानेपन की निशानी समझते हैं और कथानक-रहित, बिना अंत वाली या खुले अंत वाली आधी-अधूरी कहानी को ही नयी कहानी मानते हैं। लेकिन प्रेमचंद ने अपने लेख 'मैं कहानी कैसे लिखता हूँ' में जोर देकर कहा है--"कोई घटना, महज सुंदर और चुस्त शब्दावली और शैली का चमत्कार दिखाकर ही कहानी नहीं बन जाती; मैं उसमें क्लाइमैक्स लाजिमी चीज समझता हूँ; और वह भी मनोवैज्ञानिक। यह भी जरूरी है कि कहानी इस क्रम से आगे चले कि क्लाइमैक्स निकटतम आता जाये।"

क्लाइमैक्स वाली कहानी प्लॉट के बिना नहीं लिखी जा सकती और कहानी में क्लाइमैक्स का होना लाजिमी इसलिए है कि कहानी लिखी जाने पर भी एक तरह से सुनायी जाने वाली चीज है, जिसका श्रोता कदम-कदम पर "फिर क्या हुआ?" की जिज्ञासा के साथ उसे सुनता है, लेकिन यह भी जानना चाहता है कि "अंततः क्या हुआ?"। उसकी यह जिज्ञासा कहानी के क्लाइमैक्स के साथ ही पूरी होती है। अतः क्लाइमैक्स वाली कहानी (अर्थात् प्लॉट वाली कहानी) ही मुकम्मल कहानी होती है। और दुनिया भर की तमाम अच्छी कहानियाँ, चाहे वे मौखिक रूप में सुनायी जायें या लिखित रूप में, कहानी के रूप में सुनायी जायें या उपन्यास के रूप में, काव्य के रूप में सुनायी जायें या महाकाव्य के रूप में, नाटक के रूप में सुनायी जायें या फिल्म के रूप में, मुकम्मल कहानियाँ ही होती हैं।

यथार्थवाद की गलत समझ के कारण कई लोग यथार्थ और कल्पना को परस्पर-विरोधी मानते हैं। उनके अनुसार यथार्थवादी कहानी में कल्पना का कोई काम नहीं। लेकिन कल्पना दो तरह की होती है। एक यथार्थ से बिलकुल कटी हुई कल्पना, जिसे कपोल कल्पना कहते हैं और दूसरी तर्कसंगत सर्जनात्मक कल्पना, जिसके बिना कथासाहित्य रचा ही नहीं जा सकता। मुकम्मल कहानी केवल यथार्थ के आधार पर नहीं लिखी जा सकती। उसे कल्पना के सहारे ही क्लाइमैक्स तक पहुँचाया जा सकता है। कहानीकार यह कल्पना "जो है" (यथार्थ) से आगे बढ़कर "जो होना चाहिए" (आदर्श) के आधार पर करता है। लेकिन यथार्थवादी लेखक कल्पना भी इस प्रकार करता है कि वह यथार्थ ही लगे और पाठक के मन पर वही प्रभाव डाले, जो कहानीकार डालना चाहता है। इसी कारण प्रेमचंद कहानी में क्लाइमैक्स का होना और क्लाइमैक्स का मनोवैज्ञानिक होना जरूरी मानते हैं।

ऐसी कहानी बिना सोचे-समझे, बिना किसी तैयारी के, नहीं लिखी जा सकती। इसलिए प्रेमचंद कहते हैं--"मैं जब तक कोई कहानी आदि से अंत तक जेहन में जमा न लूँ, लिखने नहीं बैठता।" आदि से अंत तक का अर्थ है पूरी कहानी। मुकम्मल कहानी। बिना अंत वाली या खुले अंत वाली आधी-अधूरी कहानी नहीं। इस बात को समझकर ही हम प्रेमचंद के आदर्शोन्मुख यथार्थवाद को तथा उनकी कहानी-कला को सही ढंग से समझते हुए उनसे कहानी लिखना सीख सकते हैं।

यह कहना भी जरूरी है कि महान लेखक कभी पुराने या अप्रासंगिक नहीं होते। प्रेमचंद का आदर्शोन्मुख यथार्थवाद आज के हमारे भूमंडलीय यथार्थवाद के समय में भी प्रासंगिक है और उनकी कहानी-कला तो कहानी के जन्म से आज तक चली आ रही वह कला है, जो कभी पुरानी नहीं पड़ी और न कभी पुरानी पड़ेगी।

समाज के कुशल चितेरे थे - प्रेमचन्द्र



जयचन्द प्रजापति 'कक्कू'

आजादी के पहले भारत की दशा दुर्दशा देखकर सबका कलेजा फट रहा था।दयनीय हालत हमारे देश के समाज की हो गई थी।पीड़ा दर्द से कराहता हमारा समाज दुर्दिन के दौर से गुजर रहा था।यह सब देख कर हमारा साहित्य भी कराह उठा।हिन्दी साहित्य की पीड़ा का जगना स्वाभाविक हो गया था।उसी दुर्दिन से हिन्दी साहित्य के महान कथाकार,उपन्यास सम्राट,कलम के सिपाही के नाम से प्रसिध्द मुँशी प्रेमचन्द्रजी का परिवार गुजर रहा था।देख समाज की हालात से मजबूर हो कर कलम उठ गया और मुंशी प्रेमचन्द्र एक से बढ़कर एक रचना देकर हिन्दी साहित्य का एक महान वृक्ष बन गये।सामाजिक गिरे हालात से गुजर रहे लोगों पर लेखनी चला कर समाज के स्वरूप व बिडम्बना को पूरे विश्व मंच पर रखा।गरीबी नजदीक से मुँशी जी ने देखा,झेला,अनुभव लिया और इस कटु अनुभव को अपनी लेखनी में उतारा।

31जुलाई सन1880 को बनारस शहर से करीब चार मील दूर लमही नामक एक छोटे से गाँव में मुंशी अजायबलाल के घर जन्म हुआ।मुंशी प्रेमचन्द्र का वास्तविक नाम धनपत राय था।मध्यमवर्गीय परिवार से ताल्लुक था।पिताजी डाकमुंशी के पद पर कार्यरत थे।इस प्रकार नौकरी पिताजी की होने के कारण शुरूआती समय में खाने पीने,पहनने ओढ़ने की तंगी नहीं थी लेकिन इतने उच्च स्तर के नहीं हो सके थे कि ठाठ बाट से रह सके।आर्थिक हालातों से जीवन भर जूझते रहने वाले मुँशी जी तंगी में ही 8 अक्टूबर सन 1936 को 56 वर्ष की अल्पआयु में जलोधर रोग से पीड़ित यह महान लेखक हम लोगों से जुदा हो गया।

पाँच छः साल के उम्र में शिक्षा के लिये लमही गाँव के करीब लालगंज नामक गाँव में एक मौलवी साहब के पास फारसी और उर्दू पढ़ने के लिये भेजा गया और उस पढ़ाई के दौरान पढ़ाई कम हुआ करता था लेकिन हुल्लडबाजी ज्यादा हुआ करता था।गाँव की जिन्दगी थी।गाँव की माटी से जुड़ा हृदय था,माँ व दादी के लाड़ प्यार में बचपन मजे से बीत रहा था लेकिन होनी कौन टाल सकता है।खुशी में पता नहीं कौन नजर लगी कि अचानक माँ की तबियत खराब हो गई और तबियत ऐसी

खराब हुई की बालक धनपतराय को इस भरे संसार में अकेला छोड़ दी।उस समय बालक धनपतराय की अवस्था साल की थी।माँ के जाने के बाद बालक धनपयराय के चेहरे पर वह हँसी, ठिठोली, बदमाशियाँ सब छिन गई। बिन माँ का जीवन दुर्दिन का जीवन हो जाता है।

माँ के जाने के बाद प्रेमचन्द्र के जीवन में जो माँ का प्यार, दुलार, स्नेह, संग साथ में खेलना था, सब उजड़ गया। माँ से जो प्यार मिला फिर वह प्यार दुबारा कभी नहीं मिला,थोड़ा बहुत प्यार बहन से मिला लेकिन शादी के पश्चात वह अपने ससुराल चली गई।उस प्यार से भी वंचित हो जाना पड़ा। अब समझिये पूरी दुनिया बालक के लिये सूनी हो गई। यह सूनापन इतनी गहरी थी कि उनका मासूम ह्रदय तड़प उठा और वही तड़प व पीड़ा अपने कहानियों व उपन्यासों में दुःखित व पीड़ित व्यक्तियों को पात्र बनाया और उनके जीवन में उठे संत्रास को उकेरा और कामयाबी मिली।ऐसे पात्रों को लिया जिनके बचपन में माँ चल बसी थी या जिनके माँ बाप बचपन में बिछड़ गये या ऐसे पात्रों को समाहित किया जिनका जीवन दरिद्रता से परिपूर्ण रहा,दीन हीन जीवन जी रहा होता। विधवा, मजदूरों, शोषितों, पीड़ितों, कल्पितों और अनाथों के जीवन को सजीव चित्रण कर कथा साहित्य को अमर कर दिया।

मातृत्व स्नेह से वंचित यह बालक कुछ इस तरह का रास्ता चुना कि आगे चल महान कथाकार,उपन्यास सम्राट तथा कलम के सिपाही के नाम से पूरे विश्व साहित्य के लिये आदरणीय बन गये।तमाम विभूतियों से अलंकृत यह महान रचना कार साधारण सा ही जिन्दगी जिया।दिखावे के चीज से सदैव दूर रहे।स्वाभिमानी थे।सादा जीवन में पूर्ण भरोसा था और इसी तरह जीवन को आत्मसात किया।साधारण से जीवन में एक महान व्यक्तित्व का निर्माण किया।

विवाह छोटी सी अवस्था में हो गया जब लगभग पन्द्रह-सोलह बरस के रहे थे।यह विवाह इनके लिये कष्टकारी रहा यानी दुर्भाग्य से भरा रहा लेकिन विवाह के साथ एक संयोग जुड़ा।बनारस के पास चुनार में एक स्कूल में मास्टरी मिल गई।सन 1899 से सन1821 तक मास्टरी किया।नौकरी करते हुये अपनी शिक्षा भी ली।इंटर और बीए तक पढ़ाई नौकरी के दरम्यान पूरी कर ली।इसी नौकरी के समय तबादलों का सामना करना पड़ा।इस नौकरी के सिलसिले में घाट घाट का पानी पीना पड़ा।इन्हीं तबादलों के साथ साथ नये लोगों से मिलने का अवसर मिला।सामाजिक ताने बाने को और करीब से जानने का मौका मिला।सामाजिक समस्याओं से रूबरू भी हुये।ये सारी चीजें एक साहित्यकार के लिये सोने में सुहागा सिध्द हुआ और इन्हीं सब चीजों को देखकर अपनी आत्मा तक साहित्य के

लिये समर्पित कर दिया।साहित्य में यह महान रचनाकार कूद पड़ा और जमकर साहित्य की रचना की।ऐसा लिखा की पूरे समाज की नब्ज को लिख दी।साहित्य को नई ऊँचाई दी।

साहित्य का महान पुरोधा प्रेमचन्द्र लगभग तीन सौ कहानिया और चौदह छोटे बड़े उपन्यास की रचना की।रचना इतनी सुंदर रही कि कोई अगर थोड़ा पढ़ना शुरू किया तो बिना पूरा पढ़े रहा नहीं।यही वजह रहा कि पाठकों की संख्या बहुत रही है।इसी प्रकार इस महान साहित्यकार की गिनती दुनिया के महान लेखकों में होती है।इनके साहित्य का अनुवाद लगभग सभी प्रमुख भाषाओं में किया जा चुका है।

कानपुर में भी मारवाड़ी स्कूल में काम किया लेकिन स्वाभिमानी स्वभाव के कारण मैनेजर से नहीं बनी और वहाँ से तत्काल इस्तीफा दे दिया और बनारस चले आये।बनारस में 'मर्यादा' पत्रिका का संपादन किया।कुछ समय तक काशी विद्यापीठ में शिक्षक रहे।लखनऊ से बुलावा आने पर 'माधुरी' के संपादन के लिये गये।लगभग छः सात वर्ष तक रहे फिर हंस के संपादन के लिये पुनः बनारस चले गये।हंस मुंशी जी की पत्रिका रही।आजकल हंस का प्रकाशन दिल्ली से होता है।यह एक प्रतिष्ठित साहित्यिक पत्रिका है।मुंशी जी कुछ समय बाद 'जागरण' निकाला।

प्रेमचन्द्रजी अपने सशक्त लेखनी के माध्यम से सामाजिक कुरीतियों,रूढ़िवादियों एवं शोषणकर्ताओं के खिलाफ जमकर लिखा।तमाम सामाजिक विद्रुपताओं पर कुठाराघात करके अपने पाठकों को स्वस्थ मनोरंजन परोसने में कामयाब रहे।सामाजिक दुष्परिणाम को उजागर कर उनको जड़ से मिटाने का संदेश पूरे समाज को दिया।अमर कथाकार ऐसे नक्षत्र हैं जिनकी रोशनी में साहित्यप्रेमियों को आम भारतीय जीवन का सच्चा दर्शन मिलता है।अपनी बेमिशाल लेखनी चलाकर गरीब,बेबस,दबे कुचले लोगों की आवाज को रखा।पाठकों के मन में बेबस लोगों को पढ़कर मन में टीस व भावुकता का भाव उमड़ने लगता है।कथानक के पात्र चलचित्र की तरह पाठकों का सजीव दर्शन कराती है।सच्चे भावों को रखा है।मानवीय संवेदनाओं को उकेरा है।नपे तुले शब्दों के प्रयोग से रचना अंदर तक बेधती है।इसी खासियत के चलते आम जन में लोकप्रिय रहे।आज भी उतने प्रासंगिक हैं जितने उस समय रहे।आज भी इनकी रचनायें चाव से पढ़ी जाती है।प्रेमचन्द्र समाज के कुशल चितेरे थे।

प्रेमचन्द्र जी को सामाजिक लेखक भी कह सकते हैं।19वीं सदी के अंतिम दशक

तथा 20वीं सदी के तीसरे दशक तक सामाजिक समस्याओं एव भारत की दुर्दशा पर अपनी सशक्त लेखनी चलाई।

देशभक्ति की भावना भी कूट कूट कर भरी थी।चौरी चौरा काण्ड से दुःखी होकर चौथे दिन सरकारी नौकरी से त्यागपत्र दे दिया।यह लेखक की देश के प्रति अगाध प्रेम दर्शाता है।अंग्रेजों द्वारा महान क्रांतिकारी खुदीरामबोस की फांसी से उनका मन बहुत आहत हुआ।कई दिन तक दुःखी रहे।बाजार से खुदीरामबोस की तस्वीर लाकर अपने घर में टांग दी।

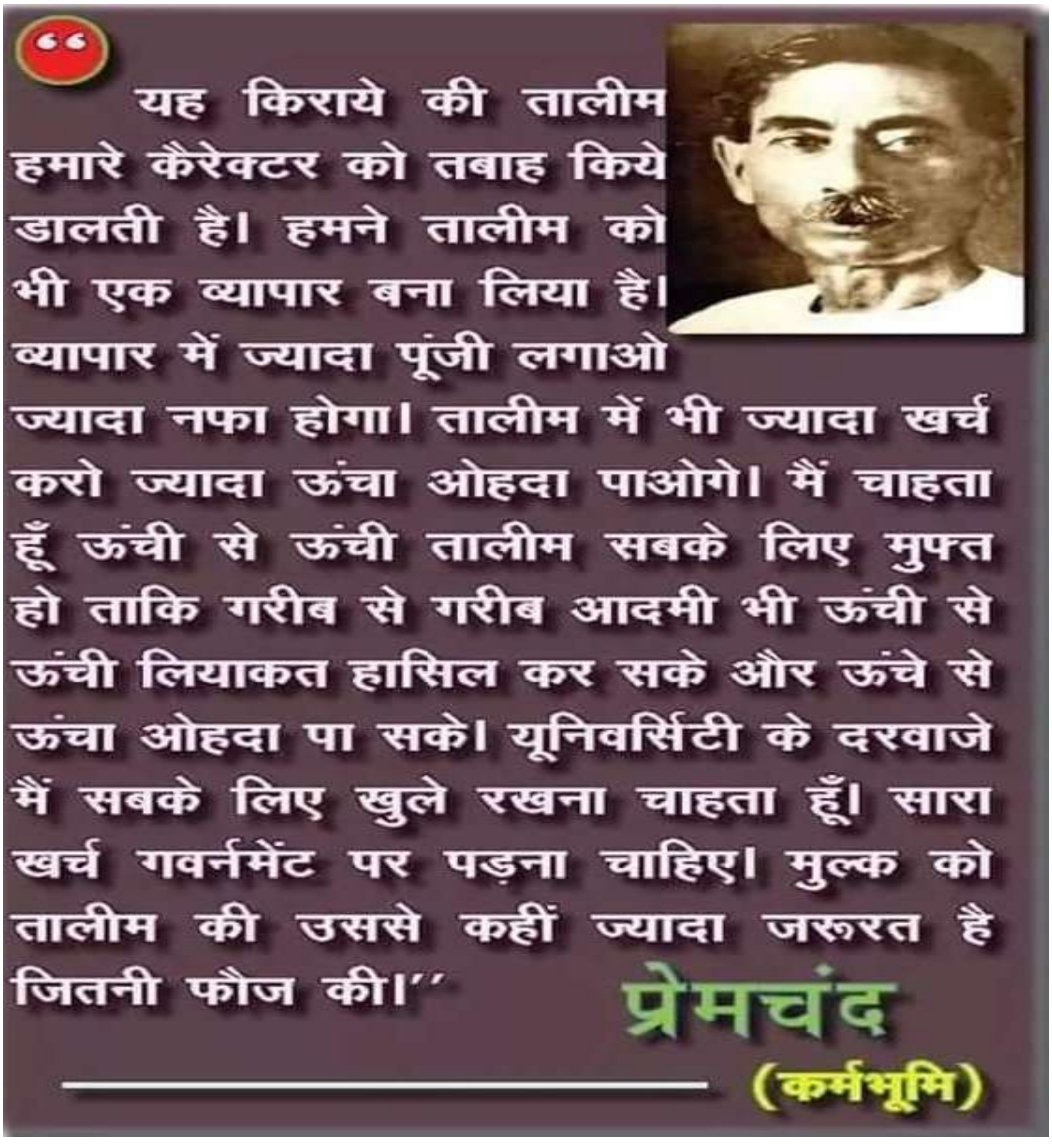
जिस समय प्रेमचन्द्र हिन्दी में उभर रहे थे।वह युग छायावाद का युग रहा लेकिन वे किसी वाद के चक्कर में नहीं पड़े ।अलग रह कर हिन्दी साहित्य को समृध्य किये।जिस रूप में समाज को देखा वैसा ही अपने लेखनी में चित्रण किया।समाज में हो रहे अत्याचारों को पात्र का माध्यम बनाकर कहानिया व उपन्यास लिखे।समाज के हर बुराई को लिखा।संवेदनाओं को दिखाया।लोगों को जागृति करने का भरसक प्रयत्न किया।सामाजिक ढोंग पर सीधे प्रहार किये।सामाजिक भेदभाव को करारा तमाचा जड़ा।हिन्दु व मुस्लिम के दिखावे पर करारा प्रहार किया।स्त्रियों की दुर्दशा पर उनका रूह कांप गया।कहानियों व उपन्यास में स्त्री को केन्द्र बिन्दु मान कर रचना की।समस्याओं पर बेबाक लिखने वाले मुंशी जी सामाजिक समस्याओं का समाधान भी खोजते हैं।कैसे समस्याओं से निदान हो सकता है ।इस पर भी प्रकाश डाला है।भारतीयों के ऊपर हो रहे अत्याचार से आहत मुंशीजी अंग्रेजों पर भी करारा प्रहार किये।हिम्मती थे जो इतने साहसी विषय पर लिखा।हार मानने वाले नहीं थे।

मुंशीजी दलितों के हालत पर समाज के उच्च वर्गों पर प्रहार करने से नहीं चूके।भेदभाव पर वे भरोसा नहीं करते थे।सामाजिक कलंक इसे मानते थे।दलित को भी समाज में हक है जीने का ।तमाम चीजें लेकर वे खुद मुद्दा बनाते और दलितों के हक के लिये लड़ाई लड़ी।सामाजिक भेदभाव को हटाने का प्रयत्न किये।हिन्दु व मुश्लिम के बीच जो असमानता का भेदभाव था।उस पर करारा प्रहार किया।अगर हम आपस में लड़ेगें तो फिर हमारा देश कैसे आजाद होगा।इस प्रकार कहा जा सकता है कि सामाजिक समरसता लाने में मुंशी जी का विशेष योगदान रहा है।

किसानों पर जमकर लिखा।किसानों की हालत दयनीय थी जो देश के लिये अन्न उपजा रहा है वही भूखा सोता है।वही नंगधडंग है।उसके बच्चे गरीबी में हैं।स्कूल नहीं जा पा रहें है।किसानों की दयनीय हालत पर लिखा और किसानों की समस्याओं को दिखाया और समाधान भी खोजा।गबन,गोदान,निर्मला प्रसिध्द

कृतियां रहीं हैं।नमक का दारोगा,पूस की रात,ईद,काकी इत्यादि कई रचनाये पढ़ने से मन हर्षित हो जाता है।सामाजिक भावों को दिखाती रचना अतीव सुंदर है।

वैसे मुंशी जी की रचनायें आज भी प्रासंगिक है।समाज में हो रहे अत्याचार,सामाजिक भेदभाव,स्त्रियों के उपर हो रहे दुराचार,अमानवीय भाव से इनकी रचनाओं की यहाँ जरूरत है।अगर सामाजिक समरसता नहीं बनी तो वह दिन दूर नहीं फिर जब वही पुराने दौर से गुजरना पड़े।चिन्तन बहुत जरूरी है।भेदभाव खत्म करना है।स्त्रियों का सम्मान करना है।किसानों के बारे में सोंचना है।गरीबों के बारे कुछ करना होगा ।बदलाव लाना ही पड़ेगा।तभी रामराज्य की कल्पना गांधी जी का साकार होगा।



एक घटना-लूशुन ,*जुलाई ,1920*



अनुवाद -डॉ० गंगा प्रसाद शर्मा 'गुणशेखर'

गाँव से राजधानी आए छह साल हो गए हैं। इस बीच राज्य के बारे मे बहुत सारी बातें सुनीं लेकिन इनका मुझ पर कोई खास असर नहीं हुआ। अगर उनके असर को बताने के लिए मुझसे कहा जाए तो यही कहूँगा कि इससे मेरे उग्र स्वभाव मे और इजाफा हुआ है जिससे साफ़गोई आई है और अधिक से अधिक नास्तिक भी हो गया हूँ।

एक घटना जो मेरे जीवन में बहुत महत्त्वपूर्ण रही है,उसे कभी नहीं भुला सकता । वह बहुत याद आ रही और उसी ने मुझे मेरे इस बुरे बर्ताव से उबारा है।

यह घटना सन् उन्नीस सौ सत्रह ई० के जाड़ों की है। खराब उत्तरी आंधी चल रही थी। लेकिन जीविका के लिए उसी में सवेरे-सवेरे बाहर निकलना पड़ा था।मुझे मुश्किल से कोई आदमी राह में मिला था,यहाँ तक कि दक्षिण द्वार के लिए मुझे एक रिक्शा खोजने में लोहे के चने चबाने पड़ रहे थे । कुछ समय के लिए आंधी थोड़ा थमी। इस समय तक आंधी सड़क का सारा धूल-धक्कड़ उड़ा ले गई थी। रिक्शे वाला जल्दी में था। इसलिए सड़क पार करती हुई एक महिला उसमें उलझ कर गिर पड़ी ।

सफ़ेद बालों वाली वह महिला फटे-पुराने गंदे कपड़ों में थी॰ उसने अचानक फुटपाथ छोड़कर मुख्य सड़क पार करना शुरू कर कर दिया था ।रिक्शे वाला एकाएक उस बुढ़िया को सामने पाकर अपना संतुलन खोते -खोते बचा था। लेकिन सँभलते-सँभलते भी उसका बिना बटन का जैकेट हवा में लहराने लगा था। बुढ़िया के सौभाग्य से किसी तरह जैकेट पर काबू पाते हुए रिक्शे वाले ने बड़ी फुर्ती से अपना रिक्शा मोड़ लिया था नहीं तो वह रिक्शे से टकराकर बुरी तरह उलटती और भयंकर चोटें खाए बिना नहीं बचती। वह सड़क पर ही पड़ी रही और रिक्शा चालक भी वहीं खड़ा रहा। मुझे नहीं लगा कि बुढ़िया को कोई चोट आई थी और उस घटना का कोई प्रत्यक्ष दर्शी गवाह भी वहाँ नहीं था। मैं इस बात से निश्चिंत हो चुका था कि रिक्शे वाले को कोई परेशानी हो सकती है। कानूनी मसले की नज़र में भी सब कुछ ठीक -ठाक ही था।

मैंने उसे आश्वस्त करते हुए कहा ,"चलो सब ठीक है।"

उसने मेरी बात पर कोई ध्यान ही नहीं दिया । मेरी अनसुनी करते हुए बुढ़िया को सहारा देकर बाँह से उठाते हुए उसने पूछा,"सब कुछ ठीक तो है?"
बुढ़िया ने कहा ,"मुझे चोट लगी है।"

मैंने साफ़ देखा था कि वह कितना आहिस्ता गिरी थी ,जिससे चोट लगने का कोई सवाल ही नहीं उठता था।मुझे पक्का लग रहा था कि बहाना बना रही थी जो बहुत ही निंदनीय था। लेकिन इसमें मैं क्या कर सकता था। उसने खुद ही बुढिया का हाल पूछकर अपने को परेशानी में डाल लिया था। अब इस परेशानी से उबरने का रास्ता भी उसे ही खोजना था।

वह ऐसे खड़ा था जैसे चोट लगने के बुढ़िया के कहे शब्दों पर उसे पूरा भरोसा हो। वह अब भी बुढ़िया का हाथ पकड़े-पकड़े उसे आगे बढ़ने में मदद कर रहा था।मैं रिक्शे पर ही बैठा था पर मेरी नज़रें उसके साथ कदम से कदम मिला कर चल रही थीं। तेज़ और धूलभरी आँधी के कारण रास्ता साफ़ -साफ नहीं दिख रहा था। आंधी के थमने और धूल -धक्कड़ हटने पर जब मुझे अचानक पुलिस स्टेशन का गेट दिखाई पड़ा तो मैं आश्चर्य चकित हुए बिना नहीं रह सका।गेट पर कोई नहीं था तो रिक्शे वाले ने ही उसे थाने तक पहुंचाने में भी मदद की।

अचानक मुझे एक विचित्र अनुभूति हुई। सिर उठाकर देखने पर वह रिक्शा वाला मुझे अत्यंत दयनीय और निरीह लगने लगा। उसी समय न जाने कैसे धीरे -धीरे मेरे ऊपर एक दबाव सा महसूस होने लगा, जिसने मेरे गाउन के भीतर छिपे अहं पर करारी चोट कर दी थी।

मैं स्तंभित होकर गुमसुम वहीं रिक्शे पर बैठा रहा ।जब तक कोई पुलिस वाला बाहर नहीं आया ,मेरा दिमाग सुन्न था।इसके बाद मैं रिक्शे से उतर पड़ा।
पुलिस वाले ने कहा ,"आप दूसरा रिक्शा कर लीजिए । अब यह आपको आगे नहीं ले जा सकता। "बिना कुछ सोचे-विचारे मैंने कोट की जेब से मुट्ठी भर पैसे निकाले और बिना गिने ही पुलिस वाले के हाथ पर धर दिए। 'कृपया ये पैसे उसे दे दीजिएगा ।'मैंने उस पुलिस वाले से कहा।

आँधी तब तक पूरी तरह थम चुकी थी। लेकिन सड़क पर अब भी नीरवता पसरी थी। मैं अकेले ही चल दिया । मुट्ठी भर पैसे देने का मेरा उपकार करने का गर्वोन्नत कर देने वाला भाव अब मुझे ही चिढ़ाने लगा था । पिछली घटना को दरकिनार करते हुए अब उन मुट्ठी भर ताँबे के सिक्कों के बारे में सोचने लगा था जिन्हें मैंने बड़े दया भाव के साथ उस रिक्शे वाले को देने केलिए पुलिस वाले के हाथ पर धरे थे। मेरे ही भीतर से ऐसे प्रश्न

उठने लगे थे जिनके जवाब मेरे पास न थे। क्या यह पुरस्कार था?मैं कौन होता हूँ उस रिक्शे वाले का मूल्यांकन करने वाला?मैंने बहुत खोजा पर इन सवालों का कोई जवाब कहीं से नहीं मिला ।

आज भी वह घटना मेरी स्मृति में ताज़ा है। वह प्रायः मुझे तनावग्रस्त कर देती है और अपने बारे में सोचने को विवश करती है । मैंने उस काल की सैनिक और राजनीतिक गतिविधियों को वैसे ही पूरी तरह भुला दिया है जैसे बचपन में पढे हुए शास्त्रीयता भरे साहित्य को।लेकिन यह घटना लाख चाहकर भी नहीं भुला पाता । यह घटना प्रायः अपनी वास्तविकता से कहीं अधिक विषद और व्यापक होकर लौट-लौट कर मेरे पास आती है। मुझे लज्जित करती है और रोक-रोक कर मुझे सुधरने को कहती है। लेकिन वह जब भी वह स्मृति में आती है,हर बार ताज़ा साहस और आशा से भी भर जाती है।

हिंदी साहित्य के तीन महान पुरयोध्दा
श्री हरिवंश राय बच्चन,श्री सुमित्रा नंदन पंत,श्री रामधारी सिहं दिनकर जी



मंटो व उसकी कहानियां - एक तटस्थ दृष्टि

डा॰ श्याम गुप्त

युवावस्था में कालेज के दिनों में हमने मंटो की प्रसिद्ध लघु कथाओं व कहानियों को पढ़ा है, मित्रों, सहपाठियों के साथ, एक आश्चर्यजनित युवा-उत्सुकता के अन्य कार्यकलापों की भांति | मंटो की पुस्तकें स्कूल-कालेजों के पुस्तकालय में नहीं रखी जाती थीं | उन्हें खुले आम न रख सकते थे न पढ़ी जाती थीं | सामान्य सामाजिक रूप में वे हेय दृष्टि से देखी जाती थीं| उन पर अश्लीलता जबरदस्त जामा चढ़ा हुआ था, वे उस ज़माने के पोर्न-साहित्य की भाँति थीं | उस पर बार-बार अश्लीलता संबंधी मुकदमे भी चले | यद्यपि अदालतों में कुछ सिद्ध नहीं हो पाया परन्तु क़ानून-कोर्ट की अपनी सीमाएं होती हैं | यह सामजिक विषय है, क़ानून का नहीं, न्यायाधीशों का अपना कुछ भी विचार होसकता है परन्तु जन सामान्य में वे कहानियां सदा अश्लील ही कही जायेंगीं| मुझे नहीं लगता की मंटो को काल के किसी भी खंड में अश्लीलता से छुटकारा मिल पायेगा| बाद में मैंने मंटो को अधिक विस्तार से, साहित्यिक विवेचनापूर्ण दृष्टि से पढ़ा| मंटो विश्व के उन साहित्यकारों में है जो केवल कहानियों के बल पर ही प्रसिद्ध हुआ, चेखब की भाँति | एक बेरिस्टर/जज का जहीन बेटा सआदत हसन मंटो में युवावस्था व कालेज के समय में ही क्रान्ति के बीज पनपते हैं और साम्यवादियों की सोहबत में साम्यवादी साहित्य व विचारधारा की चपेट में आजाता है जो उस कालखंड में भारतीय युवाओं को काफी प्रभावित कर रहा था | फ्रांसीसी क्रान्ति, रूसी क्रान्ति के परिप्रेक्ष्य में युवाओं को प्रत्येक तथ्य व वस्तुगतता को योरोपीय-पाश्चात्य दृष्टि, रूसी-फ्रांसीसी दृष्टि से देखने का आदी बना रहा था | अतः मंटो को भी भारत में विदेशी अंग्रेज़ी साम्राज्य के कारण, रूस के जार की क्रूरता, फ्रांसीसी क्रान्ति की कटुता भारत में भी दिखाई देने लगी | उसने साम्यवादी साहित्य का अनुवाद भी किया | उसे भारत, अमृतसर में भी मास्को दिखाई देने लगा, उस पर '***करेला और नीम चढ़ा***'.....कि भारत-पाकिस्तान बंटवारे की त्रासदी के दर्द का वह साक्षी बना | वह कम पढ़ा-लिखा था साहित्य से उसका कोई नाता नहीं था | अन्य नौजवानों यी भाँति क्रान्ति के जुलूस आदि में बढ़-चढ़ कर भाग लेना चाहता था परन्तु पिता की सख्ती के कारण वह न हो सका और उसका यह रुझान लिखा-पढी की ओर होगया|

रेडिओ में काम करते हुए उसने 'पहला अफ़साना 'तमाशा' लिखा, जो जलियाँवाले बाग के खूनी-हादसे से सम्बंधित था। यह उसने अपने नाम से न छपवाया अतः वह पुलिस की नज़र से बचा रहा| मंटो भारत-पाकिस्तान बंटवारे की त्रासदी के दर्द का साक्षी बना | जो उसके मन मस्तिष्क में रच बस गयीं | अतः मंटो की कहानियाँ इन्हीं त्रासदियों के इर्द-गिर्द घूमती हैं जिनकी विषयवस्तु व शिल्प निश्चय ही उन्हें विश्व की श्रेष्ठ कहानियों में सम्मिलित कर सकती हैं |

परन्तु साहित्य केवल शिल्प या स्पष्ट तथ्य बयानी नहीं है | दर्द या त्रासदी को ज्यों का त्यों प्रस्तुत करना नहीं है | यह तो रिपोर्टिंग, समाचार प्रस्तुति हुई | मंटो ने रिपोर्टर व रेडिओ उद्घोषक का कार्य भी किया था अतः उसकी कहानियों में वही कथ्य-भाव प्रस्तुत होते हैं | साहित्य के उच्चकोटि में स्थापित होने के लिए सत्यं के साथ शिवम् व सुन्दरम भी आवश्यक है | यही साहित्य का मूल सामाजिक हेतु है जो मंटो की कहानियों की अश्लीलता वर्णन व कथ्यों इंगितों में खोजाता है और उन्हें सामान्य कोटि की बना देता है| सामान्य रूप में मंटो की कहानियों को तीन वर्गों में बांटा जा सकता है...........

१. वे जो अश्लील वर्णन के पूर्ण हैं -जैसे.......बू, ठंडा-गोश्त, धुंआ, ऊपर नीचे दरमियान, सरकंडों के पीछे, काली शलवार आदि |

२. जिनमें स्पष्ट तौर पर अश्लील वर्णन नहीं है अपितु इंगित तथ्य की भाँति हैं, अतः उन्हें अश्लीलता का नाम दिया जा सकता है, और नहीं भी....यथा- खोल दो, घाटे का सौदा, शिकारी औरतें, रियायत, खुदा कसम आदि |

३. जो अश्लीलता रहित सामाजिक व सामयिक कथ्य पूर्ण हैं---यथा टोबा टेकसिंह, करामात, हैवानियत, सियाह हाशिये, कम्यूनिज्म आदि |

मेरे विचार से मंटो की कहानियों के सभी अंगों-उपांगो- विषयवस्तु, शिल्प, कथ्य आदि की दृष्टि से निश्चय ही विश्व की श्रेष्ठ कहानियों में सम्मिलित करने योग्य हैं | मंटो एक चिन्तक, विचारक, सामयिकता व समाज से प्रतिबद्ध व्यक्ति व कहानीकार प्रतीत होता है जिसमें चेतनता है, आक्रोश है, आग है | मंटो पर फ्रांसीसी प्रकृत यथार्थवादियों का प्रभाव है। मंटो की कहानियां मूलतः विभाजन की त्रासदी पर हैं |

उसकी प्रथम व द्वितीय वर्ग की प्रसिद्ध कहानियों में, जिनके कारण वह प्रसिद्ध हुआ, समाज का दर्पण तो है परन्तु साहित्य का मूल अंग शिवं व सुन्दरम नहीं है | समाज व साहित्य के लिए नंगा सच साहित्यिकता नहीं है | यह ठीक उसी प्रकार है जैसे काम-शास्त्र के रचयिता समाजशास्त्री तो हैं उन्हें सामान्य जन के लिए घर हर में प्रचलित नहीं किया जा सकता वह केवल विशिष्ट बंद क्षेत्र, समाज के एक कोने के लिए हैं | इसीलिये मंटो की कहानियां जन जन में, जन साहित्य में प्रचलित नहीं हुईं | चाहे समीक्षकगण व लेखक, साहित्यकार जो प्रायः साम्यवादी-पाश्चात्य दृष्टि वाले, प्रगतिवादी दृष्टिकोण युत हैं, कुछ भी कहें--- समय से आगे, प्रगतिशील, मानवतावादी आदि परन्तु वे कहानिया पोर्न कहानियों की श्रेणी में ही कही जायेंगीं | और इन्हीं की परछाइयों में उसकी अन्य कहानियों की आभा दृष्टिगत नहीं होती | समय से आगे का वह प्रगतिशील व्यक्ति अपनी मातृभूमि छोड़कर पाकिस्तान चला गया |

मंटो की ये कहानियां इसलिए प्रसिद्ध हुई कि वे भारतीय उपमहाद्वीप के समाज में वर्ज्य विषयों पर थीं | अश्लीलता पूर्ण वर्णन युत थीं | अश्लीलता, बुरी बातें व बुराई स्वयं में एक लालच है जो मानवीय कमजोरी को उद्घाटित करते है | विश्व भारतीय-उपमहाद्वीप की त्रासदी के विभिन्न पहलुओं को जानना चाहता था | भारतीय साहित्य व समाज के

दीर्घकालीन पुरा, प्राच्य व मध्यकालीन इतिहास में इस प्रकार की घटनाएँ व कथाएं कभी नहीं देखी-सुनी-पढ़ी गयीं | मंटो के कालखंड के अधिकाँश साहित्यकार, समाज व शिक्षाशास्त्री साम्यवादी व पाश्चात्य विचारधारा के लोग थे, योरोप की स्वच्छंदता से प्रभावित नव-शिक्षित लोग जिन्होंने भारतीय त्रासदियों को हवा देने का कार्य किया, जिनके लिए भारत का अर्थ एक पिछड़ा देश, पिछड़ी सभ्यता था | कुछ वे नव-प्रगतिशील हिन्दी लेखक-साहित्यकार भी थे जो अंग्रेज़ी एवं उर्दू साहित्य से प्रभावित होते जा रहे थे एवं हिन्दी में भी इस प्रकार के साहित्य का आवाहन करना चाहते थे, नवता व प्रगतिशीलता के नाम पर स्वयं तीव्र गति से आगे बढ़ने हेतु | अश्लीलता के बार बार मुकदमे चलना भी लोकप्रियता का कारण बनते रहे | बुराई सदा ही तेजी से फैलती है |

एक कुशल रिपोर्टर, कहानीकार, श्रेष्ठ कथाओं का शिल्पकार- सआदत हसन मंटो- एक श्रेष्ठ उत्तम कोटि का साहित्यकार, रचनाकार भी हो सकता था | वह इन्हीं संत्रास, आक्रोशयुत, सामाजिक कहानियों को अन्य प्रकार से सामान्य भाव में, सत्यम शिव सुन्दरम भाव में लिख सकता था | अपनी कुशलता, ज्ञान, अनुभव, आक्रोश को सामान्य सामाजिक भाव में प्रदर्शित कर सकता था | ऊंचा उठ सकता था | परन्तु प्रत्येक में वह गुण नहीं होता | कम शिक्षा व ज्ञान के कारण मंटो ने सस्ती व तेजी से सफलता हेतु चमत्कृत करने, चौंकाने वाली भाषा व कथ्य को अपनाया | मोपासां की तरह मंटो को भी इस बात में मज़ा आने लगा कि इंसान की वहशियाना भावनाएँ इस तरह नंगी की जाएँ कि पढ़ने वाला चौंक उठे। कथाओं में ‘चौंक’ का ‘छौंक’ लगाने के हिमायती आज भी अनगिनत हैं; लेकिन समकालीन कथा को स्तरीयता और प्रभावपूर्णता प्रदान करने वाले तत्वों में ‘चौंक’ का स्थान गौण ही है, प्रमुख नहीं। जैसा कि स्वयं मंटो कहता है -----‘***लोग कला को इतना ऊँचा रूतबा देते हैं कि इसके झंडे सातवें असमान से मिला देते हैं। मगर क्या यह हक़ीक़त नहीं कि हर श्रेष्ठ और महान चीज़ एक सूखी रोटी की मोहताज है ?’ ‘मैं लिखता हूँ इसलिए कि मुझे कुछ कहना होता है, मैं लिखता हूँ इसलिए कि मैं कुछ कमा सकूँ*** *‘वह लड़का मेरी तवज्जो को अपनी तरफ ज़रूर खींचेगा जो जाहिर करे कि उस पर सैकड़ो लड़कियाँ जान देती हैं लेकिन असल में वह मुहब्बत का इतना ही भूखा है कि जितना बंगाल का भूख से पीड़ित वाशिंदा।* ***इस बज़ाहिर कामयाब आशिक की रंगीन बातों में जो ट्रेजडी सिसकियाँ भरती होगी, उसको मैं अपने दिल के कानों से सुनूंगा और दूसरों को सुनाऊंगा।‘***

‘***चक्की पीसने वाली औरत जो दिन भर काम करती है और रात को इत्मिनान से सो जाती है, मेरे अफ़सानों की हीरोइन नहीं हो सकती। मेरी हीरोइन चकले की एक टखयाई रंडी हो सकती है। जो रात को जागती है और दिन को सोते में कभी-कभी यह डरावना ख्वाब देखकर उठ बैठती है कि बुढ़ापा उसके दरवाज़े पर दस्तक देने आ रहा है।‘***

‘पर ***मेरे लिए यह एक तल्ख़ हक़ीकत है कि अपने मुल्क में, जिसे पाकिस्तान कहते हैं, मैं अपना सही स्थान ढूंढ नहीं पाया हूँ। यही वजह है कि मेरी रूह बेचैन रहती है। मैं कभी पागलखाने में और कभी अस्पताल में रहता हूँ।‘***

वह कहता है: "हम मर्ज़ बताते हैं, लेकिन दवाखानों के मुहतमिम(प्रबंधक) नहीं हैं..." -----परन्तु सामाजिक सरोकार का अर्थ ही यह होता है की साहित्यकार उठाई हुई समस्या का एक समाधान भी प्रस्तुत करे यथा दुष्यंत कुमार का कहना है-

सिर्फ़ हंगामा खड़ा करना मेरा मक़सद नहीं,
मेरी कोशिश है कि ये सूरत बदलनी चाहिये |

'***सोसाइटी की चोली क्या उतारूँगा जो है ही नंगी। मैं उसे कपड़े पहनाने की कोशिश भी नहीं करता,***

इसलिए कि यह मेरा काम नहीं, दर्जियों का है। लोग मुझे सियाह-क़लम कहते हैं, लेकिन मैं तख्ता-ए-सियाह पर काली चाक से नहीं लिखता, सफेद चाक इस्तेमाल करता हूँ कि तख्ता-ए-सियाह की सियाही और-भी ज़्यादा नुमायाँ होजाए'-----------....परन्तु यदि सोसाइटी नंगी है तो आप भी तो उसमें भागीदार हैं, आपको सूरतोहाल बदलने का साहित्य रचना चाहिए, सौम्य व सक्षम तरीके से न कि और नंगा करके गन्दगी को समाज के हर कोने में फैलाना चाहिए | यदि आप दर्जी नहीं हैं तो आप चीरहरण या मुर्दे के चीर फाड़ करने वाले सियार-भेड़िये भी नहीं हैं| आप सियाही को समाज से कम करना चाहते हैं या सफ़ेद चाक से लिखकर और अधिक नुमांया |

'**मैं बहुत कम पढ़ा लिखा आदमी हूँ। यूँ तो मैने 20 से ऊपर किताबें लिखी हैं, लेकिन मुझे कभी कभी हैरत होती है कि यह कौन है जिसने इस कदर अच्छे अफ़साने लिखे हैं, जिन पर आए दिन मुकद्दमे चलते रहते हैं। जब कलम मेरे हाथ में न हो तो मैं सिर्फ़ सआदत हसन होता हूँ जिसे उर्दू आती है न फ़ारसी, न अंग्रेजी, न फ्रांसीसी------**अर्थात वे कहानियां नहीं है सिर्फ रिपोर्ताज हैं जिनमें मंटो माहिर था | अतः मंटो साहित्यकार के रूप में सामान्य ही है और मंटो की कुछ प्रसिद्ध हुई एसी कहानियों के कारण ही उस पर अश्लीलता का ठप्पा लगा जो उचित ही था परन्तु जिससे उसकी अन्य तमाम कहानियां सामान्य सामाजिक कथाएं होते हुए भी अधिक प्रचलित नहीं होपायीं | यह मंटो का व साहित्य का दुर्भाग्य है | साहित्यकार, समीक्षक चाहे कुछ भी कहते रहें, मंटो विश्व का महान कहानीकार तो हो सकता है परन्तु उत्तम कोटि का साहित्यकार नहीं |

मंटो....बदनाम लेखक......क्यों?



ज़ेबा रशीद

लाहौर की एक कब्र में युगांतरकारी कथाकार सआदत अली मंटो सो रहा है। बेखौफ़, बेफिकरा, एक बलगर लेखक यानी अश्लील लेखक का खिताब से अलंकृत। लेकिन मैं उसे ईमानदार सच्चा लेखक मानकर सलाम करती हूं।

उर्दू साहित्य में एक ऐसा लेखक का नाम जो सबसे अधिक बदनाम, सआदत अली मंटो का रहा। उसका जीवन भी उसकी कहानियों की तरह ही दिलचस्प है। उसका कहना था मेरी लेखन शैली में कोई बनावट नहीं।उसका बेबाक मिजाज बिना लिहाज, शर्म के सच्चाई के साथ काम करता। बेशक वह जानता था कि सत्य साक्षेप है।

उस जमाने में जिसने औरतों का पक्ष लिया। औरतें भी कैसी जो समाज द्वारा ठुकराई गई। हीन,पतित मानी जाने वाली। हां वेश्याओं को उसकी कलम समर्पित थी। उन्हीं औरतों की संवेदना,उदारता,त्याग,प्रेम,मन को समझ कर उसी विषय पर कहानिया लिखी मंटो ने।

इसी कारण साहित्य में एक लेखक को पुरस्कार, अवार्ड, रोयल्टी के रूप में गालियां मिली, सबसे अधिक मिली। अब वे कहानियां किसी पाठक को अश्लील लगने की संभावना नहीं नजर आती क्योंकि इसके लिए अब अखबार, पत्रिकाओं में छपती सैक्सी तस्वीरें और स्तम्भों का आभार मानना चाहिए।

उस जमाने में मंटो की कहानियां घर के कोने में बैठकर पढ़ी जाती थी और अब यह सब खुले आम देखी जाती है। कसूर उसका है वो लेखक समय से पहले पैदा हो गया। उस समय उसने जो लिखा, जो कुछ भी लिखा वो अगर आज लिखा होता तो लोगों के मुताबिक मंटो शारीरिक भूख,कामुकता,नग्नता और बीमार मानसिकता से ग्रस्त लेखक का तमगा उसे नहीं लगता।

उसकी कहानी में वह स्वयं ही पीड़ा का टुकड़ा बनकर गूंजता रहता था।उसकी कलम में खुलापन था।यह लिखूं या नहीं लिखना चाहिए यह कभी उसने सोचा ही नहीं।इसलिए हर कदम पर खतरे को झेला है।वह लोगों के विरूद्ध कुछ लिखता ,लोग उसके खिलाफ कुछ लिखते तो वह गौर करता था।बचपन में ही पिता नहीं रहे।मां सरदार बेगम और वह आधा पेट भर कर जीवीत रहते।

उसके हाथ में कलम न हो तब वह सिरफ सआदत हसन होता, उसके हाथ में कलम आते ही वह मंटो बन जाता। वह मूल रूप से सर्जक था। वह कहता कहानी मेरे दिमाग में नहीं रहती। कहानी लिखने के लिए मुझे बहुत मेहनत करनी पड़ती है एक के

बाद एक सिगरेट फूंकता हूं। थक कर सो जाता हूं। उठकर दिमाग पर जोर डालता हूं। कई उपाय करता हूं लेकिन कहानी है कि मेरे दिमाग से टपकती ही नहीं।

कहानी लिखने को आती है तो अपने आप ही लिखने बैठ जाता हूं और कहानी टपकने लगती। हालांकि मंटो का कोई साहित्यिक बैक ग्रांउड नहीं था। परिवार के सदस्यों को पता चला लड़का कहानियां लिखने लगा है...जैसे कोई असामाजिक प्रवृति के चंगुल में फंसता जा रहा है तो उससे नाराज होगए। बाहर के लोग सलाह देते उसे कोई छोटा मोटी नौकरी में लगा दिया जाय। यूं बेकार कहानियां नहीं लिखने दिया जाय। उन दिनों लेखन बेकारों का काम था। उसने किसी की नहीं सुनी।

जलियावाला बाग में किसी वृक्ष के नीचे बैठकर क्रांतिकारी हो कर, **ब्रिटिश** सरकार को उखाड़ फेंकने के सपने देखता। स्वपन से बाहर आता तो कब्रों के बीच घूमता। स्कूल जाती लड़कियों को देखता,किसी सुन्दर बाला को इत्र लगे रंगीन कागज पर प्रेम पत्र लिखता।फिर उसे बकवास कह कर फाड फेंकता। मित्र भी ऐसे जिनके साथ बैठ कर चरस भरी सिगरेट फूंकता,दारू पीता,लेकिन उसकी बेचैनी कम नहीं होती।

गुंडा,लफंगे, खूनी व्याभिचारी,दलाल,गरीब,अयास किसी पात्र की उसके पास कमी नहीं थी। ऐसे इंसानों के ह्रदय में किसी के कोने में मानवता का एक अ**श** भी देखता तो वह तुरंत कलम चला लेता।यही थी उसकी कलम की ईमानदारी। उसके पात्र उसके जैसे ही कठोर,गंवार होते लेकिन बनावटी नहीं।

साधारण कहानी या पात्रों में उसे रूचि नहीं थी। पडोस की स्त्री अपने पति से जूते खाती है फिर आंसूं पौंछ कर उसकी चाकरी में लग जाती है उसके लिए उसके दिल में अनुकंपा नहीं होती । दिनभर मेहनत करके रात को आराम करनेवाली औरत उसके दिल को नहीं झंघेरती लेकिन कोठे पर बैठनेवाली वैष्या उसके दिल में हिरोइन बन जाती जो रात भर जागकर पुरुषों की ज्यादती सहती है और दिन में सोने जाए ,जहां बुढापा दरवाजा खटखटाता नजर आता है ,डरावने सपने देखकर जाग जाती है और वर्षो से उसकी आंखों से नींद दूर चली गई हो ,उसकी गाली ,चिड़चिड़ापन, उसकी बीमारी ,ऐसी स्त्री उसकी 'विषयवस्तु' बन सकती थी। उसके लिए घरेलू स्त्रियां हिरोइन नहीं जमती।

मंटो ने उर्दू साहित्य को बहुत दिया लेकिन खुद ने क्या पाया ? साहित्य ने उसे भूख दी। लोगों ने उसका षोषण किया। उसकी लाचारी ,भोलेपन की कमाई लोग खाते रहे।

प्रथम मुलाकात में ही मंटो ने अपने भावी ससुर को अपनी आर्थिक बेहाली की बेलेंस **श**ीट प्रस्तुत कर दी थी और बिना पूछे ही यह भी स्पष्ट कर दिया कि ऐसी नाजुक स्थिति में भी हर रोज एक बीयर की बोतल चढ़ाना भूलता नहीं है। आप अपनी लाड़ली को दरिया में फेंकने के इरादे से ही मेरे साथ ब्याह सकते है। कोई भी समझदार पिता अपनी लाडली को ऐसे आदमी को सोंपते हुए सात बार सोचता लेकिन उस पिता को इस युवा की साफगोई पसन्द आई और **श**ादी होगई। उनकी पत्नी का नाम सफिया था। फिल्मों के लिए कई कहानियां लिखी। पहले हिन्दूस्तान का बडा लेखक था। फिर पाकिस्तान का

मशहूर लेखक,उस पर अश्लीलता के केस चले। अंग्रेजी सरकार ने उसे अश्लील लेखक माना। हमारी सरकार ने उसे कैद की सजा से अलंकृत किया।

'ठंडा गोस्त' कहानी के लिए कोर्ट में दिए अपने निवेदन में उसमें कहानी के चरित्र कथावस्तु तथा कथा की तटस्थ विवेचना की थी। जज के लिए उसे सजा देने के लिए वह मसाला काफी रहा। उसे तीन मास की सजा और 300 रुपये जुर्माना देना पडा। 'ठंड़ा गोस्त ' कहानी का इतना बड़ा पुरस्कार मिला।

मंटो तब कलम उठाता है जब उसके दिल को आघात पहुंचता है। 'धुंआ' लिखने से पहले कोई दृष्य ,कोई घटना जरूर देखी होगी उस घटना से लेखक ने कलम उठाली। उसकी कहानियां बीमार मन पर ही गंदा असर डालती है जिन लोगों का मन तन्दरूस्त है उनके लिए कहानीकार ने तो एक कहानी लिखी है बस।

मंटो ने लिखा कि ''मेरी कलम कभी–कभी लक्ष्मण रेखा पार कर जाती है । मैं अष्लील लेखक नहीं कहानी लेखक हूं। मेरी कहानियां अश्लील बताकर न्यायमूर्ति ने जुर्माना लगा दिया।

मंटो जो लिखता उसके अनुसार अच्छी या बुरी ,ष्लील और अष्लील है,ऐसा कभी नहीं सोचते। उसकी कहानी 'ठंडा गोस्त' ''खोल दो' ....मंटो की कहानियों पर प्रतिबंध तक लगा।

एक संपादक ने कहा'' आपकी कहानियों को मैं समाज एवं साहित्य के योग्य नहीं समझता। आपकी कहानियों में दर्षाई गई नग्नता मैं सहन नहीं कर सकता। प्रेम चंद, कृष्ण चंदर,सुदर्षन और अश्क की कहानियों में समाज का दर्द अभिव्यक्त होता है आपकी कहानियों में नहीं।आपकी कहानियों में जो जुनून है उसको अर्थपूर्ण बनाये तो आप उच्चकोटि के कहानीकार कहलायेगे। ''

मंटो नाराज नहीं हुए बदले में कहा आपने मुझे अच्छी सलाह दी मै आभारी हूं। पर आप जो कह रहे हैं वह मेरे लिए तभी संभव हो सकता है जब में समाज में हजारों बदियों को देखने के बजाय खूबियों को देखूं। आप संपादक साहित्यकार है चिकित्सक है इसलिए समाज और देष की नाडी देखते हो। एक मार्ग दर्षक की तरह दवा करते हो ,पर मैं मार्ग दर्शक नहीं एक लेखक हूं। एक चितेरे की हैसियत से देष और समाज की तस्वीर अपनी नजर से बनाता हूं। जो दिखता है वही दृश्य बनाना चित्रकार का काम होता है। मेरी बनाई तस्वीर बनावटी नहीं होती है। मैं सिर्फ कल्पना नहीं करता,समाज में बनती–बिगड़ती घटनाओं की तसवीर कागज पर उतारता हूं जिससे आप बचना चाहते है। '

'' हां मैं छुपाकर रखने वाले सेक्स पर मुक्त चर्चा करता हूं ,पर खुद को उसमें डुबोता नहीं। समाज में चारों ओर हवस के पुजारी दिखते हैं , प्रेम के नाम पर वासना ही देखने को मिले तो फिर मैं उसे क्यों छुपाऊं? मेरी कहानियों में नग्नता दिखती है वहां मुझे मानवता दम तोड़ती नजर आती है। जहां दम तोड़ती नजर आयेगी वहीं मेरी कलम पूर्ण षक्ति से चलेगी।''

वह बोलने में जितना बेबाक थे,उतना ही लिखने में भी। अत्यंत संवेदनषील थे। एक गरीब लेखक थे। वह कोई नेता, समाज सुधारक नहीं। वह एक तांगेवालों,वेष्याओं का

लेखक थे।मंटो बहुत गरीब थे गरीबों के लेखक।मानसिक सच्चाईयां बयान करना ही उन्हें बदनाम लेखक की उपाधि से नवाजा गया।

सआदत हसन मंटों के जीवन की महत्वपूर्ण घटनाऐं——

जन्म :—11 मई 1912 जन्म स्थल :—— समराला लुधियाना पंजाब

पिता :—गुलाम हसन मंटो माताः— सरदार बेगम पत्नी :— सफिया

संतान :— तीन पुत्रियां —निकहत ,नजहत ,नुसरत

शिक्षा :— अमृतसर और अलीगढ़ में

प्रथम कहानी :—'तमाशा' अमृतसर के 'खल्क' में छपी....जलियावाला बाग के आतंक से प्रेरित होकर लिखी गई अन्तिम कहानी :— कबूतर और कबूतरी

मंटों की कहानियों पर अश्लीलता के केस लगाए गए :——

चर्चित कहानियां :नंगी आवाजें, टोबा टेकसिंह, धुआ, ठंड़ा गोस्त, काली षलवार,दरमियान और ऊपर—नीचे देहान्त — 18 जनवरी 1955

आज खतरनाक बीमारी कैंसर है,वैसी ही उस जमाने में टी.बी. खतरनाक मानी जाती थी। मंटो ने अपने शरीर में टी.बी. को आश्रय दे रखा था। हालांकि कभी कोई अच्छी आदत को कभी महत्व नहीं दिया, स्वास्थ्य के किसी नियम की परवाह नहीं की थी।

वह पाकिस्तान चले गए। वहां उनकी हालत और दयनीय हो गई। उनका ख्याल था वहां उनका सिक्का जम जायेगा। कुछ समय बाद ही उनकी समझ में आ गया कि वो अपनी प्यारी दुनिया छोड़कर गलत जगह पर आ गया हैं।

मित्रों को लिखा भी '' वापस बुला लो 'पर उस का मिजाज बर्दास्त करने की किसी में ताकत नहीं थी।

''अब बहूत देर हो चुकी मुझे हास्पिटल मत ले जाना । यहीं शांति से पड़ा रहने दो'' मेरे कोट की जेब में साढ़े तीन रुपये है...'' लीवर का दर्द बढ़ने लगा खून की उल्टियां बंद नहीं हुई। घर में स्त्रियों के लिए यह दृष्य कंपानेवाला था। उन्होंने रोना शुरू किया ।

''खबरदार कोई रोया तो।'' मंटो रजाई में मुंह डाल कर सो गए। मंटो का यह असली मिजाज था।

परिचय : श्रीमती ज़ेबा रशीद (ज़ैबुन्निसॉ)-जन्म 7.1.1943 जोधपुर में, गृहणी शिक्षा होमियोपेथी चिकित्सा 1968 से रचनाऐं प्रकाषित हो रही है।हिन्दी एवं राजस्थानी भाषा में 19 पुस्तकें प्रकाशित देश—विदेश की 45 प्रतिष्ठित पत्र—पत्रिकाओं में रचनाओं का निरंतर प्रकाशन हो रहा है। आकाशवाणी से 1996 से कहानियों का प्रसारण हो रहा है।जयपुर दूरदर्शन से कविता पाठ चर्चा प्रसारित। कहानियों का उर्दू, कन्नड, अंग्रेजी भाषा में अनुवाद किया गया। विदेशों में कहानियों का सतत् प्रकाषन हो रहा है। पुरस्कार एवं सम्मान 35हिन्दी पुस्तकों का राजस्थानी व अंग्रेजी से हिन्दी में अनुवाद किया।कैलिफोर्निया, यू के.की स्टोरी मिरर द्वारा कहानी संग्रह 'कंटीली राहें '' प्रकाशित ,कनाडा में उपन्यास क्योंकि औरत ने प्यार किया...पूनः प्रकाशन किया गया, चीन ,टोकियो पाकिस्तान की पत्रिकाओं में हिंदी कहानियों का प्रकाशन हो रहा है ।
केन्द्रिय साहित्य अकादमी द्धारा हिन्दी पुरस्कृत उपन्यास मिल जुल मन लेखिका मृदुला गर्ग का उपन्यास राजस्थानी भाषा में अनुवाद कराया गया।

हिंदी का वसंत मास



डॉ० गंगा प्रसाद शर्मा 'गुणशेखर'

मुझसे जब कोई पूछता है कि वसंत पंचमी कब है,तो मैं कहता हूँ 14 सितंबर को। लोग हँस देते हैं। उन्हें हँसी आती है पर मुझे नहीं.उलटे गुस्सा आता है। मेरी गंभीर बात को वे हँसी में उड़ाना चाहते हैं। प्रायः मेरे दर्द की अनदेखी कर अब तो लोग मजे लेने के लिए भी मुझसे 'वसंत पंचमी ' की जानकारी चाहने लगे हैं। उन्हें नहीं पता कि हिंदी वालों का वसंत मास सितंबर ही है। इसी मास में हिंदी की कोयलें कूकती हैं। कहीं पढ़ा था कि नर कोकिल का कंठ अधिक सुरीला होता है। मोरनी को सुंदर पंखों वाली मानने का भ्रम भी उन्हीं दिनों टूटा था कि यह भी नर ही होता है । इसके बाद नर की मधुरिमा उस समय और अधिक प्रामाणिक हो गई जब अनेक कोकिल कंठी कवयित्रियों को छोड़कर एक नर कोकिल को कूजने और पूजने के लिए पाँच-पाँच लाख मिलने लगे।वह अपनी चार लाइनों को चौवन बार दुहाराता है। मटकता है। झूमता है। कुछ द्विअर्थी संवाद बोलता है,फिर गाने लग जाता है। यानी श्रोताओं को वहीं गीत याद करा देता है।पूरा फ़िल्मी गीत का मज़ा देता है। कुछ जानकार बताते हैं कि,"आप 'विश्वास' करो चाहे न करो पर वह नर कोकिल अकेले इसी मास में आधा करोड़ कमा लेता है। "वही नर क्यों इस महीने हर नर कोकिल कुछ ज़्यादा ही कूकते हैं। ज़गह-ज़गह हिंदी के नर-बैनर ही तो छाए-बिछाए दिखते हैं। कहीं भी देखो ज़मीन पर खड़े,पड़े या गड़े दोनों कोछों में ईंट बांधे हवा में इतराते, इठलाते और लहराते हुए मिल जाते हैं। जहाँ न चाहो वहाँ भी ये दिख जाते हैं। हर गली के मोड़ पर । सब्जी लेने जाओ वहाँ भी। पैसे लेने जाओ वहाँ भी। विश्वविद्यालय में हिंदी विभाग के दरवाजे के बाहर तो होते ही होते हैं । भरपेट अनाज पाए किसान की तरह ये राष्ट्रीयकृत बैंकों के मुख्य द्वार पर भी ज़्यादा खुशी न सँभाल पाने के कारण आत्महत्या की मुद्रा में लटके हुए देखे जा सकते हैं।

हिन्दी का वसंत आते ही कवयित्रियों की मुख मंजरी पर फूल-से धरे अधराधार रक्ताभ हो उठते हैं। कवि -भ्रमर उन फूलों के पराग की गंध पा उन्मत्त हो जाते हैं। मुहल्ले छाप से लेकर राष्ट्रीय स्तर तक के कवि सम्मेलनों की झड़ी लग जाती है। इन दिनों कुछ चालाक किस्म के बंदों को छोड़कर जिन्हें अपने अंडे औरों से सेवाने की आदत है, बाकी में से अमूमन हर कवि - लेखक के खुद के घर भी 'गोष्ठी-घर' में तब्दील हो जाते हैं।कितना सही है या गलत पर कहा जाता है कि प्राचीन काल में गायों के बांधने के स्थल को गोष्ठी कहा जाता था। पक्का है उनके भोजनार्थ वहाँ चारा भी रखा जाता होगा। आधुनिक काल में कोई गोपालक ही उनका वह सारा चारा खा गया । जब गायों ने यह सुना तो तो वे शर्म के मारे गावों के किनारे के तालाबों पर डूबने गईं तो उनमें चुल्लू भर भी पानी न मिला वह भी चारा खाने के बाद वही

महाशय पी गए । बहुत दूर वाले बड़के तालाब पर गईं तो वहाँ परधान की मछलियाँ कुलेलें कर रही थीं। परधान के कारिंदों ने तो उसमें झाँकने तक नहीं दिया। लाठियों से मार-मार के खूनाखच्चर ऊपर से कर दी। इससे वे और भी शर्मिंदा हो गईं और खुद ही कसाइयों के घर चली गईं ।कुछ असफल मसखरे कवियों और लेखकों की किंवदंती है कि उन्हीं गायों की कमी पूरी करने के लिए कुछ गऊ छाप कवयित्रियाँ खुद आकर गोष्ठी के संयोजक मकान मालिक के खूँटे और कभी-कभी मालकिन के खूँट से भी बँध जाती हैं।

इन दिनों हिन्दी- विभागाध्यक्ष के कक्ष में तो कविता कहानी का अकच्छ वैसे ही मचा रहता है जैसे सावन के महीने में शिवालयों में । वहाँ पाँवों के नीचेऔर अगल-बगल से प्रसाद में लिपटा चीटियों का झुंड चिपक के चिकोटी काटता है और यहाँ चरण चुंबन की जल्दबाजी में ऊपर से रीडरों और प्रोफेसरों का। खास तौर पर इस मास में सभी विभागाध्यक्ष की विचारधारा के समर्पित अनुयायी लगने लगते हैं। सबमें उनकी जाति और कुल गोत्र का पता लगाकर उस जाति-प्रजाति को भारतीय इतिहास का गौरव बताने की होड़ लग जाती है। ऐसा लगता है कि सिंधु सभ्यता सभ्यता से लेकर भारतीय इतिहास ,सभ्यता और संस्कृति तक के अध्ययन के लिए एक ही केंद्र रह गया है,वह है उनका विभाग,जिसके केंद्र में हैं विभागाध्यक्ष। सभी विभागाध्यक्ष को यह दिखाना चाहते हैं कि अबकी के पाठ्यक्रम में उनसे अधिक प्रासंगिक कविता और कहानी किसी की न रहेगी। विभागाध्यक्ष सभी को इतनी गंभीरता से सुनते हैं कि सबको उम्मीद-सी बँध जाती है। अपने पाठकोंसे क्या छिपाऊं इस वसंत मास में मैं भी अपने विभागाध्यक्ष का लँगोट नियमित छांटता हूँ तो कुछ आशा -सी मुझे भी दिखने लगी है। सुना है वे अबकी संस्थान की पुरस्कार समिति में लिए गए हैं।उनके कहने से पिछले सितंबर में बाईस कार्यक्रम मिले थे।वह भी सबके सब डिग्री कॉलेजों के । मैं तो हिन्दी का सुख अब समझा हूँ तो चाहता हूँ कि बारहों महीने सितंबर ही सितंबर आए। कोई दूसरा महीना हो ही न।

१४ सितंबर तो इस वसंत मास का पीक डे होता है.सब अखबारों में हिंदी की चर्चा। टीवी चैनलों पर हिंदी की चर्चा । विद्यालय-विद्यालय और महाविद्यालय से लेकर विश्वविद्यालय के आँगन तक हिंदी का वसंत छा जाता है। चारों ओर हिंदी का खुशनुमा वातावरण सृजित हो जाता है। दिग्दिगंत हिंदी की सुरभि से सुवासित हो उठता है। जो कभी कहीं नहीं पूछे जाते हैं उन्हें भी कोई-न- कोई विभाग न्योत ही लेता है। वे भी टाई और कोट पैंट में भाषण देते हुए फोटो खिंचवा के किसी साप्ताहिक या पाक्षिक के तीसरे-चौथे पन्ने की अंतरी-कोलिया में ज़गह पा ही लेते हैं।

हिंदी के दो संप्रदाय हैं। एक अज्ञेय की तरह धनाड्य है,जो विद्युत के दूधिया प्रकाश से जग को जगर-मगर करता है तो दूसरा कबीर की तरह अपनी ही बडेर पर लुकाठा रखकर या फिर प्रेमचंद की तरह जीवन का तेल जलाकर साहित्य की ज्योति जलाकर समाज को रास्ता

दिखाता है। एक की महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों में प्राण प्रतिष्ठा की गई है । दूसरा संप्रदाय अनबिकी प्रतिमाओं की तरह या तो फुटपाथ पर पड़े-पड़े धूल फाँकता है या फिर हर अनबिके माल की तरह कलाकार के साथ वापस हो जाता है। यह सत्य प्रतिमाएँ भी जानती हैं कि वे चाहे जितनी सुंदर क्यों न हों पर प्राण प्रतिष्ठा के बिना किसी भी मूर्ति की कोई कद्र नहीं।

उच्च कक्षाओं में हिंदी वे पढ़ते-पढ़ाते हैं जो प्रायः गाँव के होते हैं। किसी गरीब घर से आते हैं या जिनके माँ-बाप पढे-लिखे नहीं होते हैं। प्राय:लड़कियाँ इसका अपवाद होती हैं। इसके अपवाद यदा-कदा वे लड़के भी हो सकते हैं जो अमीर घरों के तो हैं पर निठल्ले हैं और माँ-बाप की नज़र में कुछ भी कर पाने लायक नहीं रह गए हैं या फिर जिनकी संगत खराब हो गई है । जिनका अन्य विषयों में एकाध अंक से प्रवीणता सूची में नाम छपने से छूट जाता है,इक्का-दुक्का समय की कद्र करने वाले विद्यार्थी भी साल बर्बाद न हो यह सोच कर हिंदी में नाम लिखा लेते हैं।ये लगभग प्रतिभाशाली ही होते हैं।लेकिन किसी परीक्षक का शिकार होकर अपने भाग्य पर रो रहे होते हैं। लेकिन आगे चलकर इनमें प्रोफेसर बनने अगर इससे चूक गए तो कवि/कवयित्री या लेखक/लेखिका बनने की पूरी संभावना रहती है।

हिंदी पढ़ने वालों को क्या मिलता है ?इसके उत्तर में जितना कुछ कहा जाए कम ही है। कुछ को अध्यापकी तो कुछ को रीडरी,प्रोफेसरी मिल जाती है। अगर अंग्रेज़ी भी आती है तो इनमें से कुछ केंद्रीय संस्थानों में अनुवादक/हिंदी अधिकारी /सहायक निदेशक बनकर देवनागरी की सेवा में लग जाते हैं। विज्ञान का हर विद्यार्थी वैज्ञानिक ,गणित का गणितज्ञ,शिक्षा शास्त्र का शिक्षा शास्त्री और दर्शन का दार्शनिक नहीं होता पर हिंदी का हर वह विद्यार्थी जो परास्नातक कर लेता है, कवि/कवयित्री या लेखक/लेखिका ज़रूर बन जाता है। कार्यालयों में कागज़ -कलम क्या अब तो कंप्यूटर भी मुफ्त मिल जाता है तो ऐसे पार्ट टाइम कवि/लेखक कविता-कहानी लिखते -पढ़ते रहते हैं। जो नहीं लिखते-पढ़ते वे अखबारों की समस्या पूर्ति करते रहते हैं। ऑफिस में में जहाँ दूसरे लोग तास खेलते हैं,ये समस्या पूर्ति करते हुए शब्दों से खेलते हैं। हिन्दी पढ़े- लिखे लोगों में कुछ पाठक हो जाते हैं। वे रसपूर्वक कविता -कहानी की बात करते हैं। दक्षिण या वामपंथी होकर अपने विचारधारा वाले साहित्यकारों की रचनाएँ पढ़-पढ़ा कर लहालोट होते रहते हैं।गाल बजाते हैं. सभाओं और सम्मेलनों में माइक टेस्ट करने के बहाने तरह-तरह के गीत/कवित्त/श्लील-अश्लील चुट्कुले/चौबल्ले सुनाते हैं. मंच से भगाए जाने पर पंडाल में चौकडी भरते रहते हैं. बड़े-बड़े आयोजनों को मुफ़्त सुनने जाते हैं। साहित्यकारों के साथ फोटो खींचते हैं। सेल्फ़ी लेते हैं और घर या ओफिस पहुंचते ही फेसबुक पर जम जाते हैं और अपनी या जिसकी भी खुली पा जाएं उसकी टाइम लाइन पर अपलोड भी कर देते हैं।लोगों से कह-कहके लाइक करवाते हैं।

कुछ हिंदी पढने -लिखने वाले लोग तो अपने को साहित्यकार की श्रेणी में विद्यार्थी जीवन से ही रख लेते हैं.बहुतों को सुनकर और उस सब सुने हुए को मिलाकर कुछ न कुछ लिख भी मारते हैं। इसी आदत के चलते ये कभी-कभार कहीं छप-छपा जाते हैं । पहेली आदि पर इन्हें कभी -कभी पुरस्कार भी मिल जाता है। इस सदकर्म पर जब-तब अखबार या पत्रिका वाले सौ-डेढ़ सौ रुपए की किताबें पुरस्कार के रूप में भी भेज देते हैं तो वे उन्हें अपने कार्यालय के पते पर ही मंगाते हैं और अपने बॉस समेत सभी साथियों को दिखाकर वाहवाही लूटते हैं। फोटो खिंचाते हैं और ड्राइंग रूम में बाबू जी या अम्मा की माला चढ़ी फोटो की बगल में लटका देते हैं।

हिंदी में एक नया संप्रदाय उभरा है । वह है पी.एच.डी संप्रदाय। इसे कर लेने के बाद हर कोई आलोचक हो जाता है।आगे डॉक्टर लगा होने से इसकी पहचान आसान हो जाती है । इसी का लाभ उठाकर इन दिनों होम्योपैथी के कुछ चिकित्सक हिंदी आलोचना के क्षेत्र में खूब चमक रहे हैं। वे प्रायः खाली रहते हैं। इससे उन्हें क्लीनिक में भी आलोचना लिखने का समय मिल जाता है। कंपाउंडर परची भी काटता है और साथ-साथ आलोचनाएँ भी टाइप करता रहता है। इन्हीं सबकी कृपा से इन दिनों हिंदी का आलोचना क्षेत्र काफ़ी समृद्ध हुआ है। हिंदी में इतने आलोचकअवतरित हो चुके हैं जितने अङ्ग्रेज़ी के दुनिया भर में भी नहीं हैं। इन आलोचकों को देखकर मैं प्रायः आश्वस्त हो जाता हूँ कि हिंदी विश्व भाषा बन चुकी है। हिंदी का एक सर्वहारा वर्ग है जो किसी संप्रदाय में नहीं आता। उसे धर्म निरपेक्ष कह सकते हैं। गलियों-गलियों ट्यूशन पढ़ाता कविता कहानी लिखता-छपाता फिरता है।

इस वर्ग के लोग रोज़गार पाए हुए दिखते तो हैं पर असल में पाए हुए होते नहीं हैं। खाली होने पर भी लाज बचाने के लिए ये व्यस्त दिखने में ज़्यादा विश्वास रखते हैं। ये संतोषी प्रवृत्ति के होते हैं। ज़्यादा से ज़्यादा ये अंशकालिक रोज़गार प्राप्त कहे जा सकते हैं। इनमें से कुछ अख़बारों में अवैतनिक संवाददाता हो जाते हैं। कुछ हाकर का काम कर लेते हैं। कुछ पुस्तक विक्रेताओं के यहाँ पुस्तकें उठाते- धरते हैं। कुछ बजाज के यहाँ थान उलटते-पलटते हैं। जिन्हें शहर या कस्बे में कुछ नहीं मिलता वे गाँव लौटकर खेती और मजूरी-धतूरी करने लग जाते हैं।

सितंबर महीना केवल इसी वर्ग के लिए दुख लेकर आता है। ऊपर के सभी वर्ग इन्हीं से आशाएँ लगाए बैठे रहते हैं कि ये हिंदी के लिए कुछ करेंगे।इसके लिए इन्हें बरगलाते हैं। कहते हैं कि फलाँ हिंदी का उत्थान नहीं होने दे रहे हैं,ढिकाँ नहीं होने दे रहे हैं। यह कहकर इन्हें भावुक बनाकर इनके हाथों में कुछ बैनर -पोस्टर थमा देते हैं। किसी विभाग में खुद मुख्य अतिथि ,विशिष्ट और सम्मानित अतिथि बन कर मंचासीन हो जाते हैं।उधर वे खा-पीकर लच्छेदार भाषण देते रहते हैं और इधर ये भूखे-प्यासे बैनर थामे खड़े रहते है। ये भी उनको खुश करने के लिए हिंदी के साथ हो रहे अन्याय को लेकर अपने बदन पर छप्पन छुरी

चला-चला के पेट से लेकर पीठ तक लहूलुहान कर लेते हैं । हाय-हसन की तर्ज़ पर हिंदी के ताज़िए निकालते हैं । केवल इसलिए कि अगले दिन मुख्य अतिथि के साथ अखबार में इन सबकी भी रंगीन फोटो छप जाती है।इससे जो बच जाते हैं वे हैं कैमरा वाले ,चाय-पानी कराने वाले और पंडाल में अपने उधम से मुर्दनी न छाने देने वाले बच्चे. ब्लैक ऐंड व्हाइट ख़बर में ये सब भी एक पंक्ति में आदि-आदि में स्थान पा जाते हैं। इस तरह वक्ता ब्रेकिंग न्यूज़ के नायक बन जाते हैं फिर साल भर हिंदी की रोटी तोड़ते हैं । इस सत्य से अवगत होने पर बैनर -पोस्टर वाले सर्वहारा यानि उनके धारक और उद्धारक भी वहीं बैनर-पोस्टर पटक के अपने-अपने काम पर चले जाते हैं।

मैं किस श्रेणी में आता हूँ? यह मैं अपने मुँह से नहीं कहना चाहता। बस ,हिंदी के लिए कुछ करना चाहता हूँ। इसीलिए मैं देश-देश मारा-मारा घूम रहा हूँ। केवल ढाई लाख महीने की पगार लेकर हिंदी के लिए घर-परिवार त्यागे चीन में पड़ा हूँ। यह त्याग कोई नहीं देख रहा है। मैं ही नहीं और भी सैकड़ों लोग मेरी ही तरह देश-देश मारे-मारे फिर रहे हैं। हिंदी साहित्य के इतिहास की तरह जब कभी हिंदी सेवियों का इतिहास लिखा जाएगा उसमें हम शहीदों का नाम होगा । उसे पढ़ने के बाद लोग जान पाएंगे कि विदेश में हिंदी पढ़ाना कोई आसान काम नहीं है। युद्ध की तरह जोखिमों से भरा है। मैं सालों से यहाँ पड़ा हूँ । किसी ने कोई हाल नहीं पूछा । जब सितंबर आने को हुआ तो कुछ कद्र हुई। कुछ लोगों ने आदेश दिया कि पता लगाओ और बताओ कि चीन में कितने लोग हिंदी जानते हैं या जानना चाहते हैं? वे हिंदी में प्रबोध,प्राज्ञ या प्रवीण में से किस स्तर की योग्यता रखते हैं? उनका हिंदी प्रेम कहीं नकली तो नहीं है। मैं यही सब पता लगाने को एक से पूछ ही रहा था कि अंदर कर दिया गया । तीन महीने बाद जमानत पर छूटा हूँ। यह त्याग कोई कम है। मुझे चाहिए था कि पहले काम सौंपने वाले सज्जन से पूछता कि भारत में हिंदी की स्थिति का पता लगाओ । चीन में हिंदी भाषियों की जन गणना से क्या लाभ है? पर पूछ नहीं पाया। तीन महीने बाद उसी बेकूफी का खामियाज़ा भुगत के लौटा हूँ।

सितंबर महीने में ही लोग जान पाते हैं कि हिंदी कहाँ-कहाँ पढ़ाई जाती है। यह भी जान पाते हैं कि कितने लोग विदेशों में हैं, जो हिंदी पढ़-पढ़ा रहे हैं। बहुत से प्रोफेसर और रीडर हिंदी पढ़ाने के लिए विदेश जाने की तैयारी में लग जाते हैं।नए सूट सिलाए जाते हैं तो दर्जियों को काम मिल जाता है और मक्खी मार रहे बजाजों की भी विक्री बढ़ जाती है। नए सूट केस खरीदे जाते हैं। पता लगाया जाता है कि किस देश में कौन हिंदी पढ़ा रहा है। उसका फोन नंबर लिया जाता है। जो अपने रिशतेदारों से स्वदेश में भी एक मिनट से ज़्यादा बात नहीं करता ,आई एस डी पर दस-दस मिनट बात करता है। कभी-कभी तो यह अपनापन उमड़ता हुआ चोंगे से या फिर मोबाइल हुआ तो स्क्रीन से भी बाहर आता हुआ दिख जाता है। उन्हें अपने-अपने विभागों में आमंत्रित करने की होड़ लग जाती है। विदेश में रहने वालों को भी

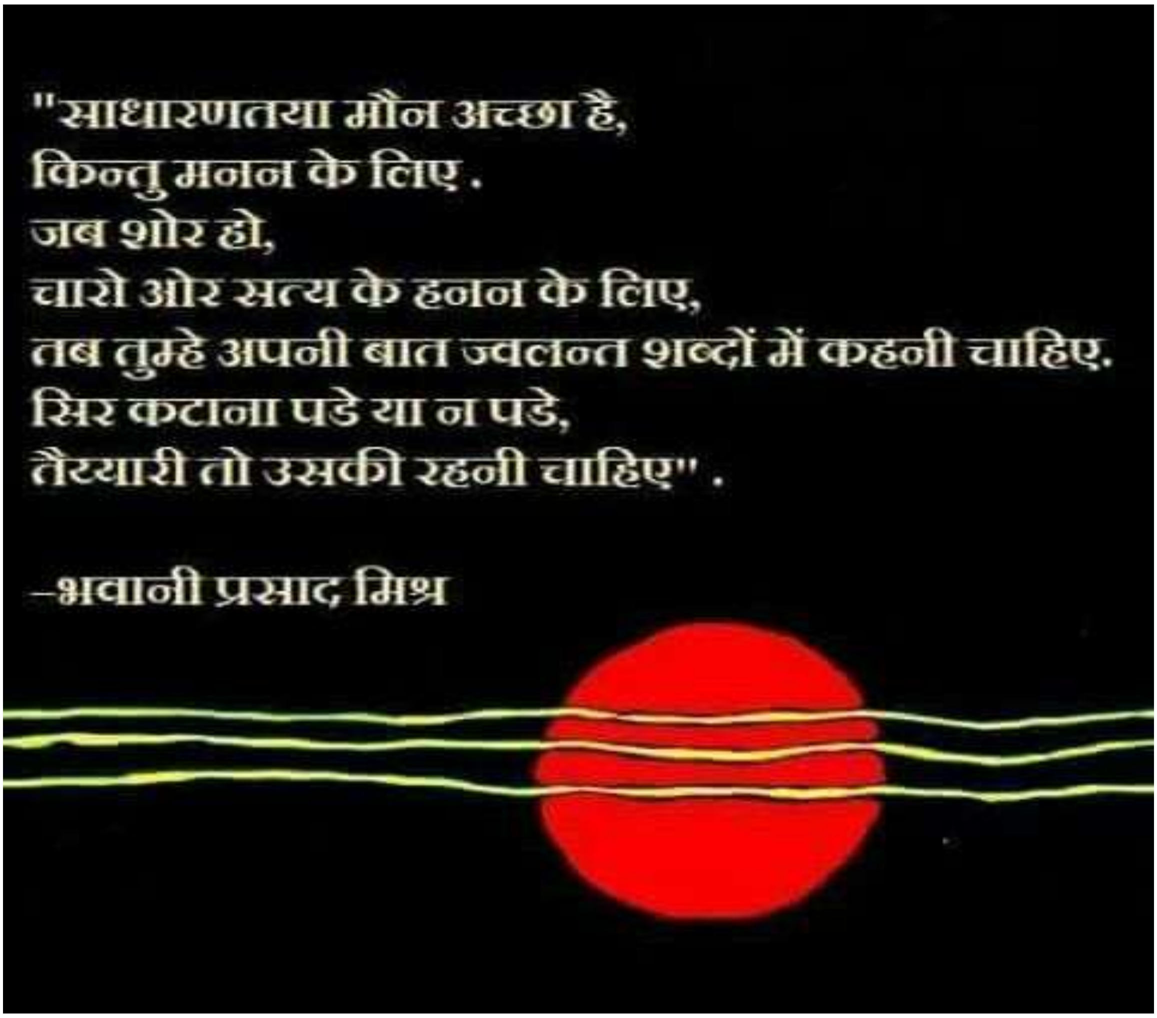
लगता है कि उनकी पूछ हो रही है । इन दिनों उन्हें पक्का भरोसा हो जाता है कि अपने वतन से प्यारा वतन कोई दूसरा नहीं,जहाँ अपनों की अब भी कद्र होती है। वह आने से पहले झूम के गाता है -"सारे जहाँ से अच्छा हिंदोस्ताँ हमारा...."इस तरह यह मास अपने से बिछुड़े हुओं को वतन बुलाने का मास है।अपनों के दिन बहुरने का मास है। हिरनियों और विरहिनियों के लिए तो यह अपनी शीतल-शीतल फुहारों से मन की प्यास बुझाने वाला सावन मास ही है।

सितंबर महीना शब्दकोशों के दिन बहुरने का मास भी है। इस महीने लोग हिंदी का शब्दकोश भी देखते हैं।हिंदी भाषा का उत्सव मास भी यही है। जबसे केंद्र सरकार के कार्यालयों और पुस्तकालयों में पचास फीसदी रकम हिंदी की किताबों पर खर्चना ज़रूरी हो गया है,बाज़ार में हार्ड बाउंड किताबें ही छप रही हैं। इनके दाम इतने ज़्यादा होते हैं कि विद्यार्थी और गरीब पाठक इन्हें बस देख सकता है। हिंदी की पुस्तकों की खरीद की दृष्टि से प्रकाशकों का भी उत्सव मास है यही सितंबर ।इस सूचना से लेखक खुश न हों क्योंकि पुस्तकों की बिक्री का विवरण जिस बही में होता है,वह सितंबर की बाढ़ में बह या अक्तूबर के सूखे में सूख जाती है। यह अफवाह पहले से है कि कवि लोगअपनी पुस्तकें नामी प्रकाशक को मुंहमांगी रकम देकर छपाते हैं। इसलिए उनके लिए जैसे सूखे सावन वैसे भरे भादों। यह हिंदी का वित्तीय मास भी कहा जा सकता है और आँकड़ा मास भी । इसी महीने अपने देश को छोडकर दुनिया भर के आँकड़े बाहर आते हैं।तरह -तरह के आंकड़े निकलते हैं कि किस देश के किस विश्वविद्यालय में हिंदी की पढ़ाई होती है। कनाडा, रूस या जापान के किस विद्वान ने हिंदी के लिए कितना काम किया है और जर्मनी के किस विद्वान ने कितना । मारीशस, सूरी नाम और त्रिनिडाड आदि के अवधी- भोजपुरी गाने वालों का आँकड़ा निकालने वाले अपने बारे में नहीं बताते कि उन्होंने किस-किस फ़ोरेन लैंगवेज़ इंस्टीट्यूट में स्पोकेन इंगलिश सीखी है। इसके बावजूद उनके दिए आँकड़ों में इतना दम होता है कि पढ़ते ही या तो खुशी नहीं तो गम से आँखें छलछ्ला आएँ। कभी-कभी तो ये आंकड़े बहुत ही आशाजनक होते हैं और लगता है कि इन आँकड़ों को देखकर यू एन ओ लजा जाएगा और सभी भाषाओं को हटाकर इकलौती हिंदी को कामकाज की भाषा बना लेगा। हम भी आंकड़े देख-सुनकर खुश हो जाते हैं। इसी महीने आप एक अठन्नी में चार चवन्नी भुनाने वाले अपने विभाग -प्रमुख से हिंदी के नाम पर भी चवन्नी-अठन्नी निकलवा सकते हैं। अपने-अपने विभागों में हिंदी बोल और बुलवा सकते हैं। यह हिंदी का मेला मास भी है और मैला मास भी।हिंदी का श्राद्ध मास भी यही है । जो अपने पूर्वजों की तरह हिन्दी को बहुत मानते हैं वे पंद्रह दिन का श्राद्ध पक्ष रख लेते हैं और जो कम मानते हैं वे दिवस मनाकर चुप्पी साध लेते हैं और फिर साल भर के लिए हाइवरनेशन में चले जाते हैं।

सुभद्रा कुमारी चौहान आज जीवित होतीं तो सितंबर के इन उत्सवों को देखकर उन्हें भी कुछ न कुछ लिखना ही पड़ता।वे पक्का एक कविता और लिखतीं,जिसका शीर्षक होता-

'हिंदी का कब होता वसंत?'

जिस मास में कूकें संत असंत
स्वर छाएँ जिनके दिग्दिगंत
हो जाता हिंदी मय अग-जग
यह सब माहों में मानी महंत
बाकी सब हैं घोंघा बसंत.
बस यही सितंबर है वसंत।



||*आजादी तो मिल गई है पर हमें पता नहीं कि उसका करना क्या है?*||

अभिनेता बलराज साहनी का 1972में दिया गया कालजयी भाषण

साभार तहलका हिंदी से



प्रस्तुति : अंजू शर्मा

अभिनेता बलराज साहनी ने ये कालजयी भाषण 1972 में जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय (जेएनयू) के दीक्षांत समारोह में दिया था।अपने प्रबुद्ध विचारों के कारण यह भाषण वर्षों तक चर्चित रहा।जेएनयू स्टूडेंड यूनियन इसके पर्चे प्रकाशित कर बांटती रही।इस भाषण में बड़ी साफगोई से उन्होंने हिन्दी-उर्दू की समस्या और शक्तिशाली होती अंग्रेजी पर भरपूर रोशनी डाली है।साहनी इसे औसत भारतीय व्यक्ति की दिमागी गुलामी के सबूत के रूप में देखते हैं।यह भाषण आज भी उतना ही प्रासंगिक और सामयिक है, जितना कि उस दौर में था....

लगभग बीस साल पहले की बात है।कलकत्ता के 'फिल्म जर्नलिस्ट एसोसिएशन' की ओर से 'दो बीघा जमीन' फिल्म के निर्देशक बिमल रॉय और हमें यानी उनके साथियों को सम्मान दिया जा रहा था।ये एक साधारण पर रुचिकर समारोह था।बहुत अच्छे भाषण हुए, पर श्रोता बड़ी उत्सुकता के साथ बिमल रॉय को सुनने की प्रतीक्षा कर रहे थे।हम सब वहां फर्श पर बैठे थे, मैं बिमल दा के पास ही बैठा था और देख रहा था कि जैसे-जैसे उनके बोलने का समय आ रहा था कि उनकी बेचैनी बढ़ती जा रही थी। फिर जब उनकी बारी आई, वे उठे और हाथ जोड़कर सिर्फ इतना कहा, 'जो कुछ कहना होता है मैं अपनी फिल्मों के माध्यम से कह देता हूं, मेरे पास कहने के लिए और कुछ नहीं है। '

इस समय मैं भी सिर्फ इतना ही कहना चाहता हूं।अगर मैं इससे ज्यादा कहने का साहस कर पा रहा हूं, तो सिर्फ इसलिए कि जिस व्यक्ति के नाम पर आपकी यूनिवर्सिटी बनी है, उसके व्यक्तित्व से मुझे प्यार है।उतना ही प्यार और आदर, बल्कि उससे भी ज्यादा, आपकी यूनिवर्सिटी से जुड़े मेरे मन में पीसी जोशी के लिए है।मेरे जीवन के कुछ बेहद कीमती पल इनकी ही बदौलत हैं, कुछ ऐसे कर्ज भी हैं जिन्हें मैं कभी चुका नहीं सकता।इसलिए आपकी संस्था की ओर से मिले किसी भी निमंत्रण को अस्वीकार नहीं कर सकता।अगर आप मुझे फर्श साफ करने के लिए भी बुलाते तब भी मैं उतना ही खुश और सम्मानित महसूस करता,

जितना इस समय यहां खड़े होकर आपको संबोधित करने में महसूस कर रहा हूं।पर उस सेवा के लिए मैं शायद अधिक योग्य साबित होता ।

कृपया मुझे गलत न समझें। मैं शिष्टता का दिखावा नहीं कर रहा हूं। जो बात मैंने कही है, वह दिल से कही है और अब आगे भी जो कहूंगा, दिल से ही कहूंगा, फिर चाहे वह आपको अच्छा लगे या न लगे, वह ऐसे मौकों के अनुकूल हो चाहे प्रतिकूल।शायद आप सब जानते होंगे कि शैक्षणिक वातावरण से मेरा संबंध लगभग 25 बरसों से टूटा हुआ है। मैंने कभी किसी विश्वविद्यालय के दीक्षांत समारोह को भी संबोधित नहीं किया है।

वैसे यहां मैं ये भी जोड़ना चाहूंगा कि आपकी दुनिया से मेरा नाता टूटना ऐच्छिक नहीं था।इस दूरी के लिए कहीं न कहीं हमारे देश की फिल्म बनाने की दशा जिम्मेदार है।हमारी फिल्मी दुनिया में या तो अभिनेता को इतना कम काम मिलता है कि वह भूखों मरता है या फिर चाहे धन-दौलत की भूख हो या न हो, उसे इतना ज्यादा काम करना पड़ता है कि वह हर तरफ से कट जाता है। उसे न अपने पारिवारिक जीवन की सुध-बुध रहती है, न ही अपनी मानसिक और आत्मिक आवश्यकताओं की।पिछले 25 वर्षों में मैंने लगभग सवा-सौ फिल्मों में काम किया है।इतने समय में अमेरिका या यूरोप में एक अभिनेता 30-35 फिल्मों में काम करता है। इससे आप खुद अंदाजा लगा सकते हैं मेरी जिंदगी का कितना बड़ा हिस्सा सेल्यूलॉयड की रीलों में दफन हुआ पड़ा है।इस अरसे में कितनी किताबें थीं, जो मैं नहीं पढ़ सका, कितने आयोजन थे जहां मैं जाना चाहता था पर जा नहीं सका।कभी-कभी मैं खुद को बहुत पिछड़ा हुआ महसूस करता हूं और मेरी कुंठा तब और बढ़ जाती है जब मैं सोचता हूं कि इन सवा सौ फिल्मों में कितनी फिल्में महत्वपूर्ण होंगी? कितनी ऐसी फिल्में होंगी, जिन्हें याद रखा जाएगा? शायद बहुत कम, मुश्किल से एक ही हाथ की उंगलियों पर गिनने लायक। और उन्हें भी लोग या तो भूल गए हैं या जल्दी ही भूल जाएंगे ।

इसिलिए मैंने कहा था कि मैं शिष्टता नहीं दिखा रहा हूं।मैं आपको सचेत करना चाहता हूं कि अगर मेरा भाषण खास विद्वता का सबूत न दे, तो आपको निराश न होकर मुझे माफ कर देना चाहिए।बिमल दा बिलकुल सही थे।एक कलाकार का क्षेत्र उसका काम ही होता है। इसीलिए मैं यहां जो कुछ कह रहा हूं, अपने जीवन के अपने अनुभव से ही कह रहा हूं, जो मैंने देखा-परखा-महसूस किया। उससे बाहर की बात करना बेवकूफी होगी, किसी दिखावे सरीखा होगा।

इस समय मुझे अपने विद्यार्थी जीवन की एक घटना याद आ रही है, जिसे मैं कभी भुला नहीं सका, जिसने मेरे मन पर बहुत गहरा असर डाला।मैं अपने परिवार के साथ गर्मियों की छुट्टियां मनाने रावलपिंडी से कश्मीर जा रहा था।पिछली रात भारी बारिश होने के कारण से रास्ते में पहाड़ का एक हिस्सा टूटकर गिर गया था जिसके कारण सड़क बंद हो गई थी।दोनों तरफ मोटरों की लंबी कतारें लग गईं। न खाने-पीने का इंतजाम था, न सोने का।पीडब्ल्यूडी के

कर्मचारी सड़क की मरम्मत करने में जी-तोड़ मेहनत कर रहे थे।फिर भी ड्राइवर और यात्री हर समय उनके पीछे पड़े रहते, उन्हें सुस्त और निकम्मा कह-कहकर कोसते रहते।इसमें काफी समय लगा।यहां तक कि आसपास के गांवों के लोग शहर के तौर-तरीकों वाले यात्रियों से उकता गए थे ।

आखिरकर एक दिन रास्ता खुलने का ऐलान हुआ और ड्राइवरों को हरी झंडी दिखा दी गई। पर तब एक अजीब-सी बात हुई। कोई भी ड्राइवर पहले अपनी गाड़ी बढ़ाने को तैयार ही नहीं था।न इस तरफ से और न ही उस तरफ से। सभी खड़े एक-दूसरे का मुंह देख रहे थे।इसमें शक नहीं कि रास्ता कच्चा था और खतरनाक भी। एक तरफ पहाड़ था और दूसरी तरफ खाई व हिलोरे मारता झेलम दरिया। आधा घंटा बीत गया। कोई टस से मस न हुआ। ये वही लोग थे जो कल तक पीडब्ल्यूडी के कर्मचारियों को आलस और अकर्मण्यता के लिए कोस रहे थे। इतने में पीछे से एक छोटी-सी हल्के रंग की स्पोर्ट्स कार आती दिखाई दी। एक अंग्रेज उसे चला रहा था। इतने सारे वाहनों और भीड़ को देखकर वह हैरान हुआ। मैं कोट-पतलून पहने जरा बन-ठनकर खड़ा था। उसने मुझसे पूछा, 'क्या हुआ है?' मैंने उसे सारी बात बताई, तो वह जोर से हंसा और उसी क्षण हार्न बजाता हुआ, बिना किसी डर के, कार चलाते हुए आगे बढ़ गया ।

उसके बाद तो नजारा और भी देखने लायक था।कहां तो कोई माई का लाल गाड़ी स्टार्ट करने के लिए तैयार नहीं था, और अब वे हार्न पर हार्न बजाते हुए एक साथ वह हिस्सा पार करने लगे। इतनी भगदड़ मची कि रास्ता फिर काफी देर के लिए बंद हो गया। तब मैंने अपनी आंखों से प्रत्यक्ष देखा कि एक आजाद देश में पले-बढ़े आदमी और एक गुलाम देश में पले-बढ़े आदमी में क्या फर्क होता है।

आजाद आदमी के अंदर कुछ सोचने, फैसला करने और अपने फैसले पर अमल करने की दिलेरी होती है। गुलाम आदमी यह दिलेरी खो चुका होता है।वह हमेशा दूसरे के विचारों को अपनाता है, घिसे-पिटे रास्तों पर चलता है। इस सबक को मैंने अपनी जिंदगी का हिस्सा बना लिया था।अपने जीवन में जब भी मैं कोई कठिन निर्णय ले पाया, मैं बहुत खुश हुआ। मैं खुद को आजाद महसूस करता, मुझे जीवन सार्थक लगा और मैं जीवन का लुत्फ शायद इसीलिए उठा पाया क्योंकि मैंने समझा की जीवन का कुछ अर्थ है ।

पर फिर भी साफ-साफ कहूं तो ऐसे मौके बहुत कम आए।किसी कठिन निर्णय के समय मैं हिम्मत खो देता था और दूसरे लोगों के आसरे रहता।मैंने सुरक्षित रास्ता चुना। मैंने वही फैसले लिए जो मेरा परिवार मुझसे चाहता था, जो वो बुर्जुआ वर्ग चाहता था, जिससे मैं आता हूं। मेरे ऊपर मूल्यों का एक बोझ-सा डाल दिया गया था। मैं सोचता कुछ और था और कुछ और ही करता था। इस कारण मुझे बाद में काफी बुरा भी लगता। मेरे कुछ निर्णयों से मुझे

कभी खुशी नहीं मिली। जब कभी भी मैं हिम्मत हार जाता, मेरी जिंदगी मुझे एक निरर्थक बोझ लगने लगती ।

मैंने अपने सामने एक अंग्रेज का उदाहरण रखा है। कोई ये सोच सकता है कि किसी हद तक यह भी मेरे हीनभाव का सबूत है। मैं सरदार भगत सिंह का उदाहरण दे सकता था, जो उसी जमाने में ही फांसी चढ़े थे। मैं महात्मा गांधी का उदाहरण दे सकता था, जिन्होंने पूरा जीवन अपनी ही शर्तों पर जिया। मुझे याद है कि कैसे मेरे कॉलेज के प्रोफेसर, शहर के सम्मानीय और बुद्धिमान व्यक्ति गांधी की बातों पर हंसा करते थे कि वह बिना हथियार के सिर्फ सत्य-अहिंसा से अंग्रेज सरकार को हरा देंगे और देश को आजाद करा लेंगे।मेरे शहर के शायद एक प्रतिशत से भी कम लोग ये सपने में भी नहीं सोच सकते थे कि अपने जीवनकाल में वे देश को आजाद हुआ देख सकेंगे।पर गांधीजी को खुद पर, अपने विचारों और अपने देशवासियों पर भरोसा था। शायद आपमें से किसी ने नंदलाल बोस द्वारा चित्रित गांधीजी का चित्र देखा होगा।वह एक ऐसे व्यक्ति का चित्र है, जिसमें सोचने का साहस था और उस सोच पर अमल करने की हिम्मत थी।

मेरे कॉलेज के समय मुझ पर भगत सिंह या गांधीजी का प्रभाव नहीं था। मैं पंजाब प्रांत के लाहौर में स्थित प्रसिद्ध गवर्नमेंट कॉलेज से अंग्रेजी साहित्य में एमए कर रहा था। इस कॉलेज में सिर्फ सर्वश्रेष्ठ विद्यार्थियों का चयन होता है। आजादी के बाद मेरे साथियों ने हिन्दुस्तान और पाकिस्तान की सरकारों और समाज में काफी ऊंचे पद हासिल किए। पर उस समय कॉलेज में दाखिला लेते समय हमें लिखकर देना पड़ता था कि हम राजनीतिक आंदोलनों में हिस्सा नहीं लेंगे। उस समय राजनीतिक आंदोलन का मतलब देश में चल रहे आजादी के आंदोलन से था ।

आज हमारे देश को आजाद हुए पच्चीस साल हो गए हैं। इस साल हम आजादी की रजत जयंती मना रहे हैं।पर क्या हम कह सकते हैं कि गुलामी और हीनता का भाव हमारे मन से बिल्कुल दूर हो चुका है? क्या हम दावा कर सकते हैं कि व्यक्तिगत, सामाजिक या राष्ट्रीय स्तर पर हमारे विचार, हमारे फैसले और हमारे काम मूलतः हमारे अपने हैं और हमने दूसरों की नकल करनी छोड़ दी है? क्या हम स्वयं अपने लिए फैसले लेकर उन पर अमल कर सकते हैं या फिर हम यूं ही इस नकली स्वतंत्रता का दिखावा करते रहेंगे?

इस बारे में तो मैं आपका ध्यान हमारी फिल्म इंडस्ट्री की तरफ ले जाना चाहूंगा, जहां से मैं आता हूं। मैं जानता हूं कि उनमें से ज्यादा फिल्में ऐसी हैं, जिनका जिक्र सुनकर ही आप हंस पड़ेंगे।एक पढ़े-लिखे बुद्धिमान आदमी के लिए हमारी फिल्में तमाशे से ज्यादा कुछ नहीं हैं। उनकी कहानियां बचकानी, असलियत से दूर और तर्कहीन होती हैं।और ये बात तो आप भी मानेंगे की सबसे बड़ी खराबी है कि उनकी कहानी, तकनीक और नाच-गाने तक पश्चिम की फिल्मों की अंधी नकल होते हैं। कई बार तो पूरी की पूरी फिल्म ही किसी विदेशी फिल्म

की नकल होती है। कोई हैरानी की बात नहीं है कि आप नौजवान लोग इन फिल्मों पर हंसते हैं, पर साथ ही कुछ ऐसे भी हैं जो फिल्म-स्टार बनने के सपने भी देखते होंगे ।

हालांकि मेरे लिए उनका मजाक उड़ाना आसान नहीं है। मैं उनसे अपनी रोजी कमाता हूं। मैंने उनसे खूब पैसा और मशहूरियत हासिल की।आज मुझे यहां जो इज्जत दी जा रही है, उसके पीछे कुछ हद तक मेरी फिल्मी मशहूरियत ही है। जब मैं आपकी तरह विद्यार्थी था, तो हमारे अंग्रेज और हिन्दुस्तानी प्रोफेसर बड़ी कोशिशों से हमारे अंदर यह एहसास पैदा करना चाहते थे कि कला का सृजन करना सिर्फ गोरी चमड़ी वालों का ही विशेषाधिकार है। अच्छी फिल्में, अच्छे नाटक, अच्छा अभिनय, अच्छी चित्रकला आदि सब यूरोप और अमेरिका में ही संभव हैं। हिन्दुस्तान के लोग, भाषा, संस्कृति इन कलात्मक भावनाओं के लिहाज से अपरिष्कृत और पिछड़े हुए हैं। ये सब सुनकर हमे बुरा लगता और हम गुस्सा भी हो जाते पर अंदर से हम ये बात मानने को मजबूर थे ।

पर उस जमाने और आज के जमाने में बहुत फर्क है । आजादी के बाद भारतीय कलाओं ने बहुत प्रगति की है।फिल्मों की बात करें तो सत्यजीत रे और बिमल रॉय ऐसे नाम हैं जो विश्व प्रसिद्ध हो चुके हैं। कई कलाकारों और टेकनीशियनों की तुलना अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर होती है।आजादी से पहले हमारे देश में मुश्किल से 10-15 फिल्में ही बनती थीं, जो मशहूर होती थीं। आज हम संसार भर में सबसे ज्यादा फिल्में बनाने वाला देश हैं। और इन फिल्मों को सिर्फ हमारे देश की जनता ही नहीं, बल्कि अफगानिस्तान, ईरान, पूर्वी सोवियत यूनियन, मिस्र, अरब, अफ्रीका के अनेक देशों की जनता भी बड़े शौक से देखती है। हमने इस क्षेत्र में हॉलीवुड द्वारा लाई गई एकरसता को तोड़ा है।

और अगर सामाजिक जिम्मेदारी के नजरिये से भी देखा जाए तो हमारी फिल्में नैतिक रूप से अभी उतने निचले स्तर पर नहीं पहुंची हैं जहां कुछ पश्चिमी देश पहुंच चुके हैं। हिन्दुस्तानी निर्माताओं ने अभी लाभ कमाने के लिए सेक्स और अपराध का सहारा नहीं लिया है जैसा अमेरिकी निर्माता कई सालों से करते आ रहे हैं, बिना ये सोचे कि इससे वो देश में एक गंभीर सामाजिक समस्या को जन्म दे रहे हैं ।

इस सबके बावजूद अगर कमी है तो सिर्फ एक बात की कि हम अभी भी नक्काल हैं।इसी एक गलती के कारण हम सभी बुद्धिजीवियों के मजाक का पात्र बनते हैं। हम विदेशों से उधार लिए गए, घिसे-पिटे फार्मूले पर फिल्में बनाते हैं। हम में अपने देश के जीवन को अपने ढंग से पेश करने का साहस नहीं है ।

यह बात मैं सिर्फ हिन्दी या तमिल फिल्मों के बारे में नहीं कह रहा हूं, ये शिकायत तथाकथित प्रगतिवादी और प्रयोगवादी फिल्मों से भी है, चाहे वो बंगाली में हों, हिन्दी में या मलयालम में।मैं सत्यजीत रे, मृणाल सेन, सुखदेव, बासु भट्टाचार्य या राजिंदर सिंह बेदी के

काम का बड़ा प्रशंसक हूं। मैं जानता हूं कि वे बहुत ही काबिल और सम्माननीय हैं।मैं यह भी कहे बिना नहीं रह सकता कि इनकी फिल्मों पर इटली, फ्रांस, स्वीडन, पोलैंड और चेकोस्लोवाकिया के फैशन की गहरी छाप है। वे नया कदम जरूर उठाते हैं, पर दूसरों के बाद ।

मेरा थोड़ा-बहुत संबंध साहित्य की दुनिया से भी है।यही हालत मैं वहां भी देखता हूं। यूरोपीय साहित्य का फैशन भी हमारे उपन्यासकारों, कहानी-लेखकों और कवियों पर झट हावी हो जाता है। अगर सोवियत यूनियन को छोड़ दें तो शायद पूरे यूरोप में कोई हिन्दुस्तानी साहित्य के बारे जानता तक नहीं है। उदाहरण के लिए मैं अपने प्रांत पंजाब की ही बात करता हूं।मेरे पंजाब में युवा कवियों की नई पौध सामाजिक व्यवस्था के खिलाफ इंकलाबी जज्बे से ओत-प्रोत है। इसमें भ्रष्टाचार, अन्याय, शोषण को हटाने और एक नई व्यवस्था बनाने की बात की गई है। आप इसे नकार नहीं सकते क्योंकि हमें सामाजिक बदलाव की जरूरत है। इन कविताओं में बातें तो बहुत अच्छी कही गई हैं पर इनका स्वरूप देसी नहीं है। इस पर पश्चिम का प्रभाव है।वहीं की तरह ये मुक्त छंद में हैं, न ही कोई तुकांत है। यदि वहां के कवियों ने लय और छंद का प्रयोग नहीं किया है तो पंजाबी कवियों को भी यही करना है। इसका परिणाम ये होता है कि ये इंकलाब एक छोटे से कागज पर ही रह जाता है, जिसकी तारीफ बस एक छोटे-से साहित्यिक समझ वाले समूह में हो जाती है पर वो किसान और मजदूर जो इस शोषण को झेल रहे हैं, जिन्हें वे इंकलाब की प्रेरणा देना चाहते हैं, इसे समझ ही नहीं पाते हैं।ये उन पर कोई असर नहीं डालती।अगर मैं ये कहूं कि बाकी हिन्दुस्तानी भाषाएं भी इसी 'न्यू वेव' कविताओं के प्रभाव में हैं, तो गलत नहीं होगा ।

मुझे चित्रकला के बारे में कोई ज्ञान नहीं है, पर इतना जरूर जानता हूं कि वहां भी पश्चिम के फैशन का ही बोलबाला है। इस प्रभाव से बचकर अलग राह पर चलने की हिम्मत शायद ही कोई चित्रकार कर सकता है।और शैक्षणिक संसार के बारे में क्या कहूं? मैं आपको खुद इसे पढ़ने के लिए कहूंगा। अगर आप हिन्दी फिल्मों पर हंसते हैं तो शायद खुद पर भी हंसना चाहेंगे ।

इस साल मेरी मातृभूमि पंजाब में मुझे गुरुनानक विश्वविद्यालय के सीनेट का सदस्य बनाने के लिए नामित किया गया। जब मुझे उसकी पहली मीटिंग में शामिल होने के लिए बुलाया गया, तो मैं पंजाब में ही प्रीत नगर के पास था। एक दिन शाम को अपने ग्रामीण दोस्तों से गपशप करते हुए मैंने अमृतसर में होने वाली सीनेट की मीटिंग में जाने का जिक्र किया, तो किसी ने कहा, 'हमारे साथ तो आप तहमत (लुंगी) और कुर्ते में हमारे जैसे ही बने फिरते हो, वहां जाकर सूट-बूट पहनकर साहब बहादुर बन जाओगे.' मैंने हंसते हुए कहा, क्यों! आप अगर चाहते हैं तो मैं ऐसे ही चला जाऊंगा ।' तभी दूसरा कोई बोला, 'आप ऐसा कर ही नहीं सकते, हमारे इन सरपंच को ही लीजिए। शहर में इन्हें किसी छोटे-मोटे काम से

सरकारी दफ्तर जाना हो, तो तहमत की जगह पाजामा पहनते हैं।कहते हैं कि तहमत पहनने पर इज्जत नहीं होती।और आप तो यूनिवर्सिटी में जा रहे हैं। '

एक और फौजी किसान, जो उस समय छुट्टी पर आया हुआ था, कहने लगा, 'अजीब बात है, आजकल तो शहरों की लड़कियां भी तहमत बांधती हैं, तो फिर इनकी इज्जत क्यों नहीं होगी?'

ये सब गपशप होती रही और मुझे ये चुनौती स्वीकार करनी पड़ी। मैं अगले दिन सचमुच तहमत-कुर्ते में सीनेट की मीटिंग में पहुंच गया और मुझे उम्मीद नहीं थी कि इससे वहां क्या खलबली मची।वहां पहुंचा तो बरामदे में गाउन पहनाने के लिए एक प्रोफेसर खड़े थे। पहली नजर में तो उन्होंने मुझे पहचाना ही नहीं। फिर, जब पहचाना तो हैरानी भरी नजर से मुझे सिर से पांव तक देखने लगे। आखिर गाउन पहनाते समय वे कहे बिना रह न सके, बोले, 'साहनी साहब, तहमत बांधी है, तो बूट की जगह खुस्सा (जूती) पहननी चाहिए थी न।' 'अगली बार ख्याल रखूंगा', मैंने क्षमा मांगने वाले स्वर में कहा और मीटिंग वाले कमरे में चला गया।पर तभी मुझे खयाल आया कि किसी के लिबास के बारे में आलोचना करना सभ्यता के नियमों के उलट समझा गया है। यह बात मैंने प्रोफेसर को क्यों नहीं कही! मुझे अपनी धीमी हाजिरजवाबी पर अफसोस हुआ।

मीटिंग के बाद यूनिवर्सिटी के लड़के-लड़कियों से मिलने पर भी मेरा लिबास उनके मनोरंजन की चीज बना रहा। उनके लिए हंसी की बात ये भी थी कि मैंने तहमत के साथ जूते पहन रखे थे।पर उन्हें इसमें कोई अजीब बात दिखाई नहीं दी कि कई लड़कों ने पतलून के साथ चप्पल पहनी हुई थी।

आपको लग रहा होगा कि ये छोटी-सी घटना बताकर मैं आपका समय क्यों खराब कर रहा हूं! पर एक पंजाबी किसान के नजरिये से इसे देखिए। हरित क्रांति में उनके सहयोग के लिए सब उनकी प्रशंसा करते हैं।वे हमारी फौजों की रीढ़ हैं।उन्हें कैसा लगेगा जब उनके कपड़ों या रहन-सहन को विस्मय से देखा जाएगा? पंजाब में यह बात कही जाती है कि गांव का लड़का कॉलेज की शिक्षा पाने के बाद गांव का नहीं रहता। वो अपने आप को अलग और श्रेष्ठ समझने लगता है, मानो वो यहां से नहीं किसी और ही दुनिया से है। उसकी एक ही कोशिश रहती है कि कैसे वो गांव छोड़कर शहर भाग जाए।क्या इसे शिक्षा के नाम पर एक धब्बा नहीं कहना चाहिए?

मैं मानता हूं सभी जगह ऐसा नहीं है। मैं ये भी जानता हूं कि तमिलनाडु या बंगाल में अपने पारंपरिक पहनावे को पहनने को लेकर कोई हीनभावना नहीं है। एक किसान से लेकर प्रोफेसर तक कोई भी, किसी भी अवसर पर धोती पहन के जा सकता है। पर वहां भी उधार लिए गए विचार किसी-न-किसी शक्ल में सामने आते हैं।ये किसी न किसी स्वरूप में हर

जगह मौजूद हैं। आजादी से पच्चीस साल बाद भी हम खुशी से वही शिक्षण-प्रणाली ढो रहे हैं, जो मैकाले ने क्लर्क और मानसिक गुलामों को बनाने के लिए बनाई थी। वो गुलाम जो अपने ब्रिटिश मालिकों के बारे में सोच पाने में भी असमर्थ होंगे, वो, जो अपने मालिकों से नफरत करने के बावजूद भी उनकी हमेशा तारीफ करेंगे, उनके जैसे बोलने, कपडे पहनने, गाने-नाचने में गर्व महसूस करेंगे।ये गुलाम जो अपने ही लोगों से नफरत करते हैं और बाकियों को भी नफरत का पाठ पढ़ाने के लिए तैयार रहेंगे। क्या अब भी हमें आश्चर्य होगा कि विश्वविद्यालयों में विद्यार्थियों का अपनी शिक्षा-व्यवस्था से विश्वास उठता जा रहा है।

यहां मैं फिर एक और छोटी बात बताना चाहूंगा। अगर आज से दस साल पहले आप दिल्ली के किसी फैशनेबल विद्यार्थी को पतलून के साथ कुर्ता पहनने के लिए कहते तो वह आप पर हंस देता।पर आज यूरोप से आए हिप्पियों और 'हरे रामा हरे कृष्णा' संस्कृति की नकल में, पतलून के साथ कुर्ता पहनना सिर्फ फैशन ही नहीं बना बल्कि कुर्ते का नाम 'गुरुशर्ट' हो गया है। अमेरिकियों द्वारा रविशंकर को सम्मान मिलते ही सितार 'स्टार' ही बन गया, बिलकुल वैसे ही जैसे 50 साल पहले स्वीडन से नोबेल पुरस्कार मिलते ही रवींद्रनाथ टैगोर पूरे देश के 'गुरुदेव' बन गए थे।

क्या आप कॉलेज के किसी विद्यार्थी से सिर के बाल और दाढ़ी-मूंछें मुंडवाने के लिए कह सकते हैं जबकि फैशन इसे बढ़ाने का है? पर अगर कल योग के प्रभाव में आकर यूरोप के विद्यार्थी ऐसा करने लगें तो मैं दावे से कह सकता हूं की अगले ही दिन कनाट प्लेस पर आपको गंजे सिर ही दिखेंगे। योग को इसकी जन्मभूमि में प्रचलित होने के लिए यूरोप से ही सर्टिफिकेट लेना होगा!

मैं एक और उदहारण देता हूं, मैं हिन्दी फिल्मों में काम करता हूं और सभी जानते हैं कि इन फिल्मों के गीत और संवाद ज्यादातर उर्दू में लिखे जाते हैं। मशहूर उर्दू लेखक और कवि- कृशन चंदर, राजिंदर सिंह बेदी, के.ए.अब्बास, गुलशन नंदा, साहिर लुधियानवी, मजरूह सुल्तानपुरी, कैफी आजमी जैसे नाम इस काम से जुड़े रहे हैं। तो जब उर्दू में लिखी हुई फिल्म को हिन्दी फिल्म कहते हैं तो ये माना जा सकता है कि हिन्दी और उर्दू एक ही हैं। पर नहीं! क्योंकि हमारे ब्रिटिश मालिकों ने अपने समय पर इन्हें दो अलग भाषाएं कहा था इसलिए ये अलग हैं, पर आजादी के पच्चीस साल बाद भी हमारी हुकूमत, हमारे विश्वविद्यालय, विद्वान हिन्दी और उर्दू को अलग-अलग भाषाएं माने हुए हैं। क्या आपने कभी संसार के किसी और देश के बारे में भी ये सुना है कि वहां लोग बोलते एक भाषा हैं, पर लिखते समय वह दो भाषाएं कहलाएं? कोई भी भाषा किसी भी लिपि में लिखी जा सकती है। मेरी मातृभाषा पंजाबी के लिए दो लिपियां कबूल की गई हैं।हिन्दुस्तान में गुरुमुखी और पाकिस्तान में फारसी। दो लिपियों में लिखी जाने पर भी वह भाषा तो एक ही रहती है... पंजाबी। तो दो लिपियों में लिखी जाने के कारण हिन्दी और उर्दू अलग-अलग भाषाएं कैसे हो गईं? रेडियो पाकिस्तान

अरबी और फारसी के शब्द घुसेड़-घुसेड़कर इस भाषा की खूबसूरती का सत्यानाश कर रहा है, वहीं आल इंडिया रेडियो उर्दू के साथ संस्कृत के शब्दकोश को मिला देता है। दोनों इन दोनों के मूल स्वरूप को ही बिगाड़ते हुए एक तरह से अपने मालिक की ही इच्छा की पूर्ति कर रहे हैं, वो है 'अविभाज्य' को अलग करना। इससे ज्यादा बेतुका और क्या होगा? अगर ब्रितानियों ने कभी सफेद को काला कह दिया होता तो क्या हम हमेशा सफेद को काला ही कहते? इस बात पर मेरे दोस्त जानी वॉकर एक दिन कहने लगे, 'रेडियो पर अनाउंसर को यह नहीं कहना चाहिए कि अब हिन्दी में समाचार सुनिए, बल्कि यह कहना चाहिए कि अब समाचार में हिन्दी सुनिए.' मैंने इस हास्यास्पद स्थिति के बारे में हिन्दी-उर्दू के कई प्रगतिवादी और परंपरागत लेखकों से भी बात की है, उन्हें इस बात के लिए मनाया है कि इस मुद्दे पर नई सोच की जरूरत है।पर अब तक ये दीवार पर अपना सिर मारने जैसा ही है! हम फिल्म वाले लोग इसे 'विद्वानों की जहालत' कहते हैं। क्या हम गलत हैं?

यहां मैं आपको अपना एक अनुमान बताने से नहीं रोक पा रहा हूं, हो सकता है कि ये गलत हो पर ये है! ये सही भी हो सकता है! कौन जाने! पंडित जवाहरलाल नेहरू ने अपनी आत्मकथा में स्वीकार किया है कि देश की आजादी की लड़ाई, जिसका नेतृत्व इंडियन नेशनल कांग्रेस कर रही थी, में शुरू से ही संपन्न और पूंजीपति वर्ग का वर्चस्व रहा है। सो यह स्वाभाविक ही था कि आजादी के बाद इसी वर्ग का शासन और समाज पर वर्चस्व होता। और आज कोई भी इस बात से इंकार नहीं करेगा कि पिछले 25 सालों से पूंजीपति वर्ग दिन-प्रतिदिन और ज्यादा धनवान और शक्तिशाली हुआ है वहीं मजदूर-किसान वर्ग और ज्यादा लाचार और परेशान। पंडित नेहरू इस स्थिति को बदलना चाहते थे, पर बदल नहीं सके। इसके लिए मैं उन्हें दोष नहीं देता। हालात ने उन्हें मजबूर कर रखा था। आज इंदिरा गांधी के नेतृत्व में हमारी हुकूमत फिर इस स्थिति को बदलने और समाजवाद लाने का वादा कर रही है।वे कब और किस हद तक सफल होंगी, कुछ कहा नहीं जा सकता। न ही इस बहस में पड़ने का मेरा इरादा है। राजनीति मेरा विषय नहीं है।सिर्फ इतना कहना ही काफी है कि जिस तरह हिन्दुस्तान में अंग्रेजों की हुकूमत पर अंग्रेज पूंजीपतियों का दबदबा था, उसी तरह आज देश की हुकूमत पर हिन्दुस्तान के पूंजीपतियों का प्रभाव है।

मैं समझता हूं कि ये बात तो सभी मानेंगे कि अंग्रेजों की पूंजीवादी व्यवस्था ने अपने कदम मजबूत करने के लिए अंग्रेजी भाषा का प्रयोग किया था, जिसमें उन्हें खासी सफलता भी मिली। मैं पूछता हूं कि आज हमारे देश के शासक किस भाषा को अपने प्रतिनिधित्व को मजबूत करने लायक समझते हैं? राष्ट्रभाषा हिन्दी? यहां मेरा अनुमान ये कहता है कि उनके उद्देश्यों की पूर्ति सिर्फ और सिर्फ अंग्रेजी ही कर सकती है। पर चूंकि उन्हें अपनी देशभक्ति का दिखावा भी करना है इसलिए वो राष्ट्रभाषा हिन्दी की रट लगाए रहते हैं जिससे जनता का ध्यान भटका रहे। पूंजीपति भले ही हजारों भगवान में विश्वास करें पर वो पूजता सिर्फ एक को ही है- मुनाफे का भगवान।उस दृष्टिकोण से उसके लिए आज भी अंग्रेजी ही

फायदेमंद है।औद्योगिकीकरण और तकनीकी विकास के इस दौर में अंग्रेजी ही फायदेमंद है।शासक वर्ग के लिए तो अंग्रेजी गॉड-गिफ्ट ही है.

आप सोच रहे होंगे कि वह कैसे? आसान-सा कारण है- अंग्रेजी भारत के आम मेहनतकश लोगों के लिए एक मुश्किल भाषा है।पहले के समय में फारसी और संस्कृत इन मेहनतकशों की पहुंच से दूर थी, इसीलिए शासक वर्ग ने उन्हें राजभाषा का दर्जा दिया था, जिससे वे जनसाधारण में असभ्य, अशिक्षित होने की हीनता व आत्मग्लानि की भावनाएं पैदा करता था और वो खुद को कभी शासन के योग्य ही न बना पाए।आज यही रोल अंग्रेजी भाषा अदा कर रही है.

यही आज भारत का शासक वर्ग कर रहा है।ये देश में इंकलाब नहीं चाहता, कोई बुनियादी तब्दीली नहीं चाहता।अंग्रेजों से मिली हुई व्यवस्था को उसी प्रकार कायम रखने में उसका फायदा है।पर वह खुलेआम अंग्रेजी को अंगीकार नहीं कर सकता।राष्ट्रीयता का कोई न कोई आडंबर खड़ा करना उसके लिए जरूरी है।इसीलिए वह संस्कृतवादी हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार करने का ढोंग करता है। उसे पता है कि संस्कृत शब्दों के बोझ तले दबी नकली और बेजान भाषा अंग्रेजी के मुकाबले में खड़ी होने का सामर्थ्य अपने अंदर कभी भी पैदा नहीं कर सकेगी। आज के युग के वैज्ञानिक और तकनीकी शब्दों से रिक्त होने के कारण वह हमेशा कमजोर भाषा बनी रहेगी। हम फिल्मी कलाकारों को उनके प्रशंसकों की ओर से रोज पत्र आते हैं। ऐसे पत्र मुझे पिछले बीस साल से आ रहे हैं। यह पत्र आमतौर पर कॉलेज के विद्यार्थियों और पढ़े-लिखे नौजवानों की ओर से आते हैं।उनके आधार पर मैं दावे के साथ कह सकता हूं कि हमारी शिक्षण संस्थाओं में अंग्रेजी का स्तर दिन-प्रतिदिन गिरता जा रहा है।शायद इसलिए, मैंने सुना है कि दाखिला देते समय कॉलेज में पब्लिक स्कूलों से पढ़कर आने वाले विद्यार्थियों को महत्व दिया जाता है। पब्लिक स्कूल मतलब वो स्कूल जहां पर बड़े घरों के बच्चे पढ़ते हैं।

मेरे लिए अंग्रेजी को ताकतवर बनाने की इस बात पर टिप्पणी करना जरूरी नहीं है। ये स्पष्ट भी है। ये बात मानी भी जा चुकी है कि अंग्रेजी विदेशी है और एक औसत आम भारतीय के लिए इसे सीखना कठिन है।पर फिर भी, आप खुद अपनी आंखों से देख सकते हैं कि किस प्रकार जीवन के हर क्षेत्र में अंग्रेजी को महत्व दिया जा रहा है। मेरी नाचीज राय में इसका बुनियादी कारण ये है कि उद्योग के क्षेत्र में पूंजीपतियों के राष्ट्रीय पैमाने पर संगठित होने और वर्तमान सामाजिक ढांचे को ज्यों का त्यों कायम रखने के लिए अंग्रेजी बहुत ज्यादा सहायक है।

कुछ दिन पहले की बात है, मैंने अपना यह विचार बम्बई के एक मजदूर नेता के सामने रखा और कहा कि आप अगर सचमुच पूंजीवादी व्यवस्था की जगह समाजवादी व्यवस्था कायम करना चाहते हैं, तो मजदूरों को भी पूंजीपतियों की तरह राष्ट्रीय पैमाने पर संगठित

होकर आत्मविश्वास पैदा करना होगा और यह चीज अंग्रेजी से पीछा छुड़ाकर ही हो सकती है। मजदूर नेता मुझसे सहमत हुए, पर कहने लगे, 'रोग तो आपने ठीक पकड़ा है, पर इसका इलाज क्या है?'

'इलाज ये है कि अंग्रेजी लिपि को अपनाना और अंग्रेजी भाषा को धक्का देकर बाहर निकालना । '

'वह कैसे?'

'टूटी-फूटी हिन्दुस्तानी सारे देश के मजदूर बोल और समझ लेते हैं।वो इसमें अपना सारी व्याकरण मिलाकर इसका प्रयोग करते हैं। इस तरह की भाषा में लड़की भी 'जाता' है और लड़का भी 'जाता' है, होता है।इस तरह के माहौल में एक ऐसी आजादी मिलती है कि कई बार बुद्धिजीवी भी इस तरह की भाषा बोलते हुए देखे जा सकते हैं। और यही तो भारत की परंपरा में है।आज की हिन्दुस्तानी में यूनिवर्सिटी 'यूनीवरास्टी' बन जाता है, (विश्वविद्यालय के मुकाबले में यूनीवरास्टी कितना सुंदर और जानदार शब्द है!) स्पैनर 'पाना' है, लैंटर्न 'लालटेन', कार की 'चेसिस' 'चैसी' हो जाती है यानी सब कुछ संभव है।जिस तार से फौजी अपनी बंदूक साफ करते हैं वो अंग्रेजी में पुल-थ्रू कहलाता है पर रोमन हिन्दुस्तानी में ये 'फुल्टू' बन जाता है। कितना सुंदर शब्द! हॉलीवुड के लाइटमैन एक तरह के कवर के लिए बार्न डोर शब्द प्रयोग करते हैं, बम्बई फिल्म कर्मचारियों में इसे नाम दिया 'बंदर', वाह! कितना अच्छा बदलाव है! इस तरह की हिन्दुस्तानी में तमाम संभावनाएं हैं। ये अंतर्राष्ट्रीय वैज्ञानिक और तकनीक शब्दावली को कितनी आसानी से अपना लेती है। ये हर जगह से शब्द ले कर खुद को समृद्ध बना लेती है।बार-बार संस्कृत शब्दकोश देखने की जरूरत ही नहीं।'

'पर रोमन लिपि ही क्यों?' उन्होंने पूछा।

'इसलिए कि किसी लिपि के बारे में किसी के कोई पूर्वाग्रह नहीं हैं।फिर, इस समय यह राष्ट्रीय पैमाने पर सबसे ज्यादा प्रचलित लिपि है।मद्रास, कलकत्ता, बम्बई, दिल्ली आदि शहरों में हर जगह दुकानों और फिल्मों के साइनबोर्ड इसी लिपि में लिखे हुए नजर आएंगे।खतों पर नाम व पता लिखने के लिए भी तो देश-भर में यही लिपि इस्तेमाल की जाती है।फौज तो इसे लगभग 30 सालों से इस्तेमाल कर रही है। '

वो दोस्त कुछ देर चुप रहे, फिर हंसकर कहने लगे, 'कामरेड, यूरोप में भी एक बार एस्प्रांटों चलाने का तजुर्बा किया गया था। जार्ज बर्नार्ड शा जैसे विद्वान ने इसे अंग्रेजी जैसा मशहूर बनाने के लिए पूरा जोर लगाया था पर वह प्रयोग बुरी तरह असफल हुआ, क्योंकि वह बनाई गई भाषा थी।भाषाएं बनाई नहीं जातीं, वे अपने-आप स्वाभाविक ढंग से बनती हैं। '

मैं हैरानी से उनकी ओर देखता रह गया।फिर मैंने कहा, 'काॅमरेड, एस्प्रांटों तो वह है, जिसे राष्ट्रभाषा के नाम पर हिन्दी पंडित संस्कृत के शब्दकोश से शब्द लाकर गढ़ रहे हैं।मैं उस भाषा की बात कर रहा हूं जो आस-पास लोगों द्वारा फैलाई जा रही है।'

मैंने और भी कई दलीलें दीं, पर उन्हें राजी न कर सका। मैंने जवाहरलाल नेहरू और सुभाष चंद्र बोस का भी हवाला दिया कि इन दोनों महान नेताओं ने भी रोमन हिन्दुस्तानी की जोरदार हिमायत की थी पर इसका भी उन पर कोई असर न हुआ।यहां सवाल ये नहीं है कि उनमें और मुझमें कौन सही था। शायद मैं गलत था।पर उनके अनुसार मेरी बात उन्हें शेखचिल्ली का सपना लग रही थी।जैसा मैंने पहले भी कहा कि अनुमान सही भी हो सकते हैं और गलत भी। पर कोई भी अनुमान या अनकही बात कर पाना आजाद सोच की निशानी है।काॅमरेड को इस बात की तारीफ करनी चाहिए थी पर वे ऐसा नहीं कर पाए क्योंकि वो एक तयशुदा सोच से हटकर सोच ही नहीं सके।

कोई भी देश तभी उन्नति कर सकता है, जब वो अपने अस्तित्व से पूरी तरह वाकिफ हो।इसे अपने लिए सोचना-सीखना होगा।इसे अपनी समस्याओं के समाधान खुद तलाशना सीखना होगा।पर मैं जिस ओर भी देखता हूं मुझे लगता है कि हमारी हालत अभी भी उस पक्षी जैसी है, जो लंबी कैद के बाद पिंजरे में से आजाद तो हो गया हो, पर उसे नहीं पता कि इस आजादी का करना क्या है। इसके पास पंख हैं पर ये खुले आसमान में उड़ने से डरता है।ये सिर्फ उस सीमा में ही रहना चाहता है जो उसके लिए निर्धारित की गई है।

व्यक्तिगत और सामूहिक रूप से हम वाल्टर मिटी (एक उपन्यास का काल्पनिक चरित्र जो एक काल्पनिक दुनिया में ही रहता है) जैसी जिंदगी ही जी रहे हैं।हमारे अंदर की जिंदगी बाहर की जिंदगी से बिलकुल उलट है।हमारी सोच और कामों में जमीन-आसमान का अंतर है। हम बदलाव तो चाहते हैं पर बरसों से चली आ रही लीक से हटकर सोच पाने का साहस ही नहीं जुटा पाते ।

मैं समझता हूं कि हमारे देश में भी कई पुलिस-अफसर ऐसे होंगे, जो जनता के मन में डर पैदा करने की बजाय उसकी सेवा और सहायता करना चाहते हैं। उन्होंने यह भी पढ़ा-सुना होगा कि इंग्लैंड में पुलिस का जनता से व्यवहार बहुत मददगार होता है। पर वे अंग्रेजी साम्राज्य से मिली हुई व्यवस्था के शिकार हैं जो अपने देश में तो अलग है पर यहां के लिए नहीं।इस औपनिवेशिक परंपरा के अनुसार, जब भी कोई व्यक्ति उनके दफ्तर में दाखिल हो, तो डर भर दिया जाए, उससे जितना हो सके प्रतिरोधी और गैर-मददगार व्यवहार किया जाए। ये व्यवस्था हर सरकारी दफ्तर में चपरासी से लेकर मंत्री तक में देखी जा सकती है।

मुझे एक घटना याद आ रही है, जो मेरे एक फिल्म-निर्माता मित्र ने बताई थी।उसने बाक्स-आफिस की बजाय समाज की भलाई को सामने रखकर एक फिल्म बनाने की गलती

कर डाली।वह चाहता था कि उस पर मनोरंजन कर माफ हो जाए। मंत्री ने उसे मिलने के लिए राजभवन में आने का समय दिया हुआ था।वे नए-नए मंत्री बने थे और उसी दिन उन्हें शपथ लेनी थी।निर्माता नियत समय पर पहुंच गया।मंत्री के सेक्रेटरी ने उसे अपने पास खड़ा कर लिया।उधर, मंत्री राज्यपाल के सामने जनता की निष्काम सेवा करने की कसम उठा रहे थे और इधर उनका सेक्रेटरी निर्माता से बीस हजार रुपये रिश्वत के तौर पर मांग रहा था।

वह निर्माता बहुत चाहता है कि इस दृश्य को अपनी किसी फिल्म में डाल दे। पर कोई फाइनेंसर इस फिल्म के लिए तैयार नहीं हैं।पर अगर फिल्म बन भी जाए तो क्या हमारा सेंसर इस बात की इजाजत देगा? सेंसर के अनुसार ये अलिखित कानून है कि सरकार का कोई भी मंत्री रिश्वत नहीं लेता।पर यहां ज्यादा हास्यास्पद बात यह है कि जो लोग हर समय मंत्रियों के रवैये के खिलाफ शिकायतें करते हैं, वही मंत्रियों को हार पहनाने के लिए सबसे आगे खड़े होते हैं।किसी भी सभा-सोसायटी का जलसा हो, वहां मंत्री जरूर आना चाहिए।या तो वहां फिल्म अभिनेता मुख्य अतिथि होगा नेता अध्यक्ष या उल्टा होगा, नेता मुख्य अतिथि और फिल्म अभिनेता अध्यक्ष।किसी बड़े नाम का वहां होना बहुत ही आवश्यक है क्योंकि ये एक ब्रिटिश, औपनिवेशिक परंपरा है।

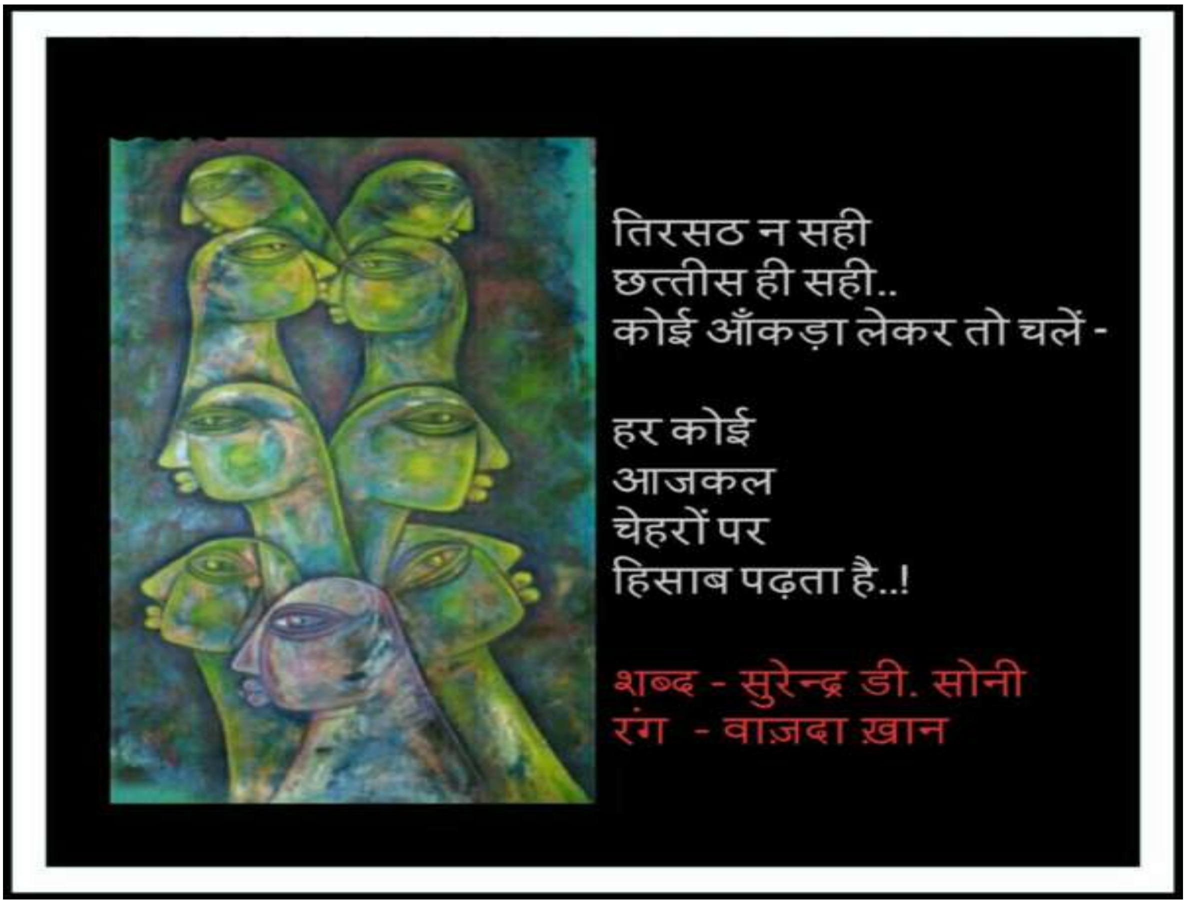
मैं 25 वर्षों से इप्टा (इंडियन पीपुल्स थियेटर एसोसिएशन) का सदस्य हूं।यह संस्था आम जनता के लिए नाटक खेलने का दावा करती है। इसके नाटकों में सरकार और शासन-व्यवस्था की कड़ी आलोचना होती रही है।इसलिए सीआईडी इस पर खास नजर रखती है।पर मैंने देखा है कि इसी इप्टा की कॉन्फ्रेंस के उद्घाटन के लिए मंत्रियों का आना जरूरी समझा जाता है।

आखिरी विश्व युद्ध के समय मैंने कुछ समय बीबीसी में बतौर उद्घोषक काम करते हुए बिताया।संकट के चार उन सालों में भी मैंने प्रधानमंत्री समेत ब्रिटिश कैबिनेट के किसी भी मंत्री को कहीं नहीं देखा। पता नहीं, वे कहां छिपे रहते थे! पर यहां, देश की आजादी के बाद से ही मुझे हर जगह मंत्री ही दिखाई दे रहे हैं।

1930 में जब महात्मा गांधी गोलमेज सम्मेलन के लिए इंग्लैंड गए थे, तो उन्होंने इंग्लैंड के पत्रकारों को संबोधित करके कहा था, 'हिन्दुस्तान के लोग ब्रिटिश सरकार की बंदूकों और मशीनगनों को उसी तरह देखते हैं, जिस तरह दीवाली के दिन उनके बच्चे पटाखों को देखते हैं.' यह दावा वे क्यों कर सके? इसलिए कि उन्होंने हिन्दुस्तानियों के दिलों में से अंग्रेज शासकों का डर निकाल दिया था।आम लोग अंग्रेज शासकों को इज्जत की जगह नफरत से देखने और उनके साथ असहयोग करने लगे थे।यह साहस महात्मा गांधी ने निहत्थे हिन्दुस्तानियों के दिलों में भरा था।

आज अगर हम सचमुच चाहते हैं कि हमारे देश में समाजवाद आए, तो जनसाधारण को पैसे और रुतबे की छाया से आजाद कराने की जरूरत है।पर इस समय असलियत क्या है? हर तरफ पैसे और रुतबे का बोलबाला है।समाज में इज्जत उसकी ही है, जिसके पास मोटरें हैं, बंगले हैं, दौलत का दरिया बहता है।क्या कभी ऐसी हालत में समाजवाद आ सकता है? समाजवाद से पहले हमें वो माहौल लाना होगा जहां सिर्फ धन-दौलत का होना ही सम्मान देने का पैमाना न बने।हमें ऐसा माहौल बनाना होगा जहां सबसे ज्यादा सम्मान उस मजदूर को मिले जो चाहे शारीरिक मेहनत करता हो या मानसिक।अपने कौशल के साथ मेहनत करता हो या प्रतिभा के साथ।अपनी कला से देश की सेवा कर रहा हो या किसी अाविष्कार से।इसके लिए पुरानी सोच को तोड़कर एक नई सोच लाने की जरूरत होगी।क्या हम कहीं से भी खुद को उस क्रांति को लाने के करीब पाते हैं?

शायद हमें आज एक मसीहा की जरूरत है जो हमें इस गुलामी से निकाल कर एक आजाद सोच और नए मूल्यों का निर्माण करने का साहस दे जिससे हम अपने शासकों के साथ जुड़ने की बजाय आम जनता के साथ जुड़ें।ये मेरी आशा और प्रार्थना है कि आप जवाहरलाल नेहरू यूनिवर्सिटी के ग्रेजुएट अपने जीवन में वो सफलता पाने में समर्थ होंगे जो मैं और मेरी पीढ़ी के कई लोग नहीं पा सके।



हिंदी के प्रचार-प्रसार में हिंदी ब्लॉगर की भूमिका



राहुल खटे, उप प्रबंधक (राजभाषा)

आज का युग विज्ञान और तकनीक का है, जिसमें हम पग-पग पर तकनीक से टकराते है। जो लोग इस तकनीक को अपना लेते है, वह अपने काम आसानी से कर लेते हैं और जो नहीं कर पाते या जिन्हें इसके लिए दुसरों की सहायता लेनी पड़ती है, वह अपना काम जैसे-तैसे पुरा कर लेते है। जो इस झंझट में नहीं पड़ना चाहते हैं, वह समय के साथ चलने वाली स्पर्धा से पिछड़ जाते है और भविष्य में एक दिन उनके मन में भी विचार आता है कि यदि वह समय की मांग को समझकर तकनीक के साथ चल पड़ते तो आज वह वहॉ होते जहॉ उनके साथी खड़े हैं। इसका एक साधारण सा उदाहरण है कि आजकल कंप्यूटर द्वारा आसानी से रेल का टिकट बूक किया जा सकता है। रेल टिकट काउंटर पर लंबी लाइन में लगकर पर्ची भरने से अच्छा हैं, कंप्यूटर पर रेल विभाग की ऑनलाइन साईट पर जाकर मिनटों में रेल का कन्फर्म टिकट प्राप्त किया जा सकता है। कहने का तात्पर्य है कि तकनीक और कंप्यूटर ने हमारे कई काम आसान कर दिए हैं। भारत की सरकार भी आज-कल डिजिटल इंडिया का सपना देख रही है। ऐसी स्थिति में क्यों न सूचना प्रौद्योगिकी का भरपूर लाभ उठाया जाए और इसी के माध्यम से हमारी राजभाषा हिंदी के विकास के लक्ष्य को भी साधा जाए? आज-कल कंप्यूटर पर हिंदी में काम करना बहुत आसान हो गया है,खासकर गुगल हिंदी इनपूट और माइक्रोसॉफ्ट इंडिक लैंगवेज टूल की सहायता से अंग्रेजी की-लेआउट के जरीए अंग्रेजी की ही गति से हिंदी में भी कंप्यूटर पर आसानी से काम किया जा सकता है।ऐसे में हम एक ऑनलाइन 'चौपाल' लगा कर हमारे विचारों को हमारी ही भाषा में स्थान दे सकते हैं। गुगल का ब्लॉगर एक ऐसा ही ई-टूल है, जिसके जरीए हम हमारे विचारों को इंद्रजाल-इंटरनेट के जरिए जन-जन तक पहुँचा सकते हैं। विकिपीडिया के अनुसार चिट्ठा (अंग्रेज़ी का ब्लॉग), बहुवचन चिट्ठे (अंग्रेज़ी में ब्लॉग्स) एक प्रकार के व्यक्तिगत जालपृष्ठ (वेबसाइट) होते हैं, जिन्हें दैनन्दिनी (डायरी) की तरह लिखा जाता है। हिंदी के प्रचार और प्रसार में सूचना प्रचार-प्रसार में यही चिट्ठे (ब्लॉग) हमारे इलेक्ट्रॉनिक 'देवदूत' साबित हो सकते हैं, जो कलियुग में नारद मुनी का काम कर सकते हैं। यदि आप अपने विचारों को पूरे विश्व में एक साथ पहुँचाना चाहते हैं, तो आप अपने पसंदीदा विषय पर ब्लॉग बनाकर अपनी बातों को पूरे विश्व में कही भी पहुँचा सकते हैं और उसे रोज अद्यतन भी कर सकते हैं।

आज कल हम देखते हैं कंप्यूटर पर कई ब्लॉग हैं, जो हिंदी में हैं और नव-नवीन विषयों पर अपने ज्ञान का प्रसार कर रहे हैं। इसमें हिंदी भाषा, ज्ञान-विज्ञान, तकनीकि-प्रौद्योगिकी, कथा, कहानियॉ, शिक्षा, स्वास्थ्य, बाल जगत और अन्य विषयों के साथ-साथ इतिहास, भूगोल और भौतिक विज्ञान जैसे कई विषयों का समावेश हैं। विशेष: अनुनाद सिंह जी ने इस क्षेत्र में भगीरथ प्रयास किया है। कंप्यूटर पर ऐसे कई विषयों पर आज जानकारी उपलब्ध हो गई जिन विषयों की पुस्तकें प्राय: दुर्लभ समझी जाती है। प्राचीन ग्रंथों के पीडीएफ फाइलों का ब्लॉगों के माध्यम से आसानी से डाउनलोड किया जा सकता है। इससे अध्ययन और अनुसंधान दोनों में सहायता हो रही है। खासकर ऐसी पुस्तकें जिनकी प्रतियां आज किसी लाइब्रेरी में भी मिलना मुश्किल हैं ऐसे कई विषयों की पुस्तकों का संकलन आसानी से उपलब्ध हो जाता है। साथ ही ब्लॉग बनाने वाले व्यक्ति के विचार और दर्शन से भी परिचित हो सकते हैं। हिंदी में लिखी गई बहुत सी पुस्तकें आज भी आम जन तक नहीं पहुँच पाई हैं, जिन्हें ब्लॉग पर दी गई लिंक के माध्यम से सरलता से डाउनलोड किया जा सकता है, सोशल मीडिया पर शेयर किया जा सकता है और अपने पाठकों को इसकी लिंक भी भेजी जा सकती हैं। विकिपीडिया के अनुसार हिन्दी का पहला चिट्ठा 'नौ दो ग्यारह' माना जाता है, जिसे आलोक कुमार ने पोस्ट किया था। ब्लॉग के लिये चिट्ठा शब्द भी उन्हीं ने प्रदिपादित किया था जो कि अब इण्टरनेट पर इसके लिये प्रचलित हो चुका है। चिट्ठा बनाने के कई तरीके होते हैं, जिनमें सबसे सरल तरीका है, किसी अंतर्जाल पर किसी चिट्ठा वेबसाइट जैसे ब्लॉगस्पॉट या लाइवजर्नल या वर्डप्रेस आदि जैसे स्थलों में से किसी एक पर खाता खोल कर लिखना शुरू करना। एक अन्य प्रकार की चिट्ठेकारी सूक्ष्म चिट्ठाकारी कहलाती है। इसमें अति लघु आकार के पोस्ट्स होते हैं।आज के संगणक जगत में चिट्ठों का भारी चलन चल पड़ा है। कई प्रसिद्ध मशहूर हस्तियों के चिट्ठा लोग बड़े चाव से पढ़ते हैं और उन पर अपने विचार भी भेजते हैं। चिट्ठों पर लोग अपने पसंद के विषयों पर लिखते हैं और कई चिट्ठे विश्व भर में मशहूर होते हैं जिनका हवाला कई नीति-निर्धारण मुद्दों में किया जाता है। चिट्ठा का आरंभ १९९२ में लांच की गई पहली जालस्थल के साथ ही हो गया था। आगे चलकर १९९० के दशक के अंतिम वर्षो में जाकर चिट्ठाकारी ने जोर पकड़ा। आरंभिक चिट्ठा संगणक जगत संबंधी मूलभूत जानकारी के थे। लेकिन बाद में कई विषयों के चिट्ठा सामने आने लगे। वर्तमान समय में लेखन का हल्का सा भी शौक रखने वाला व्यक्ति अपना एक चिट्ठा बना सकता है, चूंकि यह निःशुल्क होता है और अपना लिखा पूरे विश्व के सामने तक पहुंचा सकता है। (स्रोत:विकिपीडिया) चिट्ठों पर राजनीतिक विचार, उत्पादों के विज्ञापन, शोधपत्र और शिक्षा का आदान-प्रदान भी किया जाता है। कई लोग चिट्ठों पर अपनी शिकायतें भी दर्ज कर के दूसरों को भेजते हैं। इन शिकायतों में दबी-छुपी भाषा से लेकर बेहद कर्कश भाषा तक प्रयोग की जाती है। वर्ष २००४ में चिट्ठा शब्द को मेरियम-वेबस्टर में आधिकारिक तौर पर सम्मिलित किया गया था। कई लोग अब चिट्ठों के माध्यम से ही एक दूसरे से संपर्क में रहने लग गए हैं। इस प्रकार एक तरह से

चिट्ठाकारी या चिट्ठाकारी अब विश्व के साथ-साथ निजी संपर्क में रहने का माध्यम भी बन गया है। कई कंपनियां आपके चिट्ठों की सेवाओं को अत्यंत सरल बनाने के लिए कई सुविधाएं देने लग गई हैं।(स्रोत:विकिपीडिया) हिंदी के प्रचार को इन ब्लॉग ने पर लगा दिए हैं। खासकर ऐसी पुस्तकें जिनको प्रकाशित करने में समस्या आती है या फिर जो पुस्तकें प्रकाशित होने पर भी पाठकों तक नहीं पहुँच पाती हैं, ऐसी पुस्तकों की सामग्री को आसानी से पाठकों तक मात्र एक क्लिक करने पर ही पहुँचाया जा सकता है, जिसपर पाठक बैठे-बैंठे ही अपनी प्रतिक्रिया भी दे सकते हैं। ऐसे कई ब्लॉग हैं, जिनका यहॉ जिक्र करना आवश्यक हैं, जैसे हिंदू महासागर, राजभाषा हिंदी, प्रतिभास, विज्ञानविश्व, शब्दों का सफर, ज्ञानवाणी, गणित और विज्ञान, सौर, इंडिया वाटर पोर्टल, भारत विद्या, वैज्ञानिक भारत, विचार वाटीका, श्यामस्मृति,विजानाति-विजानाति-ज्ञान आदि विशेष हैं। किसी ने कहा भी है, कि 'आज का ब्लॉग कल की पुस्तक है'। अर्थात कागज-कलम लेकर अपने विचारों को लिखने के बजाए यदि आप उसे सीधे कंप्यूटर पर टाइप कर पाते है तो वह आपके विचारों की इलेक्टॉनिक पांडुलिपि बन जाती है। अनुनाद सिंह जी का 'प्रतिभास' ब्लॉ्ग मुझे बहुत अच्छा लगा। इनके द्वारा बनाया गया भारत का वैज्ञानिक चिंतन, नवाचार दर्पण, अनागत विद्या, कालजयी,भारत का इतिहास, हिंदी विश्वकोश, प्रतिबिंब, अक्षरग्राम, रचनाकार,हिंदी विकिपिडिया ब्लॉग, भारत गौरव, भारत का वैज्ञानिक तथा नवाचार दर्पण ने हिंदी को मंनोरंजकता से ज्ञानरंजकता की ओर मोड़ दिया है। टेढ़ी दुनिया पर रवि रतलामी की तिर्यक, तकनीकी रेखाएँ खींचने वालीके 'छींटे और बौछारें' ब्लॉग ने तकनीकि को भाषा के साथ जोड़ने अदभूत प्रयास किया है। भारतीय संस्कृति ब्लॉग ने भारतीय संस्कृती की ध्वजा को विश्व मे फहराने का काम किया है। भारतीय संस्कृति के सुनहरे पहलुओं का विश्व के समक्ष प्रस्तुत करने का यह एक सफल प्रयास माना जा सकता हैं। हिंखोज, आइना हिंदी ब्लॉग, देबाशीष कृत 'नुक्ताचीनी' के जरीए राजनीति,सामाजिक स्थितियाँ, तकनीकी जानकारी जैसे विभिन्न मुद्दों को छूने वाले लेखों को पढ़ा जा सकता है। डॉ. जाकिर अली रजनीश जी ने अपनी वैज्ञानिक सोच को 'विज्ञानविश्व' के माध्यम से व्यक्त किया है, जो विज्ञान में रूचि रखने वाले पाठकों के लिए एक अनोखा तोहफा साबित हुआ है। इससे कठिन और क्लिष्ट समझे जाने वाले विषयों की सरल हिंदी में जानकारी उपलब्ध हो गई है।

इसके अलावा विज्ञानविश्व ब्लॉग ने विज्ञान की नविनतम जानकारी को सरल हिंदी में उपलब्ध कराने का महत्वपूर्ण कार्य किया है, जिससे विज्ञान के जटिलतम सिद्धांतों को समझने के सहायता हो रही है, साथ ही इससे एक वैज्ञानिक सोच विकसित हो रही है, जिसे भविष्य में होने वाली वैज्ञानिक क्रांति की पूर्वसूचना ही कहा जा सकता है। डॉ॰ श्याम गुप्त का ब्लॉग श्यामस्मृति देश के पौराणिक गाथाओं का भौगोलिक और ऐतिहासिक संदर्भ खोजने में मील का पत्थर साबित हुआ है। पुराणों में वर्णित घटनाओं के भौगोलिक संदर्भ खोजने में यह ब्लॉग गुरू का ही काम करता है। खासकर पुराणों की जिन घटनाओं को विज्ञानवादी

काल्पनिक मानते हैं, उन्हें ऐतिहासिकता और भौगोलिकता के नक्शें पर स्थापित करने का यह एक अनुपम सफल प्रयास कहा जा सकता है।

रवीन्द्र प्रभात ने अपनी 'हिन्दी ब्लॉगिंग का इतिहास' पुस्तक में बताया हैं कि आवश्यकता, उपयोगिता, राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय दुनिया से सैकण्डों में अपनी बात के जरिए जुड़ने वालों की बढ़ती संख्या को देखते हुये आज ब्लॉगिंग जैसे द्रतगामी संचार माध्यम को पॉचवा स्तम्भ माना जाने लगा है। कोई इसे वैकल्पिक मीडिया तो कोई न्यू मीडिया की संज्ञा से नवाजने लगा है । हालांकि यह ब्लॉग आलोचना की एक महत्वपूर्ण पुस्तक है, जिसमें हिन्दी ब्लॉगिंग के दस वर्षों के इतिहास को सहेजा गया हैं तथा कालक्रम को विशेषताओं के साथ उल्लिखित किया गया है। इस पुस्तक में ई-एजुकेशन,ई-पत्रकारिता, मल्टीमीडिया, इनस्क्रिप्ट आधारित मानक हिंदी टंकण, यूज़र जेनरेटेड कन्टेन्ट. शिक्षा-केंद्रित सोशल नेटवर्किंग, एजुकेशनल गेमिंग आदि की भी चर्चा हुई है। हिन्दी में ब्लॉग इतिहास लेखन से संबन्धित यह पहली पुस्तक है, जिसमें हिन्दी ब्लॉग लेखन में महिलाओं की स्थति की समीक्षा है तो हिन्दी भाषा और साहित्य में ब्लागिंग की स्थिति निर्धारण पर विचारोत्तेजक टीका भी। वर्षवार विस्तृत समीक्षा के अंतर्गत विभिन्न ब्लागों के विषय वस्तु और उनकी गुणवत्ता के आकलन को भी इस पुस्तक में सम्मिलित किया गया है।(स्रोत: विकिपीडिया) महात्मा गांधी अंतर्राष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय के हिंदी समय ब्लॉग के माध्यम से हिंदी की महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त होती है, इसमें हिंदी के उपन्यास, कहानी, कविता, व्यंग्य, नाटक, निबंध, आलोचना, बाल साहित्य, संस्मरण, यात्रा वृत्तांत, सिनेमा इन परंपरागत साहित्यिक विषयों के साथ-साथ अनुवाद, कोश विज्ञान, समग्र-संचयन, रचनाकारों, लेखकों, खोज,अनुसंधान संबंधी नवीनमत जानकारी प्राप्त होती है, इससे अध्ययन के साथ-साथ अनुसंधान को भी दिशा मिल रही है। वैदिक विज्ञान जिसे सामान्य व्यक्ति मात्र कल्पना की उडान मानता है, इन ब्लाग के माध्यम से इस विषय पर शोध करने वालों को एक नई उम्मीद की किरण दिखाई देने लगी है। दिव्य नर्मदा इस ब्लॉग ने हिंदी तथा अन्य भाषाओं के मध्य साहित्यिक-सांस्कृतिक-सामाजिक संपर्क हेतु रचना सेतु का निर्माण किया है। विधि संहिता ब्लॉग समसामायिक घटनाओं एवं विधिक ज्ञान पर आधारित आलेखों का प्रस्तुतीकरण करता है। गणितांजलि ब्लॉग की गणित की जानकारी देता है। अंकुर गुप्ता का हिंदी ब्लॉग, कंप्यूटर और तकनीक से जुड़ी नई प्रविष्ठियां प्रस्तुत करता है। विचार संचार मंच विज्ञान के संचार की दिशा में कार्य कर रहा है। प्रतीक जोशी जी का 'संगणक विज्ञान हिन्दी में जानकारी' यह ब्लॉक उन लोगो के लिए है जिसे हिन्दी में कम्प्युटर के बारे में जानने की जरूरत है। ब्लॉगर एक कम्प्युटर अभियांत्रीकी स्नातक पदवी के विद्यार्थी हैं और उन्होने इस ब्लॉग के माध्यम से कंप्यूटर के बारे में उत्कृष्ट जानकारी देने की पूरी कोशिश की है। डॉ विवेक मोहन अग्रवालजी का 'प्राणि विज्ञान हिंदी' यह ब्लॉग हिंदी भाषी छात्र एवं छात्राओं को उनकी मातृभाषा में प्राणि शास्त्र विषय के प्रमाणिक नोट्स

मुहैया कराने हेतु बनाया गया है। मुख्यत: बिलासपुर विश्वविद्यायलय के छात्र एवं छात्रा इससे लाभान्वित हो रहे हैं।

निश्चित ही राजभाषा हिंदी के प्रचार-प्रसार को हिंदी ब्लॉगर एक मील का पत्थर साबित हुआ है।



हिन्दी प्रचारिणी सभा की आवश्यकता



श्याम त्रिपाठी
प्रमुख संपादक हिन्दी चेतना

जब एक भारतीय अपना देश छोड़ता है और किसी भी नए देश में जाकर एक नए वातावरण में अपना जीवन पूर्ण रूप से प्रारम्भ करता है । अपने परिजनों से दूर, आपनी भाषा संस्कृति, परम्पराओं , अपने साहित्य, कला , भोजन और अन्य पदार्थों से वंचित हो जाता है । उसके मार्ग में अनेकों कठिनाइयाँ सामने आकर खड़ी हो जाती हैं।उस समय उसे अपना देश, उसे अपने मित्र और खासकर उनकी मीठी–मीठी बातें, हँसी-मजाक उसे खुश करती थीं ।यह सब कुछ उससे दूर हो जाती हैं और वह उस देश के ढाँचे में ढाल देता है । यह बात केवल एक भारतीय की ही नहीं बल्कि सभी उन लोगों की है, जो विदेश की धरती पर बसे हुए हैं । रोटी, कपड़ा और मकान के चक्कर में अपनी भाषा और संस्कृति भूलने लगते हैं । और धीरे–धीरे अपने देश से बिलकुल दूर होते चले जाते हैं और उनके बच्चे जो वहाँ जन्मते हैं वे भारतवंशी रंग-रूप से दिखते हैं । यदि कभी भारत जाते हैं, तो स्वयं को अभारतीय पाते हैं । बार– बार उसके मन में यही प्रश्न उठता है कि हम अपनी जड़े भूल गए । और सबसे बड़ी बात है जब इंसान की अपनी मातृभाषा खो जाती है तो उसका सर्वस्व खो जाता है। यही हर भारतीय प्रवासी की व्यथापूर्ण कथा है ।

इस दिशा में भारत सरकार विदेशों में अपने सरकारी दूतावासों के सहयोग से अपने देशवासियों को हिन्दी भाषा व संस्कृति की सुरक्षा के लिए अनेकों प्रकार की सुविधाएँ प्रदान करती रही है; लेकिन समय– समय पर इसमें कृपणता देखी गयी । नि:संदेह वर्तमान सरकार इस दिशा में काफी जागरूक है और वह भारतीयों को अपनी भाषा और संस्कृति की सुरक्षा के लिए अनेकों कदम उठा रही है । साथ ही प्रवासी लोग स्वयं ही जहाँ रहते हैं, वहाँ अपनी भाषा और संस्कृति को सुरक्षित रखने का पूरा– पूरा ध्यान रखते हैं । इसी कारण आज भारत से अधिक विदेशों में प्रवासी लोग हिन्दी के लिए तन-मन धन से समर्पित हैं । इसी लिए हमने 1998 में हिन्दी प्राचारिनी सभा की स्थापना की । इसमें केवल हिन्दी प्रेमी लोग इसके औपचारिक रूप से सदस्य थे और कभी - कभी विभिन्न स्थानों पर गोष्ठी या जो भी किसी ने लिखा था आपस में बैठकर सुन लेते थे । प्रो. आदेश जी का इसमें बहुत बड़ा योगदान था । आपको साहित्य , धर्म, संगीत और भाषा का काफी ज्ञान और अनुभव था । वह स्वयं एक

सुप्रसिद्ध कवि थे । वह हर समय कुछ न कुछ लिखते रहते थे । कुछ और लोग , जैसे डा. यादव जी, भारतेंदु श्रीवास्तव , भगवत शरण शैल शर्मा , दीप्ती कुमार और कुछ अन्य लोग जैसे डा. दुवेदी जिन्हें हिन्दी भाषा से बहुत लगाव था । **गोल्फ़** वि. वि. में प्रो. थे । उनके पास अनेकों लोग आते – जाते रहते थे और कभी -कभी वह भी भी हमारे साथ बैठ जाते थे । उनके छोटे भाई श्रीनाथ दुवेदी हिन्दी के अच्छे विद्वान् थे ; किन्तु वे केल्ग्री में रहते थे, आजकल वे सारे, बी.सी. में हैं । मैं उन्हीं दिनों एक शिक्षा बोर्ड की सेवा से रिटायर हुआ था और मेरे पास काफी सा समय था । मैंने सोचा कि क्यों न इस कार्य को एक रचनात्मक प्रोजेक्ट का रूप दूँ । मेरे मस्तिष्क में हिन्दी की एक पत्रिका या एक हिन्दी का सूचना पत्र निकाला जाए ,जिसमें हिन्दी की बातें हों और कुछ रचनाएँ भी प्रकाशित हों । हिन्दी का एक मंच बने, जिसके आधार पर सभी लोग एकजुट होकर काम करें । यह केवल नि:स्वार्थ सेवा थी । जिसको कुछ लोगों ने स्वीकार किया और कुछ लोगों ने इसका घोर विरोध किया ।

मुझे इसका कोई अनुभव न था; लेकिन चाह थी और जहाँ चाह है वहाँ राह है । उन्हीं दिनों सारे कवियों ने प्रो. आदेश के यहाँ एक कवि गोष्ठी में मिलना था । मैंने आदेश जी से इस बात पर उबकी सलाह ली कि क्यों न इसी दिन मैं इस पत्रिका का पहला अंक हस्त लिखित निकालूँ । उस समय पर जो रचनाएँ मेरे पास थीं , कुछ लोगों से अपनी रचनाएँ लिखने को निवेदन किया और इस प्रकार इन्हें एकत्र किया । मुझे कम्प्यूटर आदि का कोई ज्ञान नहीं था । इसलिए अपने हाथों से इनकी नकल की । इससे पहले मैं विश्व हिन्दू परिषद का अध्यक्ष रह चुका था और वहाँ भी मैंने एक सूचना पत्र 'हिन्दू चेतना' के नाम से प्रारम्भ किया था । वह हर माह निकलता था । उसमें मैं और मेरी पत्नी ही सारा काम करते थे , किन्तु संस्था के सदस्यों की रुचि बहुत कम होने के कारण मैंने इसे बंद कर दिया । अब मैंने इस पत्रिका नाम 'हिन्दी चेतना' रख लिया । यह संस्था हिंदी प्रचारिणी सभा के नाम से जानी जाने लगी । इस प्रकार मैंने हिन्दी चेतना का पहला अंक सभी को आश्चर्य के रूप में भेंट किया । कविजन अत्यंत प्रसन्न हुए और आदेश जी ने इसकी ह्रदय से प्रशंसा की और मुझे इस कार्य के लिए बधाई दी ।

अब पत्रिका तो निकल गई; किन्तु हमारे साथ इसके कार्यकारिणी तालिका का प्रश्न था । हर व्यक्ति इसका सम्पादक और अपना नाम इसमें चाहता था ;लेकिन इसकी ज़िम्मेदारी लेने के लिए तैयार न था । न ही एक पैसा खर्च करने को । बहुत से लोग मेरे विरोधी बन गए और हमारी इस पत्रिका का बहिष्कार करने लगे । अब चूँकि, यह सारा मेरा विचार था और मुझे ही इस कार्य को करना था ,तो बहुत से लोगों ने मेरे साथ काम करने के लिए मना कर दिया । कुछ लोग तो इसके इतने विरोध में आ गए कि वे इसे बंद कराने की धमकी देने लगे । ये लोग एकत्र होकर आदेश जी के पास गए कि वे इस पत्रिका को नहीं चलने देंगे । आदेश जी को इससे बहुत दुःख हुआ और उन्हों ने अंत में सबसे कह दिया कि यह पत्रिका तो चलेगी, इसे कोई रोक नहीं सकता । इसके बाद अब मेरे मार्ग में नई– नई समस्याएँ आने लगीं । किन्तु मेरा दृढ संकल्प और इन लोगों की चुनौती ! इसी ताकत के बल पर मैंने कार्य

को पूरा करने में कोई कसर नहीं छोड़ी । इनमें से कुछ लोग जो मेरे इस प्रयास से प्रसन्न थे, वे मेरे साथ चल पड़े ।

उस समय इस पत्रिका का रूप बहुत ही छोटा था, जैसे कि 'नवनीत' – या 'सरिता' की तरह । सारी पत्रिका हस्तलिखित होती थी और इसे मैं तीन महीनें तक इसे पूरा करके इसकी फोटो कापी करवा कर लिफ़ाफ़े में डालकर सदस्यों के पास डाक से भेज तेता था । उस समय इसकी केवल 50 प्रतियाँ छपती थीं । इतनी त्रुटियाँ हो जातीं कि मुझे अंक निकाने से पहले ही क्षमा याचना करनी पडती थी । इसकी सदस्यता बढ़ने लगी । वार्षिक शुल्क केवल 10 डालर था । कोई भी आजीवन सदस्य नहीं था । इस प्रकार दो वर्षों तक यह सिलसिला इस प्रकार चला । इसके बाद भगवान ने मुझे श्री रत्नाकर नराले जी से अचानक भेंट करवा दी । नराले जी मराठी, हिन्दी और संस्कृत भाषा को कम्प्यूटर पर लिख सकते थे । स्वयं इंजीनियर होने के नाते आपने इन भाषाओं के फॉण्ट बनाये थे । जिन्हें वह अच्छी तरह समझते थे और उनका प्रयोग भी करना जानते थे । उन्होंने मुझे इसका ज्ञान दिया और हिन्दी का एक सरस्वती फॉण्ट भेंट किया । मुझे कम्प्यूटर से डर लगता था | मेरे दोनों बेटे जो प्राइमरी स्कूल में ही थे, वे इसका प्रयोग अच्छी तरह कर सकते थे । मैंने नराले जी से निवेदन किया कि वे कम्प्यूटर खरीदनें में मेरी सहायता करें और इस फाँट को मेरे कम्प्यूटर में लोड कर दें । उन्होंने मेरी विनय सुन ली और मुझे एक कम्प्यूटर दिलवाया और साथ ही अपने फॉण्ट लगा दिए । मुझे प्रयोग भी समझा दिया और इसकी कुछ बातें मुझे नोट भी कर दीं। मैंने अभ्यास शुरू किया ,परेशानी आई लेकिन मैं बढ़ता गया और आज मैं पूर्ण रूप से आत्म निर्भर हूँ । बस ! अब क्या था जीवन में चमत्कार हो गया । अब सारी पत्रिका मैं कम्प्यूटर पर करने लगा । और धीरे – धीरे जिन लोगों ने इस कार्य की मुझे प्रेरणा दी थी, उन्हें इसके संपादक मंडल में स्थान दिया । इसका कलेवर बदल गया । नराले जी के बड़े भाई एक चित्रकार हैं और पेशे से एक आर्कीटेक्ट हैं, इनका टोरंटो के निमाण कर्ताओं में उनका एक नाम है । आप चित्र बनाते रहते हैं । उन्हों कुछ पुस्तकें भी इस कला पर लिखी हैं जो कुछ शिक्षा बोर्डों में प्रयोग की जाती हैं । आप एक मराठी पत्रिका 'एकता' का मुख पृष्ठ लगभग 22 वर्षों से बना रहे हैं । आपने सहर्ष इस पत्रिका के मुख पृष्ठ की ज़िम्मेदारी ले ली । इसके बाद चेतना का मुख पृष्ठ वह ही बनाते हैं । इससे चेतना के रंग रूप में एक नया निखार आया । इस परिवर्तन से हिन्दी प्रेमी और भी उत्साहित हो गए और अनेकों लोगों ने इसकी सदस्यता ले ली । अब यह पत्रिका टोरंटो के अतिरिक्त अन्य शहरों में पहुँचने लगी । कुछ दूसरे प्रान्तों को पता लगा , वे भी इसके सदस्य बनने के लिए उत्सुक हुए । इस प्रकार हमारा मनोबल बढता गया । आदेश जी का सहयोग और समर्थन सदा ही मिलता रहा । चाहे वे यहाँ पर हों या न हों । उनकी पत्नी श्रीमती निर्मला आदेश अभी तक इस पत्रिका के मंडल में हैं ।

किन्तु जैसे कि परिवर्तन प्रकृति का नियम है । मुझे मेरे परामर्श मंडल ने सलाह दी इसका रजिस्ट्रेशन होना चाहिए ; क्योकिं यह कार्य इस प्रकार बिना सरकारी स्वीकृति से आप

किसी से कोई अब समय आ गया जब मुझे अन्य संस्थाओं के सदस्यों ने सलाह दी कि हिन्दी प्रचारिणी सभा को नॉन प्रॉफिट संस्था के लिए रजिस्टर कराना चाहिए । इससे संस्था को सरकारी मान्यता प्राप्त होगी, इसे चैरिटेबल श्रेणी मिल जाएगी ।अधिक लोग इसे अनुदान देंगे और यह कार्य ब्लूम्वर्ग । हिन्दी प्रचारिणी सभा एक सम्मानित संस्था मानी जाएगी । हमने ब्लूम वर्ग नामक वकीलों की कम्पनी से सम्पर्क किया ,जो यहाँ की संस्थाओं को नॉन प्राफिट बनवाने में एक कुशल अटार्नी हैं । उनकी फ़ीस लगभग 4000 डालर थी । परिवार ने यह कार्य ब्लूम्वर्ग को सौंप दिया और उन्होंने सरलता पूर्वक 3-4 मांह में यह संस्था नान प्राफिट बनवा दी । 2009 अगस्त से हिन्दी प्रचारिणी सभा एक नान प्रॉफिट व चैरिटेबल संस्था है । इसके नियम बहुत कड़े हैं , हमें इसका पूरा हिसाब रखना पड़ता है और वर्ष के अंत में इसका टैक्स फार्म भर कर सरकार को भेजना होता है । यह कार्य मेरा अकाउण्टेण्ट करता है, जो कि इस कार्य के लिए प्रशिक्षित है । वही संस्था के आय-व्यय का हिसाब रखता है । हमें जो भी दान मिलता है हमें उसकी टैक्स की रसीद देनी पड़ती है । इस संस्था के पदाधिकारी हैं :

श्याम त्रिपाठी , अध्यक्ष,
डा. हरीश चन्द्र शर्मा – कोषाध्यक्ष,
राज महेश्वरी साहित्यिक कार्यक्रम ,
सुदेश कमरा सेक्रेटरी , महेश पटेल एकाउनटेंट

सारे लोग मिलकर एक टीम की तरह संस्था की भलाई के लिए नि:शुल्क इसकी सहायता करते है। नि:संदेह हिन्दी चेतना के प्रकाशन से हिन्दी प्रचारिणी सभा को विश्व ख्याति मिली है । अब संस्था पत्रिका के प्रकाशन के अतिरिक्त अनेकों अन्य कार्य करती है । जैसे कि स्थानीय पुस्तकालयों में हिन्दी के बुक क्लब खोलना , बिभिन्न शिक्षा केन्द्रों के साथ मिलकर हिन्दी की कक्षाएँ स्थापित करना, अस्पतालों और अन्य संस्थाओं के साथ साहित्यक व सांस्कृतिक कार्यक्रम आयोजित करना, अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर हास्य कवि सम्मेलन आयोजन करना, हिन्दी के लेखकों को प्रोत्साहित करना, विश्वविद्यालयों में उनके पाठ्यक्रम में सहयोग देना । मन्दिरों व धार्मिक क्षेत्रों में हिन्दी का कार्क्रम प्रारम्भ करवाना, छुट्टियों में बच्चों के लिए कैम्प आदि लगवाना, हिन्दी के शिक्षकों की तलाश करना, तथा सरकारी सूचनाओं को हिन्दी भाषा में अनूदित करना , राजनैतिक क्षेत्रों में राष्ट्रभाषा के प्रति सामान व्यवहार करना, तथा स्कूलों में हिंदी भाषा की शिक्षा को अन्य भाषाओं की तरह स्थान दिलवाना आदि अनेकों हिदी के प्रचार और प्रसार में लगी हुई है ।शुल्क नहीं ले सकते । आपको इसका पूरा हिसाब किताब रखना चाहिए, इसलिए मैंने हिन्दी चेतना को एक बिजनेस कम्पनी की तरह रजिस्टर करवा लिया और मैं इस पर टैक्स देता था और पत्रिका के बदले सदस्यों से सदस्यता शुल्क ले लेता था । इसका खर्च बढ़ने लगा और आय कम । कुछ लोगों मुझसे कहा कि कुछ विज्ञापन लगाओ और इसकी सहायता से तुमें कुछ भार कम हो जाएगा । मेरा अनेकों लोगों

से अच्छा सम्बन्ध रहा और स्वयं उनके पास गया और उनसे विज्ञापन मँगाना शुरू किया । भाग्यवश कुछ लोगों ने इस कार्य में मेरी सहायता की और इस प्रकार मेरा कुछ भार हल्का हो गया । लेकिन विज्ञापन पर भी पूरी तरह भरोसा नहीं किया जा सकता; क्योंकि मालिक कभी भी अपना दिमाग बदल सकता है । लेकिन परिश्रम और धैर्य से मुझे इस कार्य में बहुत सफलता प्राप्त हुई ।

जब चेतना प्रगति करने लगी और यह अच्छे –अच्छे लोगों ने इसे अपनाया । यहाँ तक कि भारत के दूतावासों व सरकारी पुस्तकालयों में मत्रिका स्थान पाने लगी । यहाँ के धार्मिक स्थलों, सामाजिक संस्थाओं ने इसकी सदस्यता ली । ओंटेरियो के अतिरिक्त अन्य प्रान्तों में यहाँ के विश्वविद्यालयों व पुस्तकालयों ने इसकी सदस्यता ली । दूरदर्शन ए टी एन तक इसका संदेश पहुँच गया । हमारे कार्यक्रमों की प्रशंसा होने लगी । हिन्दी चेतना कैनेडा के बाहर देशों में भी चर्चित चर्चा होने लगी तो और धीरे अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका बन गयी ।

इस पत्रिका में समय– समय पर अनेकों हिन्दी प्रेमियों ने इसकी सहायता की और इसके प्रकाशन में सुधार लाने का प्रयास किया । साहित्य–कुन्ज के सम्पादक और संस्थापक श्री सुमन घई जी एक अछे कार्यकर्ता हैं । उन्हें प्रकाशन और ग्राफिक का समुचित ज्ञान है , कुछ वर्षों तक आप भी मेरी सहायता करते रहे और हमें मार्ग दर्शन दिया । इसके बाद किसी कारणवश वे मेरा साथ छोड़कर चले गए । मैं किसी प्रकार से चेतना चलाता रहा और जैसे – तैसे इसे करता रहा । सारा काम मैं ही करता था । मेरे परिवार, विशेषकर मेरे छोटे बेटे विशाल ने मुझे इसमें बहुत सहायता की ।

उन्हीं दिनों मेरा परिचय भारत के कवि गजेन्द्र सोलंकी जी ने अमेरिका की लेखिका डा. सुधा ओम ढींगरा से हुआ। सोलंकी जी ने उन्हें इस पत्रिका के विषय में बताया । उन दिनों वे सुधा जीके निवास स्थान पर कुछ अन्य कवियों के साथ वि. हिन्दी समिति द्वारा आयोजित हास्य कवि सम्मेलन में भाग लेने आये थे | एक दिन अचानक गजेन्द्र जी का फोन आया कि आपसे सुधा दीदी कुछ बात करना चाहती है और मैंने सहर्ष बात की | उन्होंने बताया कि वे स्वयं एक हिन्दी की पत्रिका निकालने का मन बना रही हैं , क्यों न हम दोनों मिल जुलकर इस पत्रिका को चलाएँ । मैंने अपने उत्तर में कहा कि मुझे कुछ सोचने का समय चाहिए | फिर एक एक दिन दुबारा उनका फोन आया और मैंने उनके साथ काम करने की हामी भर दी | नि:संदेह इस पत्रिका का सारा उत्तरदायित्व केवल मेरे ऊपर था | पिछले 18 वर्षों से निकल रही थी | इस पर जो भी खर्च आता था ,उसका भार मेरे ऊपर ही था | कुछ मेरे प्रयास से मेरे परिचित लोग भी इस आर्थिक सहायता देते थे | कुछ लोग इसके सदस्य थे किन्तु अधिकतर लोग अमेरिका की पत्रिका विश्वा के भक्त थे और उसमें अपनी रचनाएं छपवाने के लिए काफी पैसे देते थे | क्योंकि विश्वा के सम्पादक ने उन्हें ७-८ पृष्ठ दे दिए थे और उन्हें अपना सम्पादकीय मंडल बनाने की भी अनुमति थी | कुछ लोगों ने उन्हें

सलाह दी कि आप लोग कैनेडा से निकलने वाली पत्रिका को क्यों नहीं अपनाते ? लेकिन वे इस सम्बन्ध से काफी संतुष्ट थे |

अब सुधा जी इस पत्रिका के साथ जुड़ गयीं और उन्हें सम्पादक की उपाधि दी गयी | उनके कुछ अन्य सहयोगी भी साथ आ गये और हम मिलकर काम करने लगे | हमने सात वर्ष तक यह साथ निभाया | किन्तु एक समय ऐसा आया जब मुझे लगा कि 'हिन्दी चेतना ' अपने उद्देश्यों के विपरीत जा रही है तो मैंने चेतना के हित में यही अच्छा समझा कि मैं इसे अकेले ही स्वतंत्र रूप से चलाऊँ | अब यह पत्रिका पूर्ण रूप से स्वतंत्र है | हम स्वतंत्र रूप से कुछ निस्वार्थ सदस्यों के साथ हिन्दी चेतना को एक उच्च स्तरीय साहित्यिक पत्रिका का रूप देनें में लगे हुए हैं |

लगभग१९१५- १९१६ साल से यह पत्रिका अपनी नई राह पर प्रगति से चल रही है | हम नियमित रूप से बिना किसी तनाव के पत्रिका के ३ अंक प्रकाशित कर चके हैं | भारत के जाने -पहचाने कथाकार डा. सुभाष नीरव के उदार सहयोग से "पांच देशों की पंजाबी कथाएँ" विशेषांक विश्व के कोने - कोने में चर्चा का विषय बना हुआ है | शीघ्र ही अक्टूबर 2016 में एक नया विशेषांक "बाल साहित्य " पर प्रकाशित होने जा रहा है जिसके अतिथि सम्पादक और एक अनुकरणीय साहित्यकार श्री पंकज चतुर्वेदी जी हैं | हमारा प्रयास है कि हिन्दी चेतना का हर अंक एक विशेष अंक हो और उसमें अच्छे साहित्य की सुगंध हो | सभी नये - पुराने साहित्यकारों के साथ समान व्यवहार हो | कोई पक्षपात न हो | हमारा प्रयास है कि हम यह पत्रिका लोकप्रिय हो और प्रवासी हिंदी साहित्यकारों के साहित्य को विश्व के साहित्य के साथ जोड़े |

आज हिन्दी चेतना में साथ विश्व के अनेकों अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्य लेखक और कहानीकार , कवि इसके पृष्ठों की शोभा बढा रहे है । हमारा एक नया नया सम्पादक मंडल और परामर्श समिति है, जिनके सहयोग और मार्ग दर्शन से हम प्रगति की ओर अग्रसर हैं ।



विभव बाजार में हिंदी



चन्द्रकान्त तिवारी

'**भाषा** रेत की तरह है, जिसे मुट्टी में संभालकर नहीं रखें तो फिसल जाएगी।' इस उद्बोधन के साथ 22 सितम्बर को जोहांसबर्ग में नौंवे विश्व हिंदी सम्मेलन की षुरूआत हुई। हिंदी को विश्व पटल के साथ अपने दश में भी सम्मान दिलाने का संकल्प इस सम्मेलन के प्रारंभ में ही उभरकर सामने आया। परन्तु हिंदी को संवैधानिक **दृष्टि** से राज**भाषा** बने हुए कई **वर्ष** हो चुके हैं, किन्तु अहम् पश्न यह है कि क्या व्यवहार में हिंदी राज**भाषा** के रूप में स्थापित हो चुकी हैं? सन् 1950 ई0 को जब भारत में गणतंत्र स्थापित हुआ था, उस समय यह घो**ष**णा की गई थी कि गणतंत्र की राज**भाषा** हिंदी होगी यह भी स्वीकार किया गया था कि अभी हिंदी एक अविकसित **भाषा** है अतएव इसे विकसित होने के लिए 15 व**र्ष** का समय निर्धारित किया गया है। सन् 1950 से अब तक व्यवहार में गणतंत्र की राज**भाषा** अंग्रेजी का ही वर्चस्व बना हुआ षिक्षा जगत में विशे**ष** रूप से उच्च षिक्षा के क्षेत्र में हिंदी का हाल आज भी बेहाल बना हुआ है। हिंदी को आज भी अपने स्थान के लिए संघ**र्ष** करना पड़ रहा है। हम इस बात को नकार नहीं सकते हैं कि हिंदी के प्रति सरकार एवं प्रषासन के लगातार भेदभाव एवं उपेक्षापूर्ण व्यवहार के कारण अब भी वह अपने अपेक्षित एवं संवैधानिक स्थान से वंचित हैं परम्परागत ढंग से हम हर व**र्ष** हिंदी दिवस अवश्य मनाते हैं और भारतीय गणराज्य की राज**भाषा** का उच्च दर्जा दिलाने का रोना भी रोते है। किन्तु इन सब के बावजूद हिंदी अपने ही देश में अपने वास्तविक अधिकार को प्राप्त नहीं कर पा रही है।

आज का युग भूण्डलीकरण का युग है। कोई भी देष अलग–थलग रहकर अपना विकास नहीं कर सकता। भारत भी 'ग्लोबलाइजेषन' की इस दौड़ में शामिल है। ऐसे समय में हिंदी को भी अपनी वृहत्तर भूमिका का निर्वाह करना होगा।

प्रयोग की **दृष्टि** से दुनिया की **भाषा**ओं में अंग्रेजी व चीनी **भाषा** के बाद हिंदी **भाषा** के बोलने वालों को तीसरा स्थान था। परन्तु आज वर्तमान दौर में हिंदी दुनिया की दूसरी सबसे अधिक लोगों (80 करोड़ लगभग) द्वारा बोली जाती है। हिंदी **भाषा** को बोलने व समझने वाले भारत में ही नहीं, बल्कि बाहर के अनेक देशों में एक बड़ी संख्या में विद्यमान है। हिंदी **भाषा** के लिए यह बड़े गर्व की बात है कि भारत के बाहर अन्य देशों में 176 से अधिक विश्वद्यालयों तथा शिक्षण संस्थानों में हिंदी **भाषा** का अध्ययन एवं अध्यापन हो रहा है। दुर्भाग्य देखिए कि अपने ही देश में हिंदी **भाषा** का प्रयोग करते हुए संकोच का

अनुभव किया जाता है। आज भी अंग्रेजी **भाषा** का वर्चस्व दिनों दिन बढ़ता जा रहा है। स्थिति यह है कि प्रशासनिक क्षेत्र हो या अध्ययन अध्यापन का क्षेत्र, न्यायायिक मामले हो या जनमानस हो अंग्रेजी के बिना काम चलता ही नहीं। यहां तक कि वाणिज्य, व्यवसाय, चिकित्सा, इंजीनियरिंग एवं पारस्परिक आदान–प्रदान के क्षेत्र में भी सर्वत्र अंग्रेजी की ही पूजा होती है। केवल 2 प्रतिशत अंग्रेजी परस्त लोग देष की 98 प्रतिषत जनता पर अपना **भाषा**यी आधिपत्य जमाए हुए हैं। यदि 98 प्रतिषत लोगों पर अपना राज करना है, तो ऐसी **भाषा** में राज किया जाए, जो वह पढ़, लिख व समझ सके। अंग्रेजी षासन का एक सषक्त हथियार है, जिसे बरकरार रखकर ही ये चन्द लोग राजसत्ता का सुख भोग रहे हैं।

विडम्बना देखिए कि हिंदी को राज**भाषा** घो**षि**त करने के बावजूद राज**भाषा** अधिनियम में इस बात का उल्लेख किया गया है कि उच्चतम न्यायालय की **भाषा** अंग्रेजी ही रहेगी और तो और हमारा संविधान भी अंग्रेजी में ही बनाया गया। अंग्रेजी **भाषा** की तुलना में हिंदी **भाषा** को पिछड़े वर्ग की **भाषा** माना जाता है, यही कारण है कि सम्पूर्ण हिंदी **भाषा**यी क्षेत्र आत्महीनता की ग्रंथि से ग्रसित हो गया हैं यहीं के लोगों के लिए आधुनिक एवं विकसित होने का अर्थ अंग्रेजी पढ़ना व बोलना बन चुका है।

सच कहे तो आज के प्रतिस्पर्धा भरे युग में हम अपनी जड़ों से ही विमुख हो रहे है। अंग्रेजी **भाषा** का बढ़ता वर्चस्व सदा से ही हिंदी **भाषा** की इच्छाओं को दबाये हुए हैं जब–जब हिंदी ने विस्तृत फलक में फैलने का प्रयास किया। तब–तब अंग्रेजी ने उसकी परिधि को जाने–अनजाने में ही सही सूक्ष्म करने का प्रयास किया।

अंग्रेजी **भाषा** का बढ़ता प्रचलन इस कदर हावी है कि आज हिंदी पब्लिक स्कूलों में मात्र दसवीं कक्षा तक ही सिमट कर रह गई है, और 12 वीं में यह वैकल्पिक वि**षय** बनकर सरस्वती नदी की भांति विलुप्त होने को तत्पर है।

जो हिंदी आज हम पढ़ रहे है यह मीलों का सफर, कई व**र्षों** से तय करके आज हमारे सामने है। वैदिक संस्कृत से होते हुए खड़ी बोली तक आते–आते हिंदी ने आज के वैश्वीकरण के दौर में जब कदम रखा तो इसका स्वरूप एवं इसकी संवेदना अन्य भा**षा**ओं द्वारा झंकृत हो उठी। आज अंग्रेजी मिश्रित हिंदी हिंगलीस कही जाने लगी है। जिससे शुद्ध हिंदी के मानकीकरण पर प्रश्न चिन्ह तो लगता ही है साथ ही वर्तनी की समस्याएं जस की तस बनी रहती हैं।

हिंदी **भाषा** के विकास में षिक्षा विभाग एवं विशे**ष** रूप से उच्च शिक्षा के संस्थानों के द्वारा भी इसको कोई प्राथमिकता नहीं प्रदान की गई, अभी भी उच्च षिक्षा का माध्यम अंग्रेजी ही बना हुआ है। विष्वविद्यालय अनुदान आयोग के सौजन्य से अखिल भारतीय स्तर पर आयोजित सम्मेलनों में अधिकांष शोध–पत्र और भा**ष**ण अंग्रेजी **भाषा** में ही प्रस्तुत किए जाते हैं। शोध–पत्रिकाओं का प्रकाशन भी अधिकांषतः आंग्ल **भाषा** में ही किया जाता है सामयिक लेख–पत्र–पत्रिकाओं में जो प्रकाषित होते हैं, उनका पारिश्रमिक भी अंग्रेजी रचना की तुलना में बहुत कम है, जबकि इस बात से नकारा नहीं जा सकता कि जमीनी स्तर पर भारतीय बाजार में अब ही हिंदी का वर्चस्व कायम हैं। 14 सितम्बर को प्रतिव**र्ष** 'हिंदी दिवस' मनाया जाता है और भा**ष**णों सम्मेलनों व स्वर्ण जयंती समारोह के बीतने के बाद भी

उसी अंग्रेजी की व्यवहारिकता में आज भी खड़े देखा जा सकता है। प्रथम विश्व हिंदी सम्मेलन में हिंदी की **अंतर्राष्ट्रीय** स्थिति, भारत व हिंदी आधुनिक यंग एवं हिंदी की आवश्यकता व उपलब्धियाँ, विश्व मानव की हिंदी के प्रति चेतना शषाश्वत मूल्यों की खोज, जनसंचार, जनसंचार में संचार साधनों की भूमिका, प्रषासन विधि और विधायी कार्यों की **भाषा**, ज्ञान व विज्ञान का माध्यम, **भाषा** –शिक्षण और सहायक सामग्री विषय पर व्यापक परिचर्चा भी की गई। इसके बाद कई विश्व हिंदी सम्मेलन हो चुके किन्तु परिणाम आज भी वही 'ढांक के तीन पात'।

स्वतंत्रता के पष्चात् हिंदी **भाषा** के विकास पर गम्भीरता से विचार किया गया, क्योंकि महात्मा गांधी द्वारा स्वाधीनता आंदोलन में **भाषा** के प्रश्न को विशेष स्थान दिया गया था। ताराचन्द्र नामक समिति (1948) ने सर्वप्रथम अंग्रेजी के स्थान पर भारतीय **भाषा** 'हिंदी' की वकालत की और विश्वविद्यालय स्तर पर इसकी उपयोगिता को दर्षाया। फिर क्रमषः विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग (1948–1949), **राष्ट्रीय** एकता परिषद (1961–1962) शिक्षा आयोग (1964–1966) एवं **राष्ट्रीय** शिक्षा नीति (1968–1999) तक हिंदी भाषा की प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से वकालत होती रही।

आज वैष्वीकरण के युग में बहुसंस्कृतिवाद एवं बहु**भाषा**वाद अपने पैर पसार चुका है। संस्कृति और **भाषा**एं अब एक क्षेत्र तक ही सीमित नहीं रहना चाहती, क्योंकि आज का युग भूमण्डलीकरण का युग है। औद्योगिकी, प्रौद्योगिकी, जन संचार, सूचनाएं एक बड़े पैमाने पर इंटरनेट में उपलब्ध है।

हिंदी **भाषा** को अब इंटरनेट के माध्यम से भी उलपब्ध कराने के प्रयास जारी है। हिंदी विश्व कोष (इनसाइक्लोपीडिया) जिसको इंटरनेट पर देखा जा सकता है।

कई कवियों, लेखकों की कालजयी कृतियों के अंशों एवं मुख**पृष्ठों** तथा विस्तृत जानकारी अब इंटरनेट पर उपलब्ध है। अब तो हिंदी का कम्प्यूटर साफ्टवेयर भी तैयार हो चुका है। निःसंदेह यह एक बौद्धिक हथियार है इस हथियार से हिंदी **भाषा** की सुरक्षा को सुदृढ़ता अवश्य मिलेगी; साथ ही सूचनातंत्र की इस व्यापकता से दुनिया भर में फैली हिंदी **भाषा भाषी** तथा शोधकर्ता भारतीय धर्म, दर्शन, इतिहास, साहित्य व कला के बारे में प्रमाणिक जानकारी तत्काल हासिल कर सकने में सक्षम हो जाएगे।

अन्ततः हिंदी **भाषा** को एक सुदृढ़ आधार देने के लिए हमें नित–नित उसे **परिष्कृत** करते रहना चाहिए। जैसे साहित्यिक एवं सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन करके, वाद–विवाद प्रतियोगिता, निबंध लेखन प्रतियोगिता, भाषण, कवि सम्मेलन, **संगोष्ठी**, लोकगीत, लोकनृत्य, नाटक, महोत्सव का आयोजन करके, धार्मिक उत्सवों को सामूहिक रूप में मनाकर जहां अपनी **भाषा** को हम **परिष्कृत** तो करेंगे ही वहीं दूसरी ओर संस्कृति का आदान–प्रदान भी होगा। इन विधियों से हम एक दूसरे के निकट आकर उनकी **भाषा** के मर्म को आत्मसात करेंगे, और इस बात पर भी गौर करेंगे की हर **भाषा** का उतना ही महत्व है जितना प्रत्येक इंसान का, परन्तु जहां अपने देश का सवाल है वहां अगर उन्नति करनी है तो अपनी मातृ**भाषा** में ही करनी चाहिए। जो अपने को हिन्दुस्तानी होने पर गर्व

महसूस करते है, जो बहती नदी के पानी को 'गंगा जल कहते हैं वह मोहम्मद इकबाल साहब की ये पंक्ति कैसे भूल सकते हैं–

हिंदी हैं हम वतन हैं हिंन्दोस्तां



क़ैस जौनपुरी की कवितायें

साईकिल वाली लड़की



क़ैस जौनपुरी

ये लड़की
जो हाथ में साईकिल पकड़े
मेरी आँखों के सामने खड़ी है
ये लड़की
जो इतनी ख़ूबसूरत है
कि ख़ुदा भी पछताया होगा
इसे ज़मीं पे भेजके
कि रख लिया होता इसे जन्नतुल-फ़िरदौस में ही
ये लड़की जिसकी आँखों में ज़िन्दगी की ताज़ा झलक है
ये लड़की जिसकी न जाने क्यूँ झुकती नहीं पलक है
ये लड़की जो एकटक मुझे देखे जा रही है
ये लड़की जो पता नहीं क्यूँ मुस्कुरा रही है
मैं सोचता हूँ हिम्मत करूँ
और कह दूँ
लेकिन क्या?
किस अल्फ़ाज़ से अपनी बात शुरू करूँ
क्या इसे ख़ूबसूरत कहूँ
नहीं
ख़ूबसूरत कहना ठीक न होगा
ये तो ख़ूबसूरत से कहीं बढ़के है
क्या है? मुझे नहीं पता
लेकिन कुछ है जिससे नज़र हटाने का मन नहीं करता
लेकिन ऐसे कब तक देखता रहूँगा?
कुछ तो कहना होगा
कुछ तो सुनना होगा
कि उसके मन में क्या है
अपने मन का तो मुझे पता है
क्या पता उसके मन में कुछ और हो
लेकिन क्या पता उसका मन ख़ाली हो
खुले आसमान की तरह
और वहाँ जगह ही जगह हो मेरे लिए
जहाँ मैं हरी घास पे लेट जाऊँ
और ये लड़की
मेरे सीने पे अपनी साईकिल चलाते हुए आए
और इसकी साईकिल का पहिया मेरी गर्दन के पास रुके
और फिर मैं पहिये की तीलियों के बीच से
इस नाज़ुक बला को निहारूँ
और पूछूँ
जान लेने का इरादा है क्या?
और फिर ये हँस दे
एक ऐसी हँसी जो आसमान तक गूँज जाए
जिसे फ़रिश्ते भी सुनके जलभुन जाएँ
और ख़ुदा से करें शिकायत
कि ये ठीक नहीं हुआ
जिसे हम जन्नत में देख सकते थे
वो ज़मीन पे साईकिल चला रही है
किसी और का दिल बहला रही है
मैं अपनी क़िस्मत पे इतराता हूँ
मैं सोचता हूँ काश ऐसा हो जाए
ये साईकिल वाली लड़की
अपने फेसबुक प्रोफाइल पिक्चर से बाहर आए
और मुझसे कहे
इतना ही मन हो रहा है
तो फ्रेण्ड रिक्वेस्ट क्यूँ नहीं भेज देते?

सपना मांगलिक की कवितायें



सपना मांगलिक

1

कभी ओस तो कभी बन बादल
उड़ता फिरे बिन पंख ही पागल
महल बनाये कैसे - कैसे
गिरें जो पल में पत्ते जैसे
दहकाये कभी शक की ज्वाला
कभी पिलाता प्रेम की हाला
कभी बंधन ,कभी लगे ये चन्दन
मन ये मेरा ,पागल सा मन।

2

समेट रहा है हर कोई
दे रहा है तड़ातड़ हाथों की थाप
उसके नाजुक बदन पर
कोई कुल्लड़ बनाना चाहता है
तो कोई गमला या सुराही
कोई खिलौने वाला सिपाही
मगर उसे तो भाता है
रिमझिम बूंदों संग बहना
खुली हवा में सांस लेना
और उसी के संग उड़ना
उड़ते उड़ते लपकना कुछ बीज
उन्हीं से सीखना जीने की तमीज
मगर उसे बनाया जा रहा है
आ रही है अड़चन
क्योंकि उसका होते हुए भी
नहीं हो पा रहा है उसका
कच्ची माटी सा बचपन।

एक बनावटी सामान
जो बिकेगा एक दिन
किसी ऊंची सी दुकान
दिलाएगा पैसा ,रुतवा,सम्मान
वो सहम रहा है ,टूट रहा है
उसके नैसर्गिक विकास में

3

पुरुष जात की जुर्रत
कहते अपवित्र कुदरत
शनि की शिला हो
या मस्जिद की जाली
पुरुषत्व को मान्यता
स्त्रीत्व को देते गाली ?
सोचो जो रज से होती न हव्वा
आदम भला कैसे तुम
बन पाते अब्बा?

भूखा मनुष्य

(नवारुण भट्टाचार्य की बंगला कविता का अनुवाद **अनुवाद -मीता दास**)



[नवारुण भट्टाचार्य बांग्ला के सुप्रसिद्ध कवियों में गिने जाते हैं। जनपक्षधरता नवारुण दा की कविताओं के मूल में है। सत्ता और व्यवस्था की क्रुरता के खिलाफ उनकी कविताएं हमेशा प्रतिरोध का स्वर बनकर उभरी। शोषण मुक्त समाज के लिए क्रांति के सपने उनकी आँखों में सदैव मौजूद रहे। सामाजिक-राजनीतिक विसंगतियों को उनकी कविताएं उजागर करती रही। हाल ही में हिन्दी में अनुदित उनकी कविताओं का संग्रह ज्योतिपर्व प्रकाशन से प्रकाशित हुआ है। कविताओं का अनुवाद किया है हिन्दी और बांग्ला की जानी-मानी कवयित्री एवं अनुवादक मीता दास ने। साहित्यकार पंकज चतुर्वेदी अनुवाद के विषय में कहते हैं - "अनुवाद एक नयी दुनिया में रचना का पुनर्जन्म है। " मीता दास जी के बेहतरीन अनुवाद के कारण इस संग्रह की सारी कविताएं पढ़ने पर मूल कविता सा अहसास देती है, जैसे इन कविताओं का पुनर्जन्म हुआ हो।]

भूखा क्षुधार्थ मनुष्य
सब कुछ खा जाता है
मुंह में डाल लेता है बालू, धूप, पत्थर,
मुट्ठी भर-भर लोहा, मेघ, आग
लीलता है वृष्टि, चाट लेता है अनावृष्टि
बीमारी, लॉरी का पहिया, दिया सलाई, फ़ॉली
डॉल
सब खा जाता है
उसे इतनी भूख है कि
वह खुद भी नहीं जान पाता
भूख से पेट पीठ एक करता यह मनुष्य,
इसका एक ही सभ्य गुण है
वह सुखी और स्वस्थ मनुष्य को नहीं खाता
यद्यपि वे लोग दोनों पहर यह अफवाह
फैलाते रहते हैं
भूखा, क्षुधार्थ मनुष्य आखिरकार नरभक्षी है
जाने कब वह लील लेगा
देश, देश के महान लोग, वोट, दलाल
खरी-खरी विप्लव की प्रतिश्रुति
फाइव स्टार होटल, वीडियो, रोटरी क्लब
जेल, टेलिफोन, कैसेट, टी.वी.
वह सब लील लेगा किसी भी वक्त
उससे भयभीत न होने पर भी
उसकी भूख से सब भयभीत हैं
मृत्यु उसके लिए भोजन छोड़
और कुछ नहीं
इसलिए श्मशान भी उसके नजदीक नहीं आता
वह दुःख लीलता है, कष्ट लीलता है, रोदन
लीलता है
कभी-कभी तो वह भात रोटी भी खाता है अगर
मिल जाए
बहुत ही मार खाता है
तब भी वह नहीं मरता
भूखा मनुष्य
हर वक्त, हर अवस्था में जिन्दा रहता है।

००००० शब्द बहरे हो गए हैं ०००००

बहरे हुए शब्द यहीं रहते हैं
बहरे हुए शब्द
कोई भी बात नहीं सुन पाते
और उन्हें भी कोई नहीं सुन पाता
बहरे हुए शब्दों को
कोई किराये पर घर नहीं दे रहे थे
मुंह के ऊपर ही दरवाजा भेड़ देते थे
एक ही संदेह था हर किसीको
ये आवारा हैं लौटेंगे या नहीं
जड़ मति हैं या लावारिस हैं
ये जो शब्द बहरे हो चुके हैं
आख़िरकार मैं बोल ही उठा
आओ ,मेरे ह्रदय के कंदराओं में रहो
किराया नहीं लगेगा
सिगरेट के खर्चे भी बच जायेंगे |

०००० कविता के विषय में वक़्तव्य ००००

कविता लिखने पर अगर पैसा न भी मिले फिर भी
कविता के संग पैसों या रुपये का मेल है ही
पैसा अचल {खोटा }हो जाता है
कविता भी अचल {खोटी }हो जाती है ,हमेशा ही
पैसे दिखने में एक ही तरह के होते हैं
अनेक कवितायेँ भी अलग से नहीं पहचाने जाते
पर यह कवियों पर लागू नहीं होता ,
पैसों की तरह कवितायेँ भी जमा की जा सकती हैं
पर सब संचय में विश्वास नहीं रखते
पर एक आखरी या विशेष बात यह है की
पांच सौ या हजार के जाली नोट की तरह
नामी - गिरामी जाली कवितायेँ भी हैं
पर जहाँ तक मालूम है की इसमें कोई विदेशी
हाथ नहीं है |

००००० कविता के बारे में ०००००

डरपोक आदमी के करीब से
जो कविता सरक जाती है
वह कविता है सबसे डरपोक कविता

जिसके पैरों के तले से
मिटटी सरक जाती है
और उसे जो कविता भरोसा नहीं दिला पाती
वह कभी भी जमीन नहीं ढूंढ पायेगा
ठण्ड से ठिठुरते गठरी बने
हतचकित

बूढ़े व कुत्तों के सामने
जो कविता ज्वाला बन नहीं जल पाती
उसे जला देना ही ठीक है

साफ़ - साफ़ बता दिया है मैंने
कविता के बारे में
यही है मेरी कविता |

०००० किताब ००००

टेबल पर किताब ही किताब
हर किसी में ही ढेर सारी बातें
पर मुझमें ज्ञान ही हैं और न ही बोध
तभी मैं और भी अन्य कई बातें सोच रहा हूँ
हँस भी रहा हूँ और चिड़चिड़ भी कर रहा हूँ
कि किताबों में पड़े कीड़े
और उसके बाद वे मेरे भीतर प्रवेश करें |

तुम्हारी दी हुई जाग़ीर
('चिंतलनार से चिंतलनार तक' से)

* लक्ष्मीनारयण पयोधि

न जिज्ञासा, न असमंजस,
आशंका और संदेह से परे तुम्हारा मन।
प्रश्न नहीं, हाथों में देखा हमेशा हल,
धरती के पृष्ठ पर लिखते आने वाला कल,
या कि फ़सल।

पास अक्षर नहीं, फ़क़त
भुजाओं में श्रम
और आँखों में खिले हुए स्वप्न ।
अपमानित अतीत
और पसीने की गंध से महमहाता
एक अदद आत्मविश्वास ।

तुमने ख़रीदी कलमऔर थमा दी मेरे हाथ,
उसकी नोक से झरता रहा संकल्प का उजाला।

तुम्हारी दी हुई जाग़ीर से
रचा मैंने शब्दों का साम्राज्य।

तुम्हारे लिखे फ़सलों के गीत
बसाकर अपने कंठ में
उतारता रहा मैं काग़ज़ पर पृष्ठ-दर-पृष्ठ
आने वाली पीढ़ियों के लिए ।

ओ पिता ! देखो तो...
तुम्हारे सौंपे हुए उजाले के विस्तार का
अनुगमन कर रहा सूर्य ।

कविता

होता जो समय

कृष्णा वर्मा

होता जो समय रेज़गारी सा
डालती रहती गुल्लक में
बचे छुट्टे पैसों की तरह
कर लेती ख़र्च
अपनी खुशियों के लिए
मिटा लेती तृषा
अपनों को मिलने की
भिगो आती पलकें
दुलार की फुहारों से
सँवार आती माँ-बाप के
दस अधूरे काम
बँटा देती अम्मा का हाथ
घर की साफ-सफाई में
सँजो देती अनचाहा सामान
बदल आती
माँ की उदासी खुशियों में
हल्का कर आती
उसकी छाती को सालता दुख
जुड़ा देती पिता की ऐनक
की टूटी कमानी
गंठवा लाती उनकी
जूतियों के तले
कुछ और समय चलने को
सिमटवा आती उनके
अधूरे हिसाब-किताब
बटोर लाती उनके
हौसले और अनुभवों की
अनमोल पूँजी
ले जाती छोटी बहन को
बाज़ार घूमाने
दिला लाती उसकी मन पसंद
चूड़ियाँ रिब्बन लहँगा-चोली
खिला लाती कुल्फी चाट-पकौड़ी
झुला लाती घुमनिया झूले पे
लडिया कर अम्मा से
फिर दोहरा आती अपना बचपन
भर लाती माँ के चौके की
सुगंध नथूनों में
जी आती सुख के कुछ क्षण
माँ की स्नेह छाया में
पुतवा आती खुशियाँ
मन की दीवारों पर
खिल उठता
मेरी वीरानियों में भी
मोहक वसंत
बचा पाती जो थोड़ा सा समय
सरपट भागती जिन्दगी से।

“जुआरी एक बना”

अनिल पुरोहित

भेज दिया इस बाजार में।
तेरे ही खेल, तेरे ही नियम,
तेरे ही परिणाम, तेरे ही बाज़ार।
मैं बस मदमस्त।

सारे माहौल में- बिखेर दिया
नशीला धुँआ ।
कहीं खेल हो रहा
कहीं नाच, गाने
तो कहीं तमाशे।
कहीं कहकहे, तो कहीं अट्टहास।
कोई गुमसुम , तो कोई धुत।

सब पर तेरी तीखी नज़र।
नशा सा छा रहा, जहाँ में सारे-
ना कोई सोच, ना कोई उम्मीद।
लत एक लगा दी
बस हारने की।
मैं हारता जाता,
तू खेले जाता।

अजीब सा रचा-
खेला तूने।
कहाँ से सीखा, कहाँ से लाया
खेल इतने।
कहीं तू भी तो
कभी ना कहीं
रहा- एक जुआरी तो नहीं।

“गीत-भाव”

~~सविता अग्रवाल "सवि", कैनेडा ~~

गीत मेरे भावों के घर हैं
तेरी ही पूजा के स्वर हैं
मंत्र अनेकों इनमें समहित
दृगों से अर्ध्य देते निर्झर
पीड़ा की अनुभूति इनमें
छिपा प्यार इनमें अनश्वर
धन की किसी तुला पर तुलते
ये मेरी अनमोल धरोहर
गीत मेरे भीगे और तर हैं
गीत मेरे भावों के घर हैं
शब्दों को शिल्पी से गढ़ते
भाव हिया के स्वतः ही पढ़ते
इनमें वरदानों के वर हैं
इनमें वंदन और अर्चन हैं
गीत मेरे निर्मल दर्पण हैं
गीत मेरे विहंसता मन हैं
रिश्तों के ये बंधन हैं
इनमें हास और रुदन है
इनमे प्रभु का सुमिरन है
जीवन जीने का भी पन है
गीतों में ना कोई भ्रम है
सुरभी का अद्‌भुत उद्‌गम है
गीत मेरे भावों के घर हैं
तेरी ही पूजा के स्वर हैं ॥

क्यों छोड़ा देश

राज महेश्वरी (कनाडा)

कहने को कह सकता हूं
अपने को समझा सकता हूं
सुखमय जीवन के लिए
अपना देश छोड़ आया हूं
मुझसे पूंछते हैं लोग
जब मैं घूमने जाता हूं
क्यों अपना देश छोड़ा
क्यों न वापस आ जाता हूं
जो कारण हैं इसके
बताना बड़ा कठिन है
बस इतना भर मालूम है
कि समय के प्रारम्भ से
गतिमान मनुष्य है।

यदि मनुष्य कहीं न जाता
नए स्थान कहीं न बसते
मानव की प्रगति के
इतिहास रिक्त ही पड़े रहते
देश को छोड़ने की पीड़ा
हृदय में सदैव रहती है
किन्तु नया घर बसाने में
खुशी भी तो होती है।

नए स्थान पर आदमी
प्रेरणा से भरा होता है
नव सृजन करने में
जी-जान लगा देता है
और मानव की कहानी को
नयी दिशा में आगे बढ़ाता है
कोई रोक सकता नहीं
प्रकृति का तकाज़ा है
हवा के साथ तिनका सा
मनुष्य उड़ा जाता है।

क्यों छोड़ा देश
मुझे कुछ पता नहीं
केवल इतना जानता हूं
आदमी कभी रुका नहीं।

बिन लिखा इतिहास

शैल शर्मा

जो किताबों में लिखा न,
और किसी से भी सूना न,
समय का वः भी फ्लू,
अनकहा इतिहास भी है ,
बिन लिखा इतिहास भी है|
वह समय का रूप भी था,
सत्य था साकार भी था,
पर किसी ने न लिखा था ,
और न कोइ लिखेगा,
अनलिखा इतिहास भी है|
लोग वे हैं जो समय से जूझते हैं ,
हर पहेली बूझते हैं,
नाम है उनका भी कोइ,
पर नं कोई जानता है ,
काम कितने कर गये वो,
न कोई पहचानता है ,
अनेकों गलियों -कूंचों में,
फुटपाथों पर, झोपड़ों में,
सडक पर बैठे मिलेंगे ,यूं तुम्हें ,सुकरात, आइन्स्टाइन जैसे,
जो अभावों की वजह से,
काम कोइ क्र सके न,
और जो किया जो काम उनने,
आप ,हमने न उसे देखा , न पहचाना,
न ये जाना ,
कौन इनको क्र गया है,
हर शहर में बहुत से किस्से मिलेंगे ,
अनकही कुछ बात भी है,
बिन लिखा इतिहास भी है |
कुछ समय से भी भिड़े थे,
कुछ अभावों से लदे थे ,
उम्र भर उनने लिखा न जाने कितना ?
न कहीं छपा न और बिका न,
न कहीं देखा किसी ने ,
न मिली शोहरत उन्हें कुछ ,
वह कहानी , लेख कविताएँ
सफों में हो गयीं यूं बंद,
या दीमक खा गयी जिनको,
बन सके न वे शरद , प्रेमचन्द,
या महादेवी , निराला , पन्त ,
कोइ भी उनको मिला न नाम ,
ऐसे लेखक हो गये हैं,
और बिन जाने किसी के ,
गाँव में , या शहर में ,
अंधेरों में कहीं वे खो गये हैं,
बिन पढ़ा इतिहास भी है |

कोयलों में खींचते आकार,
मिट्टी में बने वे चित्र सुन्दर,
मिल सका न रंग , ब्रश ,कैनवास उनको,
ज़िन्दगी में देख पाए जो केवल अभावों के रंग,
और उम्र के कैनवास पर,
खीचा किए जो गरीबी के चित्र
भूख के ब्रश से,
वे अनजाने माइकल एंजिलो , पिकासो भी हैं |

चित्र जिनके न बिके हैं ,
न प्रदर्शन हो सका है,
जो समय के पूर्व ही बदरंग जैसे हो गये हैं ,
बिन खींचे वे चित्र भी हैं ,
कुछ अधूरे बिन बने वे चित्र भी हैं ,
तुम सुधारोगे कहां तक और उभारोगे कहां तक ?
तुम मिटाओगे कहां तक इन अभावों को ?
कुछ नहीं होगा , मुझे मालूम ,
बहस के केवल विषय हैं ,
और यही है नियति इसकी,
बिन लिखा इतिहास जो जो है ,
बिन पढ़ा इतिहास जो है,
बिन पढ़ा साहित्य जो है,
यह अधूरा चित्र जो है |

कैनेडा के आदि निवासी १९७९



श्याम त्रिपाठी -प्रमुख सम्पादक हिन्दी चेतना

है , जिनका यह देश
आज हैं वे, रोटी कपड़े को मौताज़
बाहर वाले मौज उड़ाते,
और करते उन पर राज |

देश - देश के लोग बसे हैं ,
कहते इसको , अपना देश
जो हैं इसके ,आदि निवासी
वे पड़े हुए हैं, सडकों पर बेहोश |

कोई इनको कहे शराबी
कोई कहता , इन्हें जुआरी ।
सब के पास है,रहने को बड़े मकान ,
लेकिन इनका जीवन जैसे हो शमशान |

यदि इनका इतिहास पढो
हुए हैं, इन पर कितने अत्याचार
इनकी ,माँ बहनों की अस्मत लूटी
इनके शिशुओं का बलात्कार |

इन फिरंगी दैत्यों ने मिटा दी इनकी नसलें -
धर्म और इतिहास ,
सभी कर रहे हैं , इनकी सभ्यता ,भाषा और
संस्कृति का परिहास,
अपने ही देश में भटक रहे हैं ये लाचार,
हर दिन होते इन पर अत्याचार |

सभी प्रवासी हरे- भरे हैं, और हैं, मालामाल,
केवल आदि - वासियों का है खस्ता हाल।
दुनियांवालो यह देश जहाँ हम रहते हैं ,
जिसे बड़े गर्व से हम कैनेडा कहते हैं |

दो शातब्दी पहले यूरुप के लोग यहाँ आये,
सिगरेट और शरावें भर -भर के लाये ,
इन्हें इन चीज़ों का स्वाद कराया ,
और इनको,इनका दास बनाया |

सब कुछ इनका लूट - खसोटकर
इनका बना दिया इनका यह भेष!
आज रोटी ,कपड़े के लिए ये मौताज,
इनके चेहरे मुरझाये और उदास |

क्या वह दिन आयेगा ?
जब , इनकी हालत में होगा सुधार,
शायद कोई गांधी या लूथर ले,
फिर से इस जग में अवतार ||

हाइकू

डॉ योगेन्द्र नाथ शर्मा "अरुण"

"प्यार"

तुमने छुआ
अमृत हो गया मैं
प्यार हुआ

ये नैन तेरे
देखते जब मुझे
तू पास मेरे

कमल खिला
कमाल प्यार का
जीवन मिला

पास आओ ना
पुकारता है दिल
अब जाओ ना

तुम हो मेरे
दिल में रहते हो
किस के फेरे?

गजल



सुनीता काम्बोज

होके अब तो विदा चल पड़ी बेटियाँ
मेरे आँगन की थी रौशनी बेटियाँ

गुड़िया गुड्डे खिलौनें पड़े रह गए
हो गई अब तो शायद बड़ी बेटियाँ

करती महसूस माँ की कमी को बड़ा
लौटी पीहर से फिर अनमनी बेटियाँ

ये सहनशक्ति का ही एक भण्डार हैं
जानें किस चीज की बनी बेटियाँ

दिन ढले अब वो घर से निकलती नहीं
रहती हैं आजकल क्यों डरी बेटियाँ

कुल को दीपक मिले सब यही चाहते
कोख में इसलिए ही मरी बेटियाँ

जाने किस बाग के फूल टूटे हैं ये
देख किसने खरीदी बिकी बेटियाँ

अधढका -सा है तन वो थिरकती रही
आज महफ़िल में क्यों नाचती बेटियाँ

सूखी मेहंदी गई रंग को छोड़ कर
इस तरह बाटँती है ख़ुशी बेटियाँ

पूछते है वो जन्नत मिलेगी कहाँ
जिसके आँगन में हों खेलती बेटियाँ

प्यार -सत्कार थोडा सा गर मिल सके
और कुछ भी नहीं माँगती बेटियाँ

घर की दीवार को गौर से देखती
बीता बचपन रही खोजती बेटियाँ

दर्द में माँ पिता जी अगर हो कभी
रहती बैचेन सी हर घड़ी बेटियाँ

भाव मन के सुनीता उतारा करे
अब तो जाती नही इस गली बेटियाँ

----2 ---

सभी इल्जाम मुझ पर हैं ,रकीबों पर नहीं आते
सफ़ीने रोज चलते हैं ,किनारों पर नहीं आते ।

परेशां दिख रहें है क्यों ,ये सारे फूल बागों के
ये भँवरें आजकल ही क्यों गुलाबों पर नहीं आते ।

नए इस दौर में कुछ तो गया है छूट ही पीछे
पुराने गीत अब उनके भी होठों पर नहीं आते।

सभी तो उड़ गए जब से पहर ये तीसरा आया
परिंदे भी तो अब सूखे से पेड़ों पर नहीं आते ।

मुझे गुमराह करके तुम कभी रस्ता न पाओगे
महकते फूल ये हरगिज भी काँटों पर नहीं आते

--3----

समंदर और किनारें बोलते हैं
सुनो नदियाँ व झरने बोलते हैं

वो अच्छा सामने कहते हैं मुझको
बुरा बस पीठ पीछे हैं बोलते हैं

ख़ता तूने भले अपनी न मानी
तेरे कपड़े के छींटें बोलते हैं

जो सूखें हैं वो ज्यादा फड़फड़ाते
हवा चलती तो पत्ते बोलते हैं

तुम्हारी ही हिफाज़त कर रहे हम
यही फूलों से काँटें बोलते हैं

मेरी उनको जरूरत है नहीं अब
मेरे अपनों के चेहरे बोलते हैं

न उसकी बात को हल्की लिया कर
तजुअर्बो से सयाने बोलते हैं

नई तहजीब ये ली सीख किससे
बड़ों के बीच बच्चें बोलते हैं

कभी इस घर में चूड़ी थी खनकती
कि अब टूटे झरोखे बोलते हैं

तरक्की को बयाँ ये कर दिया ही
जो इन सड़कों के गड्ढे बोलते हैं



गीत

आओ कोयल गीत सुनाओ~



सुनीता जैन

अम्बर ने बाँहें फैलाईं,
मेघ चलें नित चाल नवेली।
वर्षा करती ताक् धिना धिन,
सूरज की है बंद हथेली।
सावन कितना बरसोगे तुम,
आँखें भी हैं पानी-पानी।
दिया सलाई सील गई हैं,
बाती ने जलना है ठानी।
सूरज तुमसे ही है जीवन,
ऊषा की ललछौंई लाओ।
कलरव सुनने को हम तरसे,
कोयल आकर गीत सुनाओ।
मरुथल में अंकुर फूटे हैं,
पत्थर से झरने हैं बहते ।
बेलों पे तरुणाई झूमे,
झींगुर भी सुर में हैं गाते।
पराग भरीं सुमन की पाँखें,
धूप गुनगुनी से बतियातीं।
बादल की संधों से किरणें,
धरती पर आतुर हो आतीं।
बिछी मखमली दूब धरा पर,
सूरज आँख मिचौली खेले।
खेतों की बाढ़ों पर देखो,
टिटहरी के लग गए मेले।

संस्मरण

पहले मुझे गोली मार !

प्रस्तुति-जय प्रकाश मानस

उन दिनों मुंशी प्रेमचंद गोरखपुर में शिक्षक थे। उन्होंने गाय पाल रखी थी। एक दिन चरते-चरते उनकी गाय वहाँ के अंग्रेज़ जिलाधीश के आवास के बाहरवाले उद्यान में घुस गई । अभी वह गाय वहाँ जाकर खड़ी ही हुई थी कि वह अँगरेज़ बंदूक लेकर बाहर आ गया और उसने आग बबूला होकर बंदूक में गोली भर ली।

उसी समय अपनी गाय को खोजते हुए प्रेमचंद वहाँ पहुँच गए।

अँगरेज ने घुड़कते हुए कहा - "यह गाय अब तुम यहाँ से ले नहीं जा सकते। तुम्हारी इतनी हिम्मत कि तुमने अपने जानवर को मेरे उद्यान में घुसा दिया । मैं इसे अभी गोली मार देता हूँ, तभी तुम काले लोगों को यह बात समझ में आएगी कि हम यहाँ हुकूमत कर रहे हैं।"

उसने भरी बंदूक गाय की ओर तान दी।

प्रेमचंद ने नरमी से उसे समझाने की कोशिश की, "महोदय! इस बार गाय पर मेहरबानी करें। यह तो अबोध पशु है । ग़लती से यहाँ आ गई हुज़ूर ।' फिर भी अंग्रेज़ झल्लाकर यही कहता रहा, "तुम काला आदमी ईडियट हो – हम गाय को गोली मारेगा।"

अँगरेज गुस्से में तमतमाते हुए बंदूक से गाय को निशान बनाना चाहा।

प्रेमचंद झट से गाय और अंग्रेज़ जिलाधीश के बीच में आ खड़े हुए और ग़ुस्से से बोले - "तो फिर चला गोली । देखूँ तुझमें कितनी हिम्मत है। ले। पहले मुझे गोली मार।"


अंतराल.
आज
इतने सारे काले बाल मिलकर
एक सफेद बाल का
बोझ नहीं उठा सकते....
कल
इतने ही सफेद बाल मिलकर
एक काले बाल की
उपस्थिति तक सहन नहीं करेंगे
आज और कल में
ऐसा क्या है जो बदल जाएगा..?
रंग ही तो....?
आईने का ?
आँखों का ?
नहीं, तुम्हारे भय का।
शब्द - सुरेन्द्र डी. सोनी
रंग - रोहित रुसिया

लघु कथा

ग्रामीण चीन का एक अनुभव



आशीष गोरे

कल साप्ताहिक अवकाश का दिन था | अचानक शंघाई के नजदीक चोंगमिंग द्वीप के ग्रामीण इलाके में जाने का कार्यक्रम बना | पहले एक झील देखी,शंघाई महानगर की दौड़ भाग और प्रदुषण से दूर एक अच्छी लेकिन सामान्य सी जगह, कुछ समय बिताने के लिए पर्याप्त | ड्राइवर से कहा चलो वापस चलते हैं, पर एक नए प्रस्ताव के साथ उसका जवाब आया | उसने कहा, "मैं एक चीनी किसान के घर जाना चाहूंगा, आपने चीन के महानगरो को देखा है चीन के ग्रामीण परिसर को भी देखिये | यह ग्रामीण इलाका खेती बाड़ी के लिए मशहूर है | वहां ले जाने के लिए ड्राइवर के तर्क बढ़ते जा रहे थे | प्रस्तावअनुरोध का स्वरुप लेने लगा था | मैंने कुछ सोचा, घडी देखी, फिर सोचा और आखिरकार हामी भर दी| ड्राइवर अपने प्रस्ताव की सफलता पर खुश था, कार की बढ़ी हुई गति इसका सबूत थी | मैंने पूछा किस किसान के घर जायेंगे | उसका जवाब था, "एक ड्राइवर साथी है, इसी ग्रामीण क्षेत्र का, उसके पिता और भाई किसान हैं| उन्ही के घर चल रहे हैं |" स्मार्ट फ़ोन पर We Chat (चीन में लोकप्रिय Whatsapp का समकक्ष) पर और बातों के साथ यह योजना भी बन गयी थी | घर पर सभी उपस्थित रहें, समय तय हो गया| मेरे बारे में अग्रिम जानकारी दी गयी, भारत से हूँ, चीन में क्या करता हूँ आदि- आदि| मुझसे पूछा जाने लगा क्या खाएंगे-पिएंगे| मेरी अपने निर्णय पर दुविधा बढ़ चुकी थी| कहावत याद आ रही थी " मान न मान मैं तेरा मेहमान !! खैर, कार का रुख बदलने का समय जा चुका था और अब मेरी सोच चीनी किसान के घर पर केंद्रित हो गयी थी | बात चीन की हो और मेरे जैसा एक भारतीय तुलनात्मक विश्लेषण की तैयारी में न जुटा हो ये तो नामुमकिन है |. किन प्रश्नो और किन विशेष पहलुओं पर ध्यान दिया जाये इसी कशमकश के बीच कार ग़ांव मे प्रवेश कर गयी |

रास्ते कम चौड़े पर अच्छी हालत में थे, प्रकाश व्यवस्था पर्याप्त थी, लोग घरों के आँगन में बैठे थे, कुल मिलाकर स्थिति संतोषजनक लग रही थी | शायदड्राइवर मेरे हावभाव पढ़ रहा था उसने जो कहा वह मेरे कुतूहल पर हावी था, ये स्थिति पहले नहीं थी | मैंने पूछा पहले मतलब कब ? उत्तर था दस से पन्दह साल | तत्कालीन चीनी शासकों के उसने नाम गिनाये, मेरे सामने भारत में चुनावों के समय रटी रटाई "समावेशी विकास" की बात सामने आई पर इसमें काल्पनिकता नहीं, कुछ वास्तविकता की तस्वीर थी | गांव एकदम अति आधुनिक नहीं था पर अपने आप में संपूर्ण था |

कार अब चीनी किसान के घर पर थी, सामूहिक परिवार था दो भाइयों और उनके पिता के अलग अलग दो मंजिला मकान थे पर एक दूसरे से जुड़े हुए| चीनी किसान के सात वर्षीय पोते ने एक बोर्ड पर लिखा था अंग्रेजी में "वेलकम", मेरे लिए | मैंने उसे प्यार दिया | तबतक किसान का सारा परिवार, पत्नी, लड़का,बहू और पोता मेरे स्वागत में खड़े थे | पोते ने अंग्रेजी में लिखा इस बात की प्रशंसा करने का मेरे लिए एक सुअवसर था | इस परिवार से जुड़ कर मेरा ड्राइवर अब "अनुवादक" के नए किरदार में था |

चीनी किसान और उसकी पत्नी की आयु देखकर अनायास ही मेरे हाथ नमस्ते की मुद्रा में आये जिसे देखकर किसान ने चीनी भाषा में कहा "भारत" और"बुद्ध" | काफी देर तक हमारी बातें गौतम बुद्ध के बोधगया पर टिकी रही |मैं उनके घर जाने वाला पहला भारतीय ही नहीं पहला विदेशी नागरिक भी था, लिहाज़ा साथ में फोटो लेने का अनुरोध हुआ | मैं भी यही चाहता ही था |उन्होंने अपने खेत में उगाये गए पीच फल मुझे दिए गए जो वास्तव में बहुत ही मीठे थे | चीन में प्रचलित हरी चाय साथ में थी | किसान ने अपनी खेती का भी अच्छा वर्णन किया, चावल, फल और फूलों की बहार थी उसके पास. भारत के बारे में काफी बातें हुयी | भारत की आईटी क्षेत्र में दक्षता उन्हें पूरी तरह से याद थी | भारतीय ज्यादातर शाकाहारी क्यों हैं, बॉलीवुड के फिल्म में डांस, जैसी बातें | बातचीत और परिवेश में उपस्थित आत्मीयता अब भाषा का ज्ञान न होते हुए भी संवाद हीनता की स्थिति को दूर रखने में सफल थी| अब जाने का समय हो चला था| यह अनुभव हम सबके लिए अच्छा था लिहाज़ा फिर जरूर मिलेंगे यह कहना स्वाभाविक ही था | कार का रुख अब शंघाई की ओर था, रास्ते में 9.६ किलो मीटर लम्बा पुल था | यह पुल नदी और समुद्र के ऊपर बना हुआ, जिसके चलते ही समृद्धि और खुशिहाली उस चीनी किसान के खेत तक पहूंचीं थी| चीनी किसान परिवार का भारत को सम्मान से देखना मुझे हतप्रभ कर गया | १९६२ का युद्ध, लगातार चालू सीमा विवाद,असली- नकली के फेर में गुणवत्ता पर प्रश्नचिन्ह लगे कारोबार, सरकारों की अनबन और अविश्वास की उदासीन पृष्ठभूमि से परे भारत और चीन को देखने का यह अवसर मेरे लिए अनूठा था| मुझे दो उपहार मिले, पहला यह यादगार अनुभव और दूसरा चीनी किसान ने अपने खेत में उगाये दो लहसुन .....

लघु कथा

बॉय माँ.......



प्रियंका पाण्डेय

सुबह **6.30** *बजे अलार्म बजा। निशा ऊंघते हुए किचन में गई। चाय का पानी गैस पर चढाया और सब्जियाँ काटने लगी। हफ्ते के पाँच दिनों की उसकी ऐसे ही शुरूआत होती है। आज इस नए शहर में आए उसे आठ महीने हो गए।*

चाय बन गई। उसने कुर्सी बॉलकनी में रखी और चाय पीने लगी। चाय खत्म कर फिर किचन में गई। सात बज गए थें। वह आज कुछ अलसाई थी। खाना बनाने का मन न होते हुए भी आलू काटने लगी। भजिया चढा कर अचानक उसका ध्यान किचन की खिडकी के बाहर गया। आठ बजने को थें.......अभी तक आवाज नहीं आई।

वह फिर अपने काम में मग्न हो गई। काम करते-करते ऑफिस जाने का समय हो गया। तैयार हो कर वह ऑफिस चल दी।

सुबह हुई....रोज की तरह निशा का वही कार्यक्रम रहा। आठ बजने को थें और उसका ध्यान फिर खिडकी के बाहर.....। आज तीन दिनों बाद आवाज आई......बॉय माँ। माँ का जवाब नहीं आया, लडके ने दुबारा कहा.....बॉय माँ। माँ का जवाब आया....बॉय। गैस पर सब्जी चढी थी निशा कुछ देर के लिए खो गई।

घर से निकलते हुए निशा ने कहा -आती हूँ माँ। माँ ने नही सुना। उसने फिर कहा, अन्दर से माँ दौडती आई, बोली.....आओ बेटा। बॉय......निशा चली गई।

आठ महीनों से लगातार वह उस छोटे लडके का ठीक बॉय माँ....कहना सुनती है। स्कूल जाते हुए उस छोटे लडके में वह खुद को खोजती है। रोज उसका बॉय माँ कहना निशा को माँ और घर दोनों की याद दिलाता है ओर इस भागते शहर में वह अपने बॉय माँ का जवाब पाने के लिए उसका मन पागलो की तरह बेचैन रहता है।

सुबह के आठ बजे हैं। निशा का ध्यान फिर किचन की खिडकी के बाहर है.............

हरसिंगार

सुनीता जैन

"छलक कर घोल डाला यूँ नशा बरसात में किसने....." नेहा ग़ज़ल गुनगुनाती हुई घर के पिछवाड़े खुले अहाते में हरसिंगार के पेड़ से गुलमोहर के पेड़ के बीच बँधी रस्सी पर कपड़े फैला रही थी।एक छोर से दूसरे छोर को छूती हुई नेहा ज्यों ही पलटने को हुई,अचानक हरसिंगार की छोटी सफेद पाँखुरियाँ जो केसरिया डंडी पर खिलीं थीं, नख से शिख तक नेहा को बरस कर नहला गईं। फूल झरते रहे, नेहा की आँखें मुँदती चलीं गईं।

...... कितने हँसीन थे वो पल, जब राज उसे रोज़ भिगोता था इस तरह! उसका पेड़ तले खड़े होना,राज का झटके से डाल झटकना, फूलों का बरसना औऱ उसका भीगना....सब कुछ नेहा को बंद आँखों से नज़र आ रहा था। भीगते रिश्तों को संजो रही थी नेहा आज फ़िर............भीगते-भीगते कब दिन भागते रहे उसे पता ही नहीं लगा! एक दिन पिता ने तल्ख़ आवाज़ में कहा तुम मिल लो,एक लड़का है बाकी़ माँ बता देगी! नेहा के पैरों तले ज़मीन खिसक गई। संतुलन बनाती ज्यों-त्यों अपने कमरे तक पहूँची। सोचती रही कहीं पिताजी को मालुम तो नहीं हो गया!!

सुबह से नेहा राज की प्रतीक्षा में थी, राज नहीं आया। ऐसा कभी नहीं हुआ कि राज बिना बताए न आए। राज नेहा का सीनियर था कॉलेज में। नेहा को वनस्पति विज्ञान पढ़ाने आता था,बहुत सहृदय था औऱ पिता के परिचय से ही उसे घर में प्रवेश मिला था। आज राज के न आने से नेहा बहुत अनमनी थी, तभी सहेली राज का संदेशा लाई,कहीं बाहर मिलने का। पहली बार नेहा राज से अन्यत्र मिल रही थी। राज ने दोनों हाथ नेहा के हाथ में लेकर समझाना शुरु किया__देखो नेहा तुम मध्यमवर्गीय परिवार से हो,ऐसा मेरी माँ का मानना है.... औऱ....झटके से नेहा ने हाथ छुड़ा लिऐ औऱ तमतमाकर पूछा तुम्हारा क्या मानना है!!!!

.... हकलाते हुए नीची नज़र से राज ने कहा, मैं अपनी माँ की ख़िलाफ़त नहीं कर सकता....!!! हाँ!! ये तय है कभी शादी करुँगा तो सिर्फ़ तुमसे!! अलविदा!! कहकर राज बिना मुड़े चला गया ,नेहा उसकी जाती पीठ देखती रही देर तलक!! बहुत थकान महसूस कर रही थी पर आश्चर्य मन शाँत था।

कब दिन बीतते गए पता नहीं लगा.... माँ,पिता के लाख अनुरोध पर नेहा भी विवाह को राजी नहीं थी...। एक-एक कर दोनों ने संसार से विदा ले ली! बस रहा तो ये खुला अहाता औऱ इसमें लगा हरसिंगार!! नेहा स्वप्न से बाहर आई, गहरी साँस छोड़-कर ज्यों ही मुड़ी... सामने राज को खड़ा देख,ठगी रह गई!! तुम कब आए!!! हतप्रभ थी नेहा। राज के आलिंगन में देर तक सुबकती रही नेहा,ज्यों लबालब भरा पानी बाँध तोड़कर बह जाना चाहता हो।

हाँ नेहा हाँ !!मैं तुम्हें लेने आया हूँ। तुम्हारी तपस्या पूरी हुई माँ ने मुझे लेने भेजा है , क्या तुम मुझे स्वीकार करोगी!! तुम मुझे माफ करदो,मैं डरपोक निकला या शायद संस्कारिक! दोनों हथेलियों में नेहा का चेहरा लिए राज अँजुरि में आँसू भर रहा था। मैंने तुम्हें त्यागा ही कब था राज, जो अब अपनाउं। पर मैं भी संस्कारों को जीती हूँ,तुमने बहुत देर कर दी.... माँ ,पिता दोनों ही तो चले गए। बिना अपराध की सजा भुगतने को सहर्ष तैयार-- राज औऱ नेहा बिछड़ने से पहले एक हो जाना चाहते थे!!!आज वे दोनों मिलकर रोना चाहते थे!!!

भगवान की कसीदाकारी



माला वर्मा

जब मैं छोटा था अक्सर अपनी माँ को हम्बायडरी (कसीदाकारी) करते पाता। माँ के घुटने के पास बैठा हुआ देखता।
लकड़ी के एक बड़े गोलाकार फ्रेम के ऊपर भी के हाथ सूई धागों से खेलते रहते। नीचे से देखते हुए मैं माँ से पूछता-"तुम क्या कर रही हो। " माँ कहती... "बेटा, मैं कपड़े पर इंब्रायाडरी कर रहीं हूँ।" मैं कहता- "माँ, नीचे से यह यानों का जाल नज़र आता है, कुछ भी स्पष्ट नहीं दिखता ये धागे आपस में उलझे कितने बेरौनक भद्दे लग रहे हैँ। जाने कौन सी डिजाइन तुम गढ़ रही हो! मुझे तो कुछ भी समझ में नहीं आता। "

मेरी बात सुनकर माँ मुस्कान, नीचे मेरी और देखा और कह उठो... "देना, अभी तुम बाहर खेलने जाओ, जब मैँ अपनी डिजाइन पूरी कर लूँगी तब तुम्हें अपनी गोद में बिठाकर उपर से इस फ्रेम में कैद डिजाइन को दिखाऊंगी। "मैँ आश्चर्य में था- आखिर भी इन काले धागों को अन्य सुन्दर चमकीले धागों के साथ मिलाकर क्यों उलझा रही हैं? इन उलझे धागों से वे क्या बनाना चाहती थी, ये सभी धागे आपस में उलझे कितने बेतरतीब लगते हैं!

मैं बाहर खेलने चला गया। करीब आधे घंटे के बाद उनकी आवाज़ सुनाई दो... "बेटा... आओ, मेरे घुटनों पर बैठ जाओ । "मैं दौड़ता हुआ आया और माँ की गोद में बैठ गया। उन्होंने फ्रेम वाली डिजाइन मेरे सामने कर दी। अरे!! मैं आश्चर्य व विस्मय से भर उठा। यह क्या? इतनी सुन्दर कसीदाकारी! फूल व सूर्यास्त एक कपड़े के टुकड़े पर? मुझे अब भी विश्वास नहीं हो रहा था। जो चीज़ नीचे से इतनी खराब व उलझी दिख रही थी चो ऊपर से इतनी खूबसूरत जैसे हौं सकती है!

मुझे हक्का –बक्का देख माँ कह उठी... ""बेटा, जो चीज तुम्हें नीचे से इतनी उलझी और अजीब लग रही थी तुम सोच भी नहीं सकते कि फ्रेम के ऊपर डिजाइन पहले से आंका हुआ था बाकी पूर्व नियोजित था । मैंने तो सिर्फ उन रेखाओं में धागे भर दिए। जब तुमने ऊपर से देखा तब कहीं पता चला मैं इतने दिनों से क्या कर रही थी। "

वर्षों बीत गए इस बात को । मैं उपर आकाश में देखता हूँ। सृष्टिकर्ता से प्रश्न करता हूँ... "हे ईश्वरा आप क्या कर रहे हो?" वो जवाब देता है- "मैँ तुम्हारे जीवन में डिजाइन व रंग भर रहा हूँ।" मैंने प्रश्व किया... "लेकिन यह नीचे से उलझा दिख रहा है। अभी धागे अंधेरे में डूबे हैं। वे चमकते क्यों नहीं?"

ईश्वर ने जवाब दिया... "मेरे बच्चे, तुमने अभी अपनी कही, अपना बिजनेस संभालो और मुझे अपना काम करने दो।एक दिन आयेगा जब मैं तुम्हें उपर अपनी दुनिया में बुलाऊँगा और तुम्हें अपने कदमों पर बिठाकर नीचे दिखाऊँगा। मेरी प्लानिंग, मेरा डिजाइन, जो मैं ऊपर बैठा हुआ तुम्हारी दुनिया में गढ़ता रहता हूँ- एक विशालकाय फ्रेम में जड़ा खूबसूरत डिजाइन है जिसमें तुम सब जीव जगत विचरते हो।

लघुकथाएँ



शोभा रस्तोगी

पुन: भगत सिंह

"सुनो ! तुम मुझे तुम्हारे वियोग के गहरे अहसास में अर्धचेतन-सा छोड़ गए थे। अपना जीवन स्वाहा करने की मंशा लिए मैंने जाना कि नवांकुर फूट गया है। तब से अब तक पल-पल, क्षण क्षण तुम्हे नैनों में बिठा तुम्हारे फूल को सींचा। आज तुम्हारा बेटा वृक्ष बन गया है। उसे समझाओ न, तुम्हारी राह पर न चले। उसे भी तुम्हारी तरह फौजी बनने का चाव है। उसी पथ का पथिक बन उड़ जाना चाहता है मुझसे दूर। डरती हूँ... कहीं वह भी तुम्हारी तरह...न-न... नहीं, मैं उसे कोई फौजी- वौजी नहीं बनने दूँगी। पहले मेरा पति और अब मेरा ही लाल ?... और भी माँओं के बेटे हैं शहादत के लिए...।" माँ-माँ पुकारता नमन उसके नजदीक आया तो वह झट आँचल से आँसू पौंछने लगी।

"ओह माँ ! फिर ये नमकीन पानी ?...मेरा दुश्मन...।"

"तुझे क्या ? अपनी माँ से अधिक मातृभूमि जो प्यारी है तुझे। एक बात सुन ले... मैं तुझे फ़ौज में जाने नहीं दे रही।"

"माँ ! भगत सिंह की माँ भी बिलकुल तुम्हारी तरह थी। भोली। मासूम। उसने भी शायद यही कहा होगा। आप ऐसा क्यों सोचती हो कि मैं भी पापा की तरह...।"

"बस्स चुप।" ऊँगली धर दी माँ ने बेटे के लबों पर।

"माँ ! सभी माँएँ यही कहेंगी तो भारत माँ किसे पुकारेगी ? उसके तार-तार होते मान को देख सकोगी आप ?" बेटे की आँखों में भगत सिंह खड़ा था जिसकी एक किरण ने माँ की ममता पर लटके जाले साफ़ कर दिए। रौशन हो गयी हृदय गली।

माँ ने न्यौछावर कर दिया एक बार फिर अपने भगत सिंह को।

मुट्ठी भर धूप

कमरा बुहारती सतिया चुप थी आज। आँखें नम थीं। लपालप बोलने वाली के होठों पर टेप ? दिशा से न रहा गया - "क्या है री ? आज मौन व्रत ? वो भी तेरा ? तेरी बोलती चुप्पी ?"

" कछु न दिदिया।"

"न-न... है कुछ ?" पूछते ही तरबतरा गया चेहरा । दोनों टंकी खुल गईं।

" फिर मारा तेरे मरद ने ?"

"हाँ, दिदिया... दारू वास्ते हम पइसा नाई दे रहे। बच्चन के टूसन काजे जोड़े रहे। दो बोल बोल दिए, बस्स...।"

"बोलती ही क्यूँ है तू ? औरत कितना ही करे... बोल नहीं सकती। मुझे ही देख। तेरे साहब के आगे होंठ सी के रहती हूँ। क्या करे... घर जो चलाना है।"

"का घर औरत का ही होय करे ? मर्दन का कोई लेन- देन नहीं ? झाड़ू-पौंछा, रसोई-बर्तन, बाज़ार-हाट, बच्चा-बुजुर्ग, तीज-त्यौहार, रस्म-नेग...ई सब महरारू के पल्ले? मरद मस्त... तोपर भी चौधरी ?" एक ही रौ में बोले जा रही थी सतिया।

"धरती धरती ही रहती है। असमान नहीं बन सकती।" दिशा का घुटा दर्द तड़पा।

"कौन हम आसमान के चाँद तारे चाहे रही... मुट्ठी भर धूप और हवा भी नही...।"

" झाड़ू से बिस्तर तक बना सकता है मर्द औरत को।"

"ई सब के इलावा थोड़ी धूप की सेंक और बयार की ठंडक भी बनना चाहे है औरत... मैं ई हवा और ताप बन के ही रहूँगी।"

दोनों की अधमुंदी निस्तेज आँखें एक ही प्रश्न और प्रत्युत्तर में एक क्षीण आस की किरण देख रही थीं। किरण... जो निकलेगी... अवश्य निकलेगी।



लघुकथा



डॉ॰ पद्‌मजा शर्मा

फर्क

रामदयाल पेड-पौधों की,सार-सम्भाल अपने बच्चों की तरह करता है। लिली को पानी पिलाते हुए कहता है 'सुगनी, प्यासी मत रह जाना। '

जूही को खुर्पी देते हुए कहता है 'मेरी मोहनी खूब खिल रही है'।

रातरानी को खाद देते हुए बिरहा गाता है।

गुलाब के पास से गुजरता है और गुलाब पकड ले तो समझ जाता है कि उसे बातें करनी हैं। और वह बातें करता है । रंगों की,खुशबुओं की। कलियों की,काँटों की। फूलों की,चाँद तारों की। बादलों की, हवाओं की।

हम सब उसकी ये बातें सुनकर हंसते थे कि रामदयाल भोला है।

एक बार की बात है। रामदयाल गर्मी की छुट्‌टियों में महीने भर के लिए गांव चला गया। बगीचे की देख-भाल की जिम्मेदारी मुझे दे गया। मैं बिना नागा पेड-पौधों को पानी दे रही थी। सुबह नहीं दे पाती तो शाम को देती । शाम को नहीं दे पाती तो सुबह देती। पर देती जरूर कि जेठ महीने की गर्मी प्राण लेवा होती है।

दिन बीतते जा रहे थे। पर,जाने क्यों पौधे जलते जा रहे थे। पानी कम हो तो सूख जाएँ,ज्यादा हो तो गल जाएँ। क्या क रूँ, क्या न करूँ कुछ समझ में न आए।

महीने भर बाद रामदयाल लौट आया। उसने बगीचा देखा। बगीचे में बगीचा नहीं था। न हरियाली न कोई रंग बचा था। और न फूल-पत्ते थे। काँटों जैसे कांटे भी नहीं थे। रामदयाल ने लम्बी सांस ली और तत्काल पेड-पौधों की सार - संभाल में लग गया,यह कहते हुए कि 'हमारे बिना इनका जी नहीं लगा। हम भी तो छटपटा रहे थे'। वह किसी पौधे को सहलाता। किसी को छूता। किसी से बतियाता तो किसी के कान में गुनगुनाता। उन्हें खिलाते-पिलाते-संवारते हुए उसने रात-दिन एक कर दिए।

दसेक दिन बाद ही क्या देखते हैं कि पौधों में जान आ गई है। वे नौ महीने के बच्चे की तरह,सहारे के साथ उठना-चलना सीख रहे हैं।

मैं प्रकृति की इस अदा पर चकित ही नहीं मोहित भी थी।

पहली बार जाना कि निर्जीव हो या सजीव किसी अपने के होने या न होने का फर्क सब पर पड़ता है।

एक छोटा सा मज़ाक

अन्तोन चेख़फ़



मूल रूसी से अनुवाद — अनिल जनविजय

सरदियों की ख़ूबसूरत दोपहर... सरदी बहुत तेज़ है। नाद्या ने मेरी बाँह पकड़ रखी है। उसके घुँघराले बालों में बर्फ़ इस तरह जम गई है कि वे चाँदनी की तरह झलकने लगे हैं। होंठों के ऊपर भी बर्फ़ की एक लकीर-सी दिखाई देने लगी है। हम एक पहाड़ी पर खड़े हुए हैं। हमारे पैरों के नीचे मैदान पर एक ढलान पसरी हुई है जिसमें सूरज की रोशनी ऐसे चमक रही है जैसे उसकी परछाई शीशे में पड़ रही हो। हमारे पैरों के पास ही एक स्लेज पड़ी हुई है जिसकी गद्दी पर लाल कपड़ा लगा हुआ है ।

—चलो नाद्या, एक बार फिसलें ! — मैंने नाद्या से कहा— सिर्फ़ एक बार ! घबराओ नहीं, हमें कुछ नहीं होगा, हम ठीक-ठाक नीचे पहुँच जाएँगे ।

लेकिन नाद्या डर रही है। यहाँ से, पहाड़ी के कगार से, नीचे मैदान तक का रास्ता उसे बेहद लम्बा लग रहा है। वह भय से पीली पड़ गई है। जब वह ऊपर से नीचे की ओर झाँकती है और जब मैं उससे स्लेज पर बैठने को कहता हूँ तो जैसे उसका दम निकल जाता है। मैं सोचता हूँ— लेकिन तब क्या होगा, जब वह नीचे फिसलने का ख़तरा उठा लेगी! वह तो भय से मर ही जाएगी या पागल ही हो जाएगी ।

—मेरी बात मान लो ! — मैंने उससे कहा — नहीं-नहीं, डरो नहीं, तुममें हिम्मत की कमी है क्या ?

आख़िरकार वह मान जाती है। और मैं उसके चेहरे के भावों को पढ़ता हूँ। ऐसा लगता है जैसे मौत का ख़तरा मोल लेकर ही उसने मेरी यह बात मानी है। वह भय से सफ़ेद पड़ चुकी है और काँप रही है। मैं उसे स्लेज पर बैठाकर, उसके कन्धों पर अपना हाथ रखकर उसके पीछे बैठ जाता हूँ। हम उस अथाह गहराई की ओर फिसलने लगते हैं। स्लेज गोली की तरह बड़ी तेज़ी से नीचे जा रही है। बेहद ठंडी हवा हमारे चेहरों पर चोट कर रही है। हवा ऎसे चिंघाड़ रही है कि लगता है, मानों कोई तेज़ सीटी बजा रहा हो। हवा जैसे गुस्से से हमारे बदन को चीर रही है, वह हमारे सिर उतार लेना चाहती है। हवा इतनी तेज़ है कि साँस लेना भी मुश्किल है। लगता है, मानों शैतान हमें अपने पंजों में जकड़कर गरजते हुए नरक की ओर

खींच रहा है। आसपास की सारी चीज़ें जैसे एक तेज़ी से भागती हुई लकीर में बदल गई हैं। ऐसा महसूस होता है कि आनेवाले पल में ही हम मर जाएँगे ।

मैं तुम से प्यार करता हूँ, नाद्या ! — मैं धीमे से कहता हूँ ।

स्लेज की गति धीरे-धीरे कम हो जाती है। हवा का गरजना और स्लेज का गूँजना अब इतना भयानक नहीं लगता। हमारे दम में दम आता है और आख़िरकार हम नीचे पहुँच जाते हैं। नाद्या अधमरी-सी हो रही है। वह सफ़ेद पड़ गई है। उसकी साँसें बहुत धीमी-धीमी चल रही हैं... मैं उसकी स्लेज से उठने में मदद करता हूँ ।

अब चाहे जो भी हो जाए मै कभी नहीं फिसलूँगी, हरगिज़ नहीं! आज तो मैं मरते-मरते बची हूँ। — मेरी ओर देखते हुए उसने कहा। उसकी बड़ी-बड़ी आँखों में ख़ौफ़ का साया दिखाई दे रहा है। पर थोड़ी ही देर बाद वह सहज हो गई और मेरी ओर सवालिया निगाहों से देखने लगी। क्या उसने सचमुच वे शब्द सुने थे या उसे ऐसा बस, महसूस हुआ था, सिर्फ़ हवा की गरज थी वह? मैं नाद्या के पास ही खड़ा हूँ। मैं सिगरेट पी रहा हूँ और अपने दस्ताने को ध्यान से देख रहा हूँ।

नाद्या मेरा हाथ अपने हाथ में ले लेती है और हम देर तक पहाड़ी के आसपास घूमते रहते हैं। यह पहेली उसको परेशान कर रही है। वे शब्द जो उसने पहाड़ी से नीचे फिसलते हुए सुने थे, सच में कहे गए थे या नहीं? यह बात वास्तव में हुई या नहीं। यह सच है या झूठ? अब यह सवाल उसके लिए स्वाभिमान का सवाल हो गया है. उसकी इज़्ज़त का सवाल हो गया है। जैसे उसकी ज़िन्दगी और उसके जीवन की ख़ुशी इस बात पर निर्भर करती है। यह बात उसके लिए महत्त्वपूर्ण है, दुनिया में शायद सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण। नाद्या मुझे अपनी अधीरता भरी उदास नज़रों से ताकती है, मानों मेरे अन्दर की बात भाँपना चाहती हो। मेरे सवालों का वह कोई असंगत-सा उत्तर देती है। वह इस इन्तज़ार में है कि मैं उससे फिर वही बात शुरू करूँ। मैं उसके चेहरे को ध्यान से देखता हूँ — अरे, उसके प्यारे चेहरे पर ये कैसे भाव हैं ? मैं देखता हूँ कि वह अपने आप से लड़ रही है, उसे मुझ से कुछ कहना है, वह कुछ पूछना चाहती है। लेकिन वह अपने ख़यालों को, अपनी भावनाओं को शब्दों के रूप में प्रकट नहीं कर पाती। वह झेंप रही है, वह डर रही है, उसकी अपनी ही ख़ुशी उसे तंग कर रही है...। — सुनिए! — मुझ से मुँह चुराते हुए वह कहती है। — क्या बात है ? — मैं पूछता हूँ । — चलिए, एक बार फिर फिसलें ।

हम फिर से पहाड़ी के ऊपर चढ़ जाते हैं। मैं फिर से भय से सफ़ेद पड़ चुकी और काँपती हुई नाद्या को स्लेज पर बैठाता हूँ। हम फिर से भयानक गहराई की ओर फिसलते हैं। फिर से हवा की गरज़ और स्लेज की गूँज हमारे कानों को फाड़ती है और फिर जब शोर सबसे अधिक था मैं धीमी आवाज़ में कहता हूँ — मैं तुम से प्यार करता हूँ, नाद्या ।

नीचे पहुँचकर जब स्लेज रुक जाती है तो नाद्या एक नज़र पहले ऊपर की तरफ़ ढलान को देखती है जिससे हम अभी-अभी नीचे फिसले हैं, फिर दूसरी नज़र मेरे चेहरे पर डालती है। वह ध्यान से मेरी बेपरवाह और भावहीन आवाज़ को सुनती है। उसके चेहरे पर हैरानी है। न सिर्फ़ चेहरे पर बल्कि उसके सारे हाव-भाव से हैरानी झलकती है। वह चकित है और जैसे उसके चेहरे पर यह लिखा है — क्या बात है? वे शब्द किसने कहे थे? शायद इसी ने? या हो सकता है मुझे बस, ऐसा लगा हो, बस ऐसे ही वे शब्द सुनाई दिए हों ?

उसकी परेशानी बढ़ जाती है कि वह इस सच्चाई से अनभिज्ञ है। यह अनभिज्ञता उसकी अधीरता को बढ़ाती है। मुझे उस पर तरस आ रहा है। बेचारी लड़की! वह मेरे प्रश्नों का कोई उत्तर नहीं देती और नाक-भौंह चढ़ा लेती है। लगता है, वह रोने ही वाली है। — घर चलें? — मैं पूछता हूँ। — लेकिन मुझे... मुझे तो यहाँ फिसलने में ख़ूब मज़ा आ रहा है। — वह शर्म से लाल होकर कहती है और फिर मुझ से अनुरोध करती है — और क्यों न हम एक बार फिर फिसलें ?

हुम... तो उसे यह फिसलना 'अच्छा लगता है'। पर स्लेज पर बैठते हुए तो वह पहले की तरह ही भय से सफ़ेद दिखाई दे रही है और काँप रही है। उसे साँस लेना भी मुश्किल हो रहा है। लेकिन मैं अपने होंठों को रुमाल से पोंछकर धीरे से खाँसता हूँ और जब फिर से नीचे फिसलते हुए हम आधे रास्ते में पहुँच जाते हैं तो मैं एक बार फिर कहता हूँ — मैं तुम से प्यार करता हूँ, नाद्या !

और यह पहेली पहेली ही रह जाती है। नाद्या चुप रहती है, वह कूछ सोचती है... मैं उसे उसके घर तक छोड़ने जाता हूँ। वह धीमे-धीमे क़दमों से चल रही है और इन्तज़ार कर रही है कि शायद मैं उससे कुछ कहूँगा। मैं यह नोट करता हूँ कि उसका दिल कैसे तड़प रहा है। लेकिन वह चुप रहने की कोशिश कर रही है और अपने मन की बात को अपने दिल में ही रखे हुए है। शायद वह सोच रही है।

दूसरे दिन मुझे उसका एक रुक्का मिलता है —"आज जब आप पहाड़ी पर फिसलने के लिए जाएँ तो मुझे अपने साथ ले लें। नाद्या।" उस दिन से हम दोनों रोज़ फिसलने के लिए पहाड़ी पर जाते हैं और स्लेज पर नीचे फिसलते हुए हर बार मैं धीमी आवाज़ में वे ही शब्द कहता हूँ — मैं तुम से प्यार करता हूँ, नाद्या !

जल्दी ही नाद्या को इन शब्दों का नशा-सा हो जाता है, वैसा ही नशा जैसा शराब या मार्फ़ीन का नशा होता है। वह अब इन शब्दों की ख़ुमारी में रहने लगी है। हालाँकि उसे पहाड़ी से नीचे फिसलने में पहले की तरह डर लगता है लेकिन अब भय और ख़तरा मौहब्बत से भरे उन शब्दों में एक नया स्वाद पैदा करते हैं जो पहले की तरह उसके लिए एक पहेली बने हुए हैं और उसके दिल को तड़पाते हैं। उसका शक हम दो ही लोगों पर है — मुझ पर और हवा

पर। हम दोनों में से कौन उसके सामने अपनी भावना का इज़हार करता है, उसे पता नहीं। पर अब उसे इससे कोई फ़र्क नहीं पड़ता। शराब चाहे किसी भी बर्तन से क्यों न पी जाए — नशा तो वह उतना ही देती है। अचानक एक दिन दोपहर के समय मैं अकेला ही उस पहाड़ी पर जा पहुँचा। भीड़ के पीछे से मैंने देखा कि नाद्या उस ढलान के पास खड़ी है, उसकी आँखें मुझे ही तलाश रही हैं। फिर वह धीरे-धीरे पहाड़ी पर चढ़ने लगती है ...अकेले फिसलने में हालाँकि उसे डर लगता है, बहुत ज़्यादा डर! वह बर्फ़ की तरह सफ़ेद पड़ चुकी है, वह काँप रही है, जैसे उसे फ़ाँसी पर चढ़ाया जा रहा हो। पर वह आगे ही आगे बढ़ती जा रही है, बिना झिझके, बिना रुके। शायद आख़िर उसने फ़ैसला कर ही लिया कि वह इस बार अकेली नीचे फिसल कर देखेगी कि "जब मैं अकेली होऊंगी तो क्या मुझे वे मीठे शब्द सुनाई देंगे या नहीं?" मैं देखता हूँ कि वह बेहद घबराई हुई भय से मुँह खोलकर स्लेज पर बैठ जाती है। वह अपनी आँखें बंद कर लेती है और जैसे जीवन से विदा लेकर नीचे की ओर फिसल पड़ती है... स्लेज के फिसलने की गूँज सुनाई पड़ रही है। नाद्या को वे शब्द सुनाई दिए या नहीं — मुझे नहीं मालूम... मैं बस यह देखता हूँ कि वह बेहद थकी हुई और कमज़ोर-सी स्लेज से उठती है। मैं उसके चेहरे पर यह पढ़ सकता हूँ कि वह ख़ुद नहीं जानती कि उसे कुछ सुनाई दिया या नहीं। नीचे फिसलते हुए उसे इतना डर लगा कि उसके लिए कुछ भी सुनना या समझना मुश्किल था।

फिर कुछ ही समय बाद वसन्त का मौसम आ गया। मार्च का महीना है... सूरज की किरणें पहले से अधिक गरम हो गई हैं। हमारी बर्फ़ से ढकी वह सफ़ेद पहाड़ी भी काली पड़ गई है, उसकी चमक ख़त्म हो गई है। धीरे-धीरे सारी बर्फ़ पिघल जाती है। हमारा फिसलना बंद हो गया है और अब नाद्या उन शब्दों को नहीं सुन पाएगी। उससे वे शब्द कहने वाला भी अब कोई नहीं है — हवा ख़ामोश हो गई है और मैं यह शहर छोड़कर पितेरबुर्ग जाने वाला हूँ — हो सकता है कि मैं हमेशा के लिए वहाँ चला जाऊँगा।

मेरे पितेरबुर्ग रवाना होने से शायद दो दिन पहले की बात है। संध्या समय मैं बगीचे में बैठा था। जिस मकान में नाद्या रहती है, यह बगीचा उससे जुड़ा हुआ था और एक ऊँची बाड़ ही नाद्या के मकान को उस बगीचे से अलग करती थी। अभी भी मौसम में काफ़ी ठंड है, कहीं-कहीं बर्फ़ पड़ी दिखाई देती है, हरियाली अभी नहीं है लेकिन वसन्त की सुगन्ध महसूस होने लगी है। शाम को पक्षियों की चहचहाट सुनाई देने लगी है। मैं बाड़ के पास आ जाता हूँ और एक दरार में से नाद्या के घर की तरफ़ देखता हूँ। नाद्या बरामदे में खड़ी है और उदास नज़रों से आसमान की ओर ताक रही है। बसन्ती हवा उसके उदास फीके चेहरे को सहला रही है। यह हवा उसे उस हवा की याद दिलाती है जो तब पहाड़ी पर गरजा करती थी जब उसने वे शब्द सुने थे। उसका चेहरा और उदास हो जाता है, गाल पर आँसू ढुलकने लगते हैं... और बेचारी लड़की अपने हाथ इस तरह से आगे बढ़ाती है मानो वह उस हवा से यह प्रार्थना कर

रही हो कि वह एक बार फिर से उसके लिए वे शब्द दोहराए। और जब हवा का एक झोंका आता है तो मैं फिर धीमी आवाज़ में कहता हूँ — मैं तुम से प्यार करता हूँ, नाद्या !

अचानक न जाने नाद्या को क्या हुआ! वह चौंककर मुस्कराने लगती है और हवा की ओर हाथ बढ़ाती है। वह बेहद ख़ुश है, बेहद सुखी, बेहद सुन्दर।

और मैं अपना सामान बाँधने के लिए घर लौट आता हूँ...।

यह बहुत पहले की बात है। अब नाद्या की शादी हो चुकी है। उसने ख़ुद शादी का फ़ैसला किया या नहीं, इससे कोई फ़र्क नहीं पड़ता। उसका पति एक बड़ा अफ़सर है और उनके तीन बच्चे हैं। वह उस समय को आज भी नहीं भूल पाई है, जब हम फिसलने के लिए पहाड़ी पर जाया करते थे। हवा के वे शब्द उसे आज भी याद हैं, यह उसके जीवन की सबसे सुखद, हृदयस्पर्शी और ख़ूबसूरत याद है।

और अब, जब मैं प्रौढ़ हो चुका हूँ, मैं यह नहीं समझ पाता हूँ कि मैंने उससे वे शब्द क्यों कहे थे, किसलिए मैंने उसके साथ ऐसा मज़ाक किया था!...

परिचय : **अनिल जनविजय-**अनुवादक अनिल जनविजय बरेली, उत्तरप्रदेश में जन्मे। पिछले 33 साल से मास्को में रह रहे हैं। वह मास्को विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग में एसोसियेट प्रोफेसर हैं, साथ ही 'स्पूतनिक' रेडियो में प्रोड्यूसर हैं और हिंदी डेस्क देखते हैं। रूसी और अंग्रेजी से सैकड़ों कविताओं और कई कहानियों का अनुवाद किया है।

एक अनुभव



अनिल जयविजय

अन्तोन चेख़फ़ (1860-1904) को रूसी साहित्य में ही नहीं बल्कि विश्व साहित्य में महानतम कहानीकारों में से एक माना जाता है। उन्होंने न केवल कहानियां लिखीं, बल्कि चार कालजयी नाटक भी लिखे, जिनमें 'चेरी का बगीचा' और 'तीन बहनें' नाटकों को अप्रतिम माना जाता है। उनकी कहानियां विश्व के समीक्षकों और आलोचकों में बहुत सम्मान के साथ सराही जाती हैं। चेख़फ़ पेशे से चिकित्सक थे। अपनी पढ़ाई का खर्च निकालने के लिए उन्होंने कहानियाँ लिखना शुरू किया था और बाद में वह लेखक बन गए। वह कहा करते थे, डॉक्टरी मेरी धर्मपत्नी है और साहित्य प्रेमिका।

हाल ही में मैंने अपने बच्चों की अध्यापिका यूलिया वसिल्येव्ना को अपने दफ्तर में बुलाया। मुझे उनसे उनके वेतन का हिसाब-किताब करना था।

मैंने उनसे कहा, 'आइए...आइए...बैठिए। ज़रा हिसाब कर लें। आपको पैसों की जरूरत होगी। पर आप इतनी संकोची हैं कि जरूरत होने पर भी आप खुद पैसे नहीं मांगेगी। खैर। हमने तय किया था कि हर महीने आपको तीस रुबल दिए जाएंगे।

'चालीस'

'नहीं...नहीं... तीस। तीस ही तय हुए थे। मेरे पास लिखा हुआ है। वैसे भी मैं हमेशा अध्यापकों को तीस रुबल ही देता हूं। आपको हमारे यहां काम करते हुए दो महीने हो चुके हैं...।'

'दो महीने और पांच दिन हुए हैं।'

'नहीं, दो महीने से ज्यदा नहीं। बस, दो ही महीने हुए हैं। यह भी मैंने नोट कर रखा है। तो इस तरह मुझे आपको कुल साठ रूबल देने हैं। लेकिन इन दो महीनों में कुल नौ इतवार पड़े हैं। आप इतवार को तो कोल्या को पढ़ाती नहीं हैं, सिर्फ थोड़ी देर उसके साथ घूमती हैं, इसके अलावा तीन छुट्टियां त्योहार की भी पड़ी हैं।'

यूलिया वसील्येव्ना का चेहरा आक्रोश से लाल हो उठा था। लेकिन उन्होंने कुछ नहीं कहा और अपने

घाघरे की सलवटें ठीक करती रहीं।'तीन त्योहार की छुट्टियों को मिलाकर बारह दिन हुए। इसका मतलब आपकी तनख्वाह में से बारह रूबल कम हो गए। चार दिन कोल्या बीमार रहा और आपने उसे नहीं पढ़ाया। तीन दिन तक आपके दांत में दर्द रहा। तब भी मेरी पत्नी ने आपको यह इजाजत दे दी थी कि आप उसे दोपहर में न पढ़ाया करें। इसके हुए सात रूबल। तो बारह और सात मिलाकर हुए कुल उन्नीस रूबल। अगर साठ रुबल में से उन्नीस रूबल निकाल दिए जाएं तो आपके बचे कुल इकतालीस रूबल। क्यों मेरी बात ठीक है न?'

यूलिया वसिल्येव्ना की दोनों आंखों के कोरों पर आंसू चमकने लगे थे। उनका चेहरा कांपने लगा था। घबराहट में उन्हें खांसी आ गई और वह रुमाल से अपनी नाक साफ करने लगीं। पर उन्होंने कोई आपत्ति नहीं की।

'नए साल के समारोह में आपने एक कप-प्लेट भी तोड़ दिया था। दो रूबल उनके भी जोड़िए। प्याला तो बहुत ही महंगा था। बाप-दादा के जमाने का था। लेकिन, चलिए, छोड़ देता हूं। आखिर नुकसान तो हो ही जाता है। बहुत-कुछ गंवाया है। एक प्याला और सही। आगे आपकी लापरवाही के कारण कोल्या पेड़ पर चढ़ गया था और उसने अपनी जैकेट फाड़ ली थी। दस रूबल उसके। फिर आपकी लापरवाही के कारण ही नौकरानी वार्या के जूते लेकर भाग गई। आपको सब चीजों का खयाल रखना चाहिए। आखिर आपको इसी काम के लिए रखा गया है। जूतों के भी पांच रूबल लगाइए। दस जनवरी को आपने मुझसे दस रूबल उधार लिए थे।'

'नहीं, मैंने आपसे कुछ नहीं लिया।' यूलिया वसिल्येव्ना ने फुसफुसा कर कहा।

'लेकिन मैंने यह नोट कर रखा है।'

चलिए ठीक है। कुल सत्ताईस रूबल हुए।'

'इकतालिस में से सताईस घटाइए। बाकी बचे चौदह।'

उनकी दोनों आंखें आंसुओं से भर गई थीं। उनकी सुंदर और लंबी नाक पर पसीने की बूंदे झलकने लगी थीं। बेचारी लड़की!

'मैंने सिर्फ एक ही बार पैसे लिए थे।' उन्होंने कांपती आवाज में कहा। 'आपकी पत्नी से मैंने तीन रूबल लिए थे। इसके अलावा कभी कुछ नहीं लिया।'

'अच्छा? अरे, यह तो मेरे पास लिखा हुआ ही नहीं है। तो चौदह में से तीन और घटा दीजिए। बाकी बचे ग्यारह। लीजिए, ये रहे आपके पैसे। तीन...तीन...तीन... एक... और एक... उठा लीजिए।'

और मैंने उन्हें ग्यारह रूबल दे दिए। उन्होंने चुपचाप पैसे ले लिए और कांपते हुए हाथों से उनको अपनी जेब में रख लिया।

'धन्यवाद। उन्होंने फ्रांसिसी भाषा में फुसफुसाकर कहा।'

मैं झटके से उठ खड़ा हुआ और कमरे में चक्कर काटने लगा। मुझे गुस्सा आ गया था।

'किसलिए धन्यवाद?' मैंने पूछा।

'पैसों के लिए धन्यवाद।'

'पर मैंने तो आपको लूट लिया है। बेड़ा गर्क हो मेरा! किसलिए धन्यवाद?'

'दूसरी जगहों पर तो मुझे यह भी नहीं दिया जाता था।'

'नहीं दिया जाता था? तो इसमें आश्चर्य की क्या बात है? मैंने तो आपसे मजाक किया है। मैंने आपको एक क्रूर सबक सिखाया है। मैं आपका एक-एक पैसा दे दूंगा। ये देखिए, यह लिफाफे में आपकी पूरी तनख्वाह रखी हुई है। आप गलत बात का विरोध क्यों नहीं करतीं। आप चुप कैसे रह जाती हैं? क्या इस दुनिया में कोई इतना बेचारा और असहाय भी हो सकता है? क्या आपकी इच्छाशक्ति इतनी कमजोर है? क्या यह संभव है?'

वह उदासी से मुस्कराई और मैंने उसके चेहरे पर पढ़ा, 'हां, यह संभव है।'

मैंने अपने क्रूर व्यवहार के लिए उससे माफी मांगी और उसे दो महीने की पूरी तनख्वाह के अस्सी रूबल दे दिए। वह आश्चर्यचकित हो उठी और बेहद संकोच के साथ मेरा आभार प्रकट करने लगीं। फिर वह कमरे से बाहर चली गईं और मैं सोचने लगा कि इस दुनिया में ताकतवर बनना बहुत आसान बात है!



शर्त

मूल कहानी- दी बेट (The Bet)

लेखक- अंतोन पी. चेकव (Anton P Chekhov)

अनुवाद- अपर्णा घोष

शरद की काली रात थी। वृद्ध बैंकर अपने कमरे में चहलकदमी कर रहा था, उसे पंद्रह साल पुरानी बातें याद आ रही थीं। शरद की एक शाम उसने पार्टी दी थी। कई चतुर लोग वहाँ मौज़ुद थे, रोचक विषयों पर बातें हो रही थी। अन्य कई विषयों के अतिरिक्त, उन्होंने मृत्युदंड पर भी चर्चा की थी। अधिकांश मेहमान, जिनमें कई पत्रकार और बुद्धिजीवी भी थे, ने मृत्युदंड को अनुमोदित नहीं किया। उनका मानना था कि ईसाई धर्मावलम्बी देशों के लिए इस प्रकार का दंड पुराना, अनैतिक और अनुपयुक्त है। उनमें से कुछ के अनुसार सभी जगह मृत्युदंड को आजीवन कारावास में परिवर्तित कर देना चाहिए।

“मैं आपसे सहमत नहीं हूँ”, मेज़बान बैंकर ने कहा। “न तो मैंने मृत्युदंड आज़माया है और न ही आजीवन कारावास, परंतु अनुमानतः आजीवन कारावास की अपेक्षा मृत्युदंड अधिक नैतिक और मानवोचित है। मृत्युदंड किसी इंसान को एक ही बार मारता है पर आजीवन कारावास उसे धीरे- धीरे मारता है। कौन हत्यारा अधिक दयालु है, जो आपको चंद मिनटों में मारे या वह जो आपसे आपकी ज़िन्दगी धीरे- धीरे निकाले?”

“दोनों समान रूप से अनैतिक हैं”, किसी मेहमान का कहना था, दोनों का उद्देश्य एक ही है- ज़िन्दगी ले लेना। देश इश्वर नहीं है। उसे वह छीन लेने का कोई अधिकार नहीं है, जो वह जब लौटाना चाहे तो लौटा न सके।”

मेहमानों में एक वकील भी था, पच्चीस वर्ष का नौजवान। जब उनसे उनकी राय माँगी गई, उन्होंने कहा:

“मृत्युदंड और आजीवन कारावास दोनों समान रूप से अनैतिक हैं, परंतु यदि मुझे मृत्युदंड और आजीवन कारावास के बीच किसी एक को चुनने के लिए कहा जाए तो मैं निश्चित रूप से दूसरे विकल्प को ही चुनूँगा। मर जाने से बेहतर है किसी भी प्रकार जिया जाए।”

रोचक चर्चा शुरू हुई। बैंकर, जिनकी उमर उन दिनों कम थी और कुछ अधीर भी था, उत्तेजना में बह गया। उसने मेज़ पर घुँसा मारते हुए उस नौजवान से चिल्लाकर कहा:

“यह सही नहीं है! मैं तुमसे बीस लाख की शर्त लगाता हूँ, तुम पाँच साल तक एकांत कारावास में नहीं रह पाओगे।”

नौजवान ने कहा, “यदि आप ऐसा अकपट रूप से कह रहे हैं!, तो मैं यह शर्त लगाने के लिए तैयार हूँ, पर मैं पाँच नहीं पंद्रह साल रहूँगा।”
“पंद्रह? चलो मंज़ूर है! बैंकर ने ज़ोर से कहा। “ जनाब, मैं बीस लाख दाँव पर लगाता हूँ!”

“राज़ी! आप बीस लाख दाँव पर लगाते हैं और मैं अपनी आज़ादी दाँव पर लगाता हूँ!” नौजवान ने कहा। और इस प्रकार बेतुक, अर्थहीन शर्त लगी! बैंकर, जो उन दिनों बिगड़ा हुआ, अस्थिरमति था, उसके पास बेशुमार दौलत थी। उसे शर्त लगाकर खुशी का ठिकाना नहीं रहा। खाने के मेज़ पर उसने नौजवान का मज़ाक उड़ाते हुए कहा:

“नौजवान, अच्छी तरह से सोच लो, अभी भी समय है। मेरे लिए बीस लाख मामुली बात है, पर तुम अपनी ज़िन्दगी से बेहतरीन तीन या चार साल गंवा रहे हो। मैं तीन या चार साल कह रहा हूँ क्योंकि तुम अधिक दिनों तक जियोगे भी नहीं। हे दुखी इंसान, यह भी मत भूलो कि अनिवार्य कारावास की अपेक्षा स्वैच्छिक कारावास कहीं दुभर होता है। जब तुम कारावास में रहोगे तब तुम्हें किसी भी पल आज़ाद हो जाने का अधिकार है, ऐसी सोच ही कारागार में बंद तुम्हारे संपूर्ण अस्तित्व में ज़हर घोल देगी। मुझे तुम पर तरस आ रहा है।”

और अब वही बैंकर चहलकदमी करते हुए सबकुछ याद करता है, वह अपने आप से पूछता है: “उस शर्त का मकसद क्या था? उस आदमी के पंद्रह साल और मेरे बीस लाख गवाने में किसकी क्या भलाई हुई? क्या इससे यह साबित होगा कि मृत्युदंड आजीवन कारावास से अच्छा है या बुरा? नहीं, नहीं। यह सबकुछ मुर्खता और अर्थहीनता थी। मेरे लिए तो वह किसी सिर चढ़े आदमी का मौज था, और उसके लिए सिर्फ पैसों की लालच....”

उसे फिर याद आया उस शाम आगे क्या घटी थी। यह फैसला किया गया कि नौजवान अपना कैदी जीवन बैंकर के बगीचे के किसी लॉज में कड़ी निगरानी में बिताएगा। यह तय किया गया कि पंद्रह साल तक उन्हें लॉज की दहलीज़ पार करके इंसान का चेहरा देखने, उनकी आवाज़ सुनने या चिट्ठी और अख़बार लेने की भी छूट नहीं होगी। उन्हें वाद्ययंत्र, किताब रखने, चिट्ठी लिखने, शराब पीने, धुम्रपान करने की अनुमति दी गई थी। करार के मुताबिक वह बाहरी दुनिया से संपर्क केवल एक छोटी सी खिड़की, जिसे केवल उसी मकसद से बनाया गया था, के ज़रीए रख सकता है। वह जो चाहे माँग सकते है- किताब, संगीत, शराब, और ऐसे बहुत कुछ..अपनी इच्छा व मात्रानुसार उनके लिखित आदेश करने पर ही उसे दी जाएगी, और वह सामान खिड़की से लेना होगा। करार में सूक्ष्मतम ब्यौरा भी लिखा गया था , जिसके अनुसार उनका कारावास पूर्ण एकांत का होगा एवं नौजवान को ठीक पंद्रह साल रहना होगा, जो 14 नवंबर, 1870 के बारह बजे से शुरू होकर 14 नवंबर, 1885 के बारह बजे तक समाप्त होगी। शर्तों को तोड़ने की ज़रा सी भी कोशिश, समय पूरा होने से दो मिनट पहले भी यदि की गई तो भी, बैंकर उन्हें बीस लाख का भुगतान नहीं करेगा।

उसकी संक्षिप्त टिप्पणियों से जहाँ तक पता चलता है कि कारावास के पहले साल में वह अकेलेपन और अवसाद से काफी ग्रस्त था। उसके लॉज से दिन- रात, लगातार पियानो की आवाज़ सुनाई पड़ती थी। उसने शराब और तंबाकू का सेवन नहीं किया। उसने लिखा कि शराब कामनाओं को उत्तेजित करता है और किसी भी बंदी के लिए कामना उसकी सबसे बड़ी दुश्मन होती है और सबसे बड़ा उदासी का कारण क्या हो सकता है जब कोई शराब पीए पर किसी को देख नहीं सके। तंबाकू से कमरे की आबोहवा दूषित होती है। पहले साल उसने खासकर जटिल प्रेम कथा वाला हल्का -फुल्का उपन्यास और बेहतरीन कहानियों की माँग की।

दूसरे साल लॉज का पियानो खामोश था, बंदी ने सिर्फ बेहतरीन किताबों की माँग की। पाँचवे साल में लॉज में संगीत फिर से गूँज उठा और बंदी ने शराब की माँग की। जिन्होंने उसे खिड़की से देखा उनका कहना था कि उस दौरान उसने खाने- पीने, बिस्तर पर लेटे रहने, बार- बार जंभाई लेने और गुस्से में अपने आप बरबड़ाने के सिवाए कुछ भी नहीं किया। उसने किताब नहीं पढ़ा। कभी- कभी रात में बैठकर लिखता था, वह घंटों लिखा करता था, और सुबह उसे फाड़ देता था। एकाधिबार उसके रोने की आवाज़ आई थी।

छठवें साल के द्वितीयार्ध में बंदी ने उत्साह के साथ भाषा, दर्शन और इतिहास पढ़ना शुरू कर दिया। उसने इतना व्यग्र होकर पढ़ाई की कि बैंकर को हमेशा उसे उसके द्वारा माँगी गई किताबों की आपूर्ति करनी पड़ी। अगले चार सालों में उसके अनुरोध पर कुछ छह सौ खंड किताबें उसे दिलवाई गई। इस अवधि के दौरान बैंकर ने बंदी से निम्नलिखित पत्र प्राप्त किया:
"प्रिय कारापाल, मैं आपको ये चंद पंक्तियाँ छह विभिन्न भाषाओं में लिख रहा हूँ, जो ये भाषाएँ जानते हैं, उन्हें आप ये दिखाइए। आप उन्हें ये पढ़ने के लिए दें। मेरी आपसे गुज़ारिश है कि अगर वे एक भी गलती नहीं निकाल पाएं तो आप बगीचे में एकबार गोली चलाएँ। उस गोली की आवाज़ मुझे बताएगी की मेरी कोशिश बेकार नहीं गई है। सभी युगों और सभी देशों के प्रतिभाशाली व्यक्ति विभिन्न भाषाएँ बोलते हें, पर उन सबमें एक ही लौ जलती है। हाए! काश आप जान पाते कि उन्हें जान कर मेरी आत्मा को कितना अपार्थिव आनंद प्राप्त हुआ है!" बंदी की इच्छापूर्ति की गई। बैंकर ने बगीचे में दो बार गोली चलाने का आदेश दिया।

दस साल बाद, बंदी मेज़ पर स्थिर बैठकर ईसाई धर्म की वाणी, संदेश के अलावा कुछ भी नहीं पढ़ता था। बैंकर को यह अजीब लगा था कि जिस शख़्स ने महज़ चार सालों में छह सौ खंड किताबों पर महारत हासिल की थी, वह लगभग एक साल से भी अधिक समय, एक पतली सी किताब, जिसे समझना काफी आसान था, के पीछे बरबाद कर रहा था। ईसाई धर्म की वाणी के बाद उसने धर्मशास्त्र और धर्मों का इतिहास पढ़ना शुरू किया।

कारावास के अंतिम दो वर्षों में, बंदी नें अंधाधुंध बहुत सारी किताबें पढ़ डाली। कभी वह विज्ञान की किताबों में मशरूफ़ हो जाता, तो कभी बॉयरन या शेक्सपियर की माँग करता। ऐसी कई पर्चियाँ हैं, जिनमें उसने एकसाथ रसायण पर किताब और चिकित्सा पुस्तिका, और उपन्यास तथा दर्शन या धर्मशास्त्र पर कुछ आलेख की माँग की थी। उसके अध्ययन से ऐसा लगता था, जैसे जहाज़ डूब गया है, और कोई इंसान सागर में तैरकर जहाज़ का मस्तुल पकड़कर अपनी जान बचाने की कोशिश कर रहा हो।

वृद्ध बैंकर को यह सब याद आया, उसने सोचा:

“कल बारह बजे उसे आज़ादी मिलेगी। हमारे करार के मुताबिक मुझे उसे बीस लाख देना है। अगर मैं वह राशि चुकाता हूँ, तो मैं खत्म हो जाऊँगा, मैं पूरी तरह से बरबाद हो जाऊँगा।”

पंद्रह साल पहले, उनके पास अनगिनत पैसे थे; अब उन्हें अपने आप से यह पूछते हुए भी डर लगता था, कि उनके पास क्या अधिक है, उनका कर्ज़ या उनकी दौलत। आनेवाले वर्षों में वे जुआ और स्टॉक एक्सचेंज में बेधड़क सट्टेबाजी करता रहा और उनकी बदकिस्मति शुरु हो गई। वे अहंकारी, बेखौफ, आत्मविश्वासी लखपति से सामान्य बैंकर रह गए थे, और अपने निवेश के हर उतार चढ़ाव से घबड़ा उठते थे। निराशा में अपना सिर पकड़ कर वृद्ध व्यक्ति बुदबुदाया “शापित शर्त!” “वह आदमी मर क्यों नहीं गया?” वह मात्र चालीस साल का है। वह मुझसे मेरा आखरी पैसा भी ले लेगा, वह शादी करेगा, अपनी ज़िंदगी में ऐश करेगा, एक्सचेंज में जुआ खेलेगा; जबकि मैं उसकी तरफ भिखारी की भाँति ईर्ष्या से देखूँगा और हर दिन वह मुझसे एक ही वाक्य कहेगा: ‘मेरी ज़िन्दगी की खुशी के लिए मैं तुम्हारा ऋणी हूँ, मुझे तुम्हारी मदद करने दो!’ नहीं, यह बरदाश्त के बाहर होगा! दिवालिया और अपमान से बचने का एकमात्र उपाय उस आदमी की मौत है! ”

बैंकर को तीन बजने की घंटी सुनाई दी; घर में सब गहरी नींद में थे, बाहर बर्फ से ढके पेड़ों की सरसराहट के अलावा और कुछ सुनाई नहीं दे रहा था। बिना कोई आवाज़ किए अग्निरोधक अल्मारी में से पिछले पंद्रह वर्षों से बंद पड़े दरवाज़े की चाबी निकाली, ओवरकोट पहनकर घर से निकल गए।

बगीचे में अंधेरा और ठंड थी। बारिश हो रही थी। बगीचे में हड्डियों को चीरने वाली ठंडी हवा चल रही थी, गरजती हुई तेज़ हवा से पेड़ भी हिल रहे थे। बैंकर ने अपनी आँखों पर ज़ोर दिया पर अंधेरे में उन्हें न तो ज़मीन दिख रहा था और न ही श्वेत मुर्तियाँ, वे न तो लॉज देख पा रहे थे और न ही पेड़। उन्होंने लॉज के निकट पहुँचकर चौकीदार को आवाज़ दी। पर उन्हें कोई जवाब नहीं मिला। ज़ाहिर है चौकीदार ने मौसम के कहर से बचने के लिए रसोईघर या ग्रीनहाउस में पनाह ली होगी। वह अभी सो रहा होगा।

वृद्ध ने सोचा, “अगर मैं अपने इरादा में कामयाब हुआ, तो शक सबसे पहले चौकीदार पर किया जाएगा।”

वे अंधेरे में ही सिढ़ी चढ़कर लॉज की दरवाज़े तक पहुँचे। अंधेरे में रास्ता टटोलकर वे गली पार करते हुए अंदर घुसे। माचिस की तिली जलाकर धिमी रोशनी में देखा कि वहाँ पर कोई नहीं था। पलंग पर बिस्तर नहीं था, कोने में काले रंग का लोहे का चूल्हा रखा था। बंदी के कमरे के दरवाज़े पर लगी मुहर अक्षत थी। माचिस की तिलि बुझ जाने पर वृद्ध व्यक्ति ने भावावेश में आकर छोटी सी खिड़की से काँपते हुए अंदर झांका। बंदी के कमरे के अंदर मोमबत्ती टिमटिमा रही थी। वह मेज़ पर बैठा हुआ था। पीछे से सिर्फ उसका पीठ, उसके सिर के बाल और उसके हाथ दिख रहे थे। मेज़ पर, दो कुर्सियों पर, मेज़ के निकट कालीन पर किताबें पड़ी हुई थीं।

पांच मिनट बीत गया और वह बंदी एकबार के लिए भी नहीं हिला। पंद्रह सालों के कैद ने उसे स्थिर बैठना सिखाया था। बैंकर ने खिड़की पर अपनी उंगलियों से खटखटाया, और वह बंदी निश्चल बैठा रहा, उसने कोई हरकत नहीं की। तब बैंकर ने सावधानी से दरवाज़े पर से मुहर तोड़ी और ताले के छेद में चाबी घुसाई। जंग खाए हुए ताले से चरमराती हुई आवाज़ निकली, दरवाजे से भी चिरमिराहट की आवाज़ आई। बैंकर ने तुरंत कदमों की आहट और चौंकने की आवाज़ की उम्मीद की पर तीन मिनट बीत जाने के बाद भी कमरे के अंदर सन्नाटा था। उन्होंने कमरे के अंदर घुसने का इरादा कर लिया।

मेज़ पर कोई आदमी अविचल बैठा हुआ था। वह कंकाल दिख रहा था, जिसकी हड्डियाँ सिर्फ चमड़े में लिपटी हुई थी, औरत की भाँति लंबे घुंघराले बाल और झबरा दाड़ी। उसका चेहरा मिट्टी का रंगत लिए पीला दिख रहा था, उसके गाल पिचक गए थे, पीठ लंबा और दुबला नज़र आ रहा था। जिस हाथ पर उसने अपना झबरा सर टिका रखा था, वह इतना दुबला और नाज़ुक था कि देखने से ही डर लग रहा था। उसके बालों में सफेदी झलक रही थी, उसके क्षीण और जीर्ण चेहरे को देखकर किसी को यह विश्वास नहीं होगा कि वह केवल चालीस वर्ष का था। वह नींद में था........ मेज़ पर उसके झुके हुए सिर के सामने कागज़ के एक पन्ने पर खूबसूरत लिखावट में कुछ लिखा हुआ था।

“बेचारा!” बैंकर ने सोचा, ‘वह नींद में है और संभवतः लाखों का ख़्वाब देख रहा होगा। मुझे बस इस अधमरे आदमी को उठाकर पलंग पर फेंकना है, तकिए से सांस दबा देना है और सबसे विवेकशील विशेषज्ञ भी इसे हिंसात्मक मृत्यु नहीं मानेगें। पर सबसे पहले उसने यहाँ क्या लिखा है वह पढ़ लिया जाए..... ”

बैंकर ने मेज़ पर से उस पन्ने को उठाया और निम्नलिखित को पढ़ने लगा:

"कल बारह बजे मुझे आज़ादी मिलेगी और अन्य लोगों के साथ मिलने का अधिकार मिलेगा, पर इस कमरे को छोड़ने और सूर्य की रोशनी देखने से पहले, मुझे लगता है कि यह आवश्यक है कि मैं आपसे कुछ कहूँ। साफ अन्तरात्मा से, मैं आपसे और इश्वर से, जिनके शरण में मैं हूँ, यह कहता हूँ कि मैं आज़ादी, जीवन, सेहत और आपकी किताबों में लिखी दुनिया की उन सभी बेहतरीन चिज़ों से घृणा करता हूँ।

"पूरे पंद्रह साल तक मैंने पार्थिव जीवन का गहन अध्ययन किया। यह सच है कि मैंने पृथ्वी या मनुष्य नहीं देखा, पर आपकी किताबों से मैंने सुगंधित सुरापान किया, मैंने गाना गाया, मैंने हिरण और वन्य वराह का शिकार किया, नारी से प्रेम किया.....। आपके कवियों और प्रतिभाशालियों के जादू द्वारा रचित स्वर्गीय बादलों के समान सुन्दरता का साक्षात्कार मैंने रात को किया, जिन्होंने मेरे कान में फुसफुसाकर बेहतरीन कहानियाँ सुनाई, जिससे मेरा दिमाग घुम गया। आपकी किताबों से मैं एलबर्ज और मॉ ब्लॉ की शिखर पर चढ़ा, और वहाँ से मैंने सूर्य को उगते हुए देखा और शाम को उसे मैंने उसकी स्वर्णिम और रक्तिम आभा से आसमान, सागर और पर्वतों की चोटियों को सरोबार करते हुए देखा। मैंने वहाँ से अपने सिर के ऊपर चमकती हुई बिजली को तूफानी बादल को चीरते देखा। मैंने हरा जंगल, मैदान, नदियाँ, तालाब, शहर देखा। मैंने मत्स्यांगना की गीत सुनी, गड़ेरिया की बाँसुरी सुनी। मेरे पास इश्वर की बात करने के लिए उड़ के आए हुए देवदूतों, के पंखों का स्पर्श किया ....। आपकी किताबों से मैंने अतल खड्डे में छलाँग लगाई, मैंने चमत्कार किया, मैंने हत्या की, शहरों को जलाया, नए धर्मों की स्थापना की, पूर्ण साम्राज्यों पर विजय प्राप्त किया.....

"आपकी किताबों ने मुझे प्राज्ञता दी। युगों से मनुष्य के अशांत मन ने जिसे रचा है, वह संकुचित होकर छोटे से कंपास में मेरे दिमाग में समा गया है। मैं जानता हूँ कि मैं आप सबसे अधिक बुद्धिमान हूँ।

"और मैं आपकी किताबों से घृणा करता हूँ, मैं बुद्धिमत्ता से और विश्व के आशीर्वादों से घृणा करता हूँ। यह सबकुछ मृगतृष्णा के समान बेकार, क्षणिक और भ्रामक है। आप अभिमानी, बुद्धिमान और उत्कृष्ट होंगे, परंतु मृत्यु आपको इस धरती से ऐसे साफ कर देगी जैसे आप ज़मीन के नीचे बिल खोदनेवाला किसी चूहा से बढ़कर और कुछ न हो, आपकी भावी पीढ़ी, आपका इतिहास, आपकी अमर प्रतिभा पार्थिव दुनिया के साथ जल जाएगी या जम कर बर्फ बन जाएगी।

"आपने अपना विवेक खोकर गलत रास्ता अपनाया है। आपने असत्य को सत्य और उग्रता को सुन्दरता माना है। आपको हैरत होगी अगर कुछ अजीबोगरीब घटनाओं के चलते अचानक मेंढक और छिपकली सेब और संतरे के पेड़ों पर उग आएं, या गुलाबों से पसीने से

तर घोड़े की बू आए; मुझे आपको देखकर हैरत होती है जो स्वर्ग को धरती से विनिमय करता है। मैं आपको समझना नहीं चाहता हूँ।

"मैं उन वस्तु को घृणा करता हूँ जिसके लिए आप जीते हैं और इसे साबित करने के लिए मैं वह बीस लाख त्याग करता हूँ जिसे पहले कभी मैंने स्वर्ग माना था और अब मुझे उससे घृणा है। इस धनराशि के अधिकार से स्वयं को वंचित करने के लिए मैं यहाँ से निर्धारित समय से पांच घंटा पहले चला जाऊँगा और इस प्रकार करार का भंग करूँगा.......।"

बैंकर ने इसे पढ़ने के बाद उस पन्ने को मेज़ पर रखा और उस अजीब आदमी के सिर को चूमकर वे रोते हुए उस लॉज से निकल गए। इसके पहले उन्हें कभी भी, जब वे स्टॉक एक्सचेंज में बुरी तरह से हारे थे, इतनी नफरत खुद से नहीं हुई थी। घर लौटकर वे पलंग पर सो जाते हैं, पर उनकी आँसुओं और भावनाओं ने उन्हें घंटों सोने नहीं दिया।

अगले दिन सुबह चौकीदारों ने मुर्झाए चेहरे के साथ उन्हें बताया कि लॉज में रहनेवाला आदमी खिड़की से बगीचे में कूदकर गेट की तरफ चला गया है। बैंकर तुरंत अपने नौकरों के साथ लॉज में जाकर बंदी के भागने की पुष्टि करते हैं। अनावश्यक चर्चाओं को रोकने के लिए, वे मेज़ पर से उस पत्र को उठा लेते हैं, जिसमें लाखों को त्यागा गया था। घर लौटकर वे उसे अग्निरोधक अल्मारी में रखकर ताला लगा देते हैं।



कहानी

कल-(लु-सेन)



अनुवाद-बिनय कुमार शुक्ल

क्या हो गया ? बच्चों की आवाज नहीं आ रही है |

एक हाथ में पीली शराब का प्याला लिए पकौड़े सी लाल नाक वाले कुंग ने पड़ोसी के घर की तरफ देखते हुए कहा | नीली चमड़ी वाले अह-वू ने आपन प्याला नीचे रखा और जोर से उसकी पीठ में घूँसा मारा |
"वह दर्द से बिलबिला उठा और बुरी तरह से चिल्लाया |"फिर से भावुक हो उठा!"

शायद अब लु-सेन पुराने ख़यालात का हो चला था | रात के पहले पहर से पहले ही सारे साथी अपने दरवाजे बंद कर नींद के आगोश में जा चुके थे |आधी रात तक सिर्फ दो घर के लोग अब भी जाग रहे था | प्रॉस्पेरिटी ट्रावेन जहाँ कुछ भुक्खड़ बार के आस पास मंडरा रहे थे और इसके पास का मकान जहां फोर्थ शं की पत्नी रहती है | दो साल पहले ही विधवा हो गयी थी | उसके पास अपना और पाने तीन वर्ष के बेटे के जीवन यापन के लिए एक करघा के सिवा कुछ भी तो नहीं बचा था | यही वजह थी उसके जगे रहने का |

यह भी सत्य था कि पिछले कुछ दिनों से करघे की आवाज नहीं आ रही थी | अब चूँकि आधी रात को वृद्ध कुंग और इस घर के ही लोग जगे हुए थे, तो यह स्वाभाविक है कि करघा चलने की आवाज इन्हें ही सुनाई देती | पर किसी प्रकार की कोई आवाज का न आना यह दर्शाता है कि फोर्थ-शं के घर के अंदर से करघा चलने की आवाज नहीं आ रही |

चोट खाने के बाद बूढा कुंग गहरी साँस लेता हुआ शराब की लंबी घूँट भरते हुए कोई लोक गीत गुनगुनाने लगा |

इस बीच फोर्थ-शं की पत्नी अपने कलेजे के टुकड़े पाओ-एर को अपनी गोद में लिए हुए बिस्तर के एक कोने में बैठी थी, उसका करघा खामोश सा एक कोने में पड़ा हुआ था | टिमटिमाते दीपक की रोशनी पाओ-एर के चेहरे पर पड़ी, उसके बीमार चेहरे पर एक जीवंत बालक का स्वरूप प्रतिविम्बित हो रहा था |

"इसे स्वस्थ कराने के लिए मैंने भगवान के सामने, मूर्ति के आगे बहुत बार मत्था टेका पर कुछ भी तो नहीं हुआ |" वह बैठी सोच रही थी, "अब फिर भी यदि यह ठीक नहीं हुआ

तो मजबूरन डॉक्टर के पास ले जाना ही होगा| और भला मैं कर भी क्या सकती हूँ ? अब इसे डॉ0 शियो-शेन के पास ले जाना ही होगा | हो सकता है रात के कारण पाओ-एर को सांस की तकलीफ हो रही हो, सूर्योदय के साथ ही इसमें सुधार भी आ सकता है | हो सकता है कल उसका बुखार भी ठीक हो जाए | कई बीमारियां ऐसी भी होती हैं |"
फोर्थ शं की पत्नी सीधी सादी औरत थी जिसे "लेकिन" शब्द कितना खतरनाक हो सकता है, शायद पता ही न था | इस 'लेकिन' का बहुत धन्यवाद जिसके प्रभाव से कई ख़राब चीजें अच्छी हो जाती हैं और कभी-कभी अच्छी चीजें खराब भी हो जाती हैं | गर्मी की रात छोटी होती है | बूढा कुंग और अन्य लोग जैसे ही गाना बंद किये, पूरब के आकाश में रोशनी जगमगा उठी| खिड़की के टूटे हुए शीशे से छनकर सूरज की सुनहली किरणे घर में आने लगीं|

फोर्थ शं की पत्नी के लिए सूर्योदय का इन्तजार अन्य लोगों जैसा नहीं था | समय बहुत ही मंद गति से बीत रहा था | पाओ- एर द्वारा लिए जाने वाली हर सांस मानो उसकी अंतिम सांस हो | पर अब उजाला हो चुका था | सूरज की रोशनी ने दीपक के प्रकाश को निगल लिया | जब-जब पाओ एर सांस लेता, उसकी नाक घड़- घड़ा उठती |

फोर्थ शं की पत्नी को इस बीमारी का फल पता था, वह सिसक उठी | पर कर भी क्या सकती थी ? परेशान थी | अब डॉ0 हो से उसे एकमात्र आशा थी | वह एक सीधी- सादी औरत हो सकती है, पर इच्छाशक्ति की धनी थी | वह उठकर अलमारी तक गई और अपनी कुल बचत जिसमें तेरह छोटे चांदी के डॉलर और 180 ताँबे के सिक्के थे, निकालकर जेब में रख पाओ-एर को गोद में लिए दरवाजा बंद किया और तेजी से डॉ0 हो के घर की तरफ चल पड़ी |

हालाँकि वह जल्द ही आई थी पर वहां पहले से ही चार और मरीज बैठे हुए थे | पंजीकरण के लिए उसने चालीस सेंट का भुगतान किया | पाओ- एर पांचवा मरीज था | डॉ0 हो ने अपनी दो अँगुलियों से उसकी नाड़ी जांच किया | उनके नाखून चार इंच लंबे थे |फोर्थ शं की पत्नी अंदर ही अंदर सिहर उठी पर मन ही मन सोचने लगी, " मेरा पाओ-एर अवश्य ही ठीक हो जाएगा | पर दुश्चिंता के मारे कुछ बातें पूछने से खुद को रोक भी न सकी:

"डॉक्टर मेरे पाओ- एर को क्या हुआ है ?"

"अंतड़ियों में कुछ रूकावट आ रही है |"

"क्या यह खतरनाक हो सकता है ? क्या वो ......?"

"इन दो दवाओं को शुरू करो"

"वह सांस नहीं ले पा रहा है, उसके नथुने में ऐठन हो रही हैं?"

"धातु तत्व पर अग्नि तत्व भारी पड़ रहा है .....|"

अपनी बात अधूरी रख डॉ0 हो ने अपनी आँखें बंद कर ली, फोर्थ शं की पत्नी कुछ और कहना नहीं चाही | दरवाजे के दूसरी तरफ डॉक्टर के विपरीत दिशा में लगभग 30 वर्ष का एक आदमी बैठा हुआ था | उसने दवा बना दिया था |

"पहली दवा बच्चे की रक्षा के लिए है," कागज़ के एक कोने में लिखे हुए अक्षर की तरफ इशारा करते हुए उसने कहा| "तुम्हे यह सिर्फ चीन परिवार की दूकान पर ही मिलेगा|"

फोर्थ शं की पत्नी ने कागज़ लिया और जैसे सोचते हुए आई थी वैसे ही सोचते हुए बाहर निकली | सीधी- सादी औरत होने के बावजूद उसे पता था कि उसका घर, डॉ हो का घर और चेन की दूकान एक त्रिकोड में हैं अतः घर लौटने से पहले दवा खरीदते हुए जाना काफी आसान होगा | वह जितनी तेजी से जा सकती थी, चेन के दूकान की तरफ बढ़ चली | सहायक के अँगुलियों के नाखून भी काफी लंबे थे | उसने धीरे से दवा की पर्ची लिया और दवा निकाला | पाओ- एर को गोद में लिए हुए वो इन्तजार करती रही | अचानक पाओ एर ने अपने छोटे हाथ निकल कर उसके बालों को पकड़ लिया |उसने ऐसा कभी पहले नहीं किया था इसलिए उसकी माँ डर सी गयी |

सूरज काफी ऊंचाई पर था | एक हाथ में दवा का थैला, गोद में बच्चा दोनों का वजन उसे काफी अधिक लग रहा था | बच्चा भी मचल रहा था जिसके कारण उसे राह काफी लंबी लग रही थी | थोड़ी देर विश्राम करने के लिए उसे सड़क के किनारे एक बड़े से मकान की सीढ़ी पर बैठ जाना पड़ा | उसके कपडे पसीना से लथ-पथ हो उठे थे | पाओ-एर गहरी नींद में था | वह धीरे से चलने को उद्धत हुई, उसे अब भी वह भारी लग रहा था |उसके पीछे से एक आवाज आयी,

फोर्थ शं की पत्नी चलो मैं तुम्हे छोड़ देता हूँ !, ऐसा लगा जैसे नीली चमड़ी वाले अह- वू की आवाज हो |
जब उसने ऊपर देखा, निश्चित ही यह अह-वू था जो उसे देख रहा था | उसकी आँखें अब भी नींद से बोझिल थीं |
हालाँकि फोर्थ शं की पत्नी चाहती थी की कोई देवदूत उसकी मदद के लिए आये पर उस अह वू को उस देव दूत के स्थान पर देखने की उसकी कतई मंशा नहीं थी | पर अह वू के अनुरोध में कुछ ऐसी बात थी की कई बार मना करने के बाद अंततः वह राजी हो गई | ज्यों ही उसने बच्चा लेने के लिए उसकी छाती और बच्चे के बीच में हाथ डाला, उस स्पर्श से उसके शरीर में सिहरन सी दौड़ गयी | उसके कान लाल हो गए |

ढाई फुट की एक दुसरे से दूरी बनाते हुए वो साथ-साथ चल पड़े | अह वू ने कुछ कहा जिनमें से अधिकांश का फोर्थ शं की पत्नी ने कोई भी जवाब नहीं दिया | वो ज्यादा दूर नहीं गए होंगे तभी उसने बच्चा उसे सौंपते हुए कहा, उसने कल अपने एक दोस्त के साथ इसी समय भोजन का कार्यक्रम बनाया था | फोर्थ शं की पत्नी ने पाओ- एर को वापस पकड़ लिया | संयोगवश अब दूरी अधिक नहीं बची थी | उसे नाइंथ चची वांग को गली के पास बैठा देखा | उसने आवाज लगाया :

"फोर्थ शं की पत्नी, बच्चा कैसा है ?

क्या तुम्हारी मुलाकात डॉक्टर से हुई ?

नाइंथ चाची वांग मैंने उसे दिखाया | आप बूढी और अनुभवी हैं और आपने बहुत कुछ देखा है | क्या मेरे बेटे को देखकर बता सकती हैं कि इसे क्या हुआ है ?"

"चलो" ठीक है... ?"

"हूँ ...."

पाओ- एर की जांच करने के बाद नाइंथ चाची वांग ने दो बार अपना सर हिलाया और फिर दो बार सर को झटका दिया |

जबतक पाओ- एर ने दवा लिया, दोपहर हो चुकी थी | फोर्थ शं की पत्नी ने बारीकी से उसका मुआयना किया | अब वह काफी ठीक लग रहा था | दोपहर में उसने अचानक आँख खोला और पुकारा : "मां!" फिर से उसने आँख बंद कर लिया और सो गया | काफी देर से वह सोया नहीं था |उसका सिर और नाक पसीने से भर उठा था |जब उसकी मां ने उसे छूकर देखा तो उसमें गोंद जैसा चिपचिपापन था | घबराहट में उसके सीने में स्पंदन हुई और वह रो पड़ी |

थोड़ी देर में वह चिर शांत हो गया | उसकी सांसें थम चुकी थीं | सिसकारी के बाद वह विलाप करने लगी | शीघ्र ही उसके कमरे में लोगों की भीड़ जमा होने लगी | नाइंथ चाची वांग, नीली चमड़ी वाला अह-वू और ऐसे ही अन्य लोग जैसे प्रोस्पेरिटी टेवर्न का मालिक, लाल नाक वाला कुंग | नाइंथ चाची वांग ने सलाह दिया कि कागज के सिक्के की रस्सी जलाई जानी चाहिए, फिर जो लोग मदद कर रहे थे उनके लिए खाना बनाने के लिए दो तिपाई और कपड़े के पांच सामान जमानत के रूप में रखकर फोर्थ शं की पत्नी के लिए दो डॉलर उधार लाई |

पहली समस्या थी ताबूत | फोर्थ शं की पत्नी के पास अब भी एक जोड़ी चांदी की बाली और सोने की पालिश चढ़ाया हुआ एक चांदी का बालों का पिन बचा हुआ था | उसने इन चीजों को प्रोस्पेरिटी टेवर्न के मालिक को दिया जिससे कुछ नकद देकर एवं कुछ उधार पर

वह एक ताबूत ला सके | नीली चमड़ी वाले अह-वू ने मदद के लिए हाथ आगे बढ़ाना चाहा पर नाइंथ चाची वांग ने इस तरफ कोई ध्यान ही नहीं दिया | उसने उसे अगले दिन ताबूत ढोने की जिम्मेदारी दिया | “अरे… दुष्टा!” उसने शाप दिया और अपने होठ भींचते हुए एक कोने में खड़ा रहा | मकान मालिक चला गया, शाम को आकर उसने बताया कि ताबूत अलग से बनाना पड़ेगा और अगले दिन सुबह से पहले तैयार नहीं हो सकता |

जब तक मकान मालिक वापस वापस आया, बाकी के मदद करने वाले भोजन कर चुके थे |चूँकि पुराने ख़यालात की रिवाजें थीं अतः सब सोने के लिए अपने घर चले गए | सिर्फ अह वू प्रोस्पेरिटी टेवर्न के बार में बैठा शराब पीता रहा और बूढा कुंग गीत गाता रहा |

इस बीच फोर्थ शं की पत्नी बिस्तर के एक कोने में बैठी रोती रही | पाओ- एर बिस्तर पर लेटा था, करघा शांत निस्चल फर्श पर पड़ा था | काफी देर बाद जब फोर्ड शं की पत्नी के आंसू सूख चुके, उसने अपनी आँखें खोली और कमरे में चारों तरफ देखी | यह असंभव था!, “यह सिर्फ एक सपना है,” उसने सोचा | "यह सब एक सपना है | कल मैं जब सुबह नींद से उठूंगी तब पाओ- एर को बिस्तर पर अपने बगल में लेटा हुआ पाउंगी | वह उठेगा और मुझे माँ कहकर पुकारेगा और नन्हे शेर के शावक की तरह खेलने के लिए कूद पडेगा |”

बूढा कुंग गाना बंद कर चुका था और प्रोस्पेरिटी टेवर्न की बिजली जा चुकी थी | फोर्थ शं की पत्नी सब घूरते हुए बैठी थी पर जो कुछ भी हुआ उसपर उसे विश्वास नहीं हो रहा था | मुर्गे ने बांग लगाई,पूर्व दिशा में आकाश में उजाला हो उठा और खिड़की के टूटे शीशे से सुनहली रश्मियां घर के अंदर आने लगीं |

सूरज की सुनहली किरणे जैसे ताम्र रंग की हुईं, सूरज छत की सीध में आ गया | फोर्थ शं की पत्नी छत को घूरती हुई बैठी थी तभी किसी ने दरवाजे पर दस्तख दिया और वह दरवाजा खोलने के लिए दौड़ पड़ी |पीठ पर कुछ लादे हुए एक अजनबी खड़ा था, उसके पीछे नाइंथ चाची वांग खड़ी थी |

आह, यह तो ताबूत था जिसे वो लेकर आया था |

चूँकि फोर्थ शं की पत्नी रोती रही, ढेरों बातें करती रही और ढक्कन बंद करने नहीं दे रही थी अतः दोपहर तक ताबूत के ढक्कन को बंद नहीं किया गया | सौभाग्य से नाइंथ चाची वांग इन्तजार करते हुए थक गयीं थी, तेजी से आगे आयीं और जल्दी से उन्होंने ताबूत का ढक्कन बंद कर दिया |

फोर्थ शं की पत्नी जितना भी कर सकती थी, उसने अपने बेटे के लिए किया | कुछ भी तो भूली नहीं थी | पिछली रात को कागज़ के सिक्के की एक लड़ी जलाई थी , आज सुबह इनकार्नेशन ऑफ़ ग्रेट मर्सी की उनचास पुस्तकें जलाई थी और उसे ताबूत में रखने के पहले उसे नए कपडे पहनाए थे, उसके तकिये के पास उसके पसंद के सारे खिलौने रख दिया था, थोड़ी सी चिकनी मिट्टी के खिलौने, दो छोटे-छोटे लकड़ी के कटोरे, दो कांच की बोतलें | इसके बावजूद उसे ऐसा लग रहा था कि कुछ भूल रहे हों |

चूँकि नीली चमड़ी वाला अह-वू अबतक आया नहीं, इसलिए मकान मालिक ने फोर्थ शं की पत्नी के लिए 210 बड़े तांबे की दर से दो कूली लाया जो ताबूत को सरकारी कब्रिस्तान तक ले गए और एक कब्र खोदे | जिन लोगों ने उसकी अंगुली पकड़ी और उसका मुँह खोलने में सहायता किया या जो आमंत्रित थे उनके लिए भोजन बनाने में नाइंथ चाची ने सहायता किया |जल्द ही सूरज अस्ताचल की तरफ चल पड़ा, आमंत्रित लोग न चाहते हुए भी अपने घर वापस चले गए | .

फोर्थ शं की पत्नी शुरू में बेहोशी की हालत में थी पर थोड़ा आराम मिलने के बाद वह ठीक हुई | हालांकि पहली नजर में उसे ऐसा लगा की सब अजीब सा हो रहा है | जो कुछ उसके साथ पहले कभी नहीं हुआ था और जिसकी उसने कभी सपने में भी आशंका नहीं की थी, आज उसके साथ सबकुछ घटित हो गया | जितना भी उसने सोचा उतनी ही उलझती गयी | उसके लिए सबसे अधिक हैरानी की बात यह थी कि अचानक उसका एक कमरा खाली और शांत हो गया था |

इसके बाद जब उठकर उसने दीपक जलाया, कमरे में सन्नाटा और भी बढ़ गया | उठकर उसने दरवाजा बंद किया, बिस्तर पर आकर बैठी, अब भी करघा फर्श पर शांत पड़ा हुआ था | बेचैन सी थी उसके लिए बैठना या खड़ा रहना दोनों मुश्किल लग रहा था | कमरा शांत ही नहीं था बल्कि बहुत बड़ा और खाली-खाली सा लग रहा था | यह सन्नाटा मानो उसे खाये जा रहा था | सांस लेना भी उसके लिए दूभर सा हो रहा था |

उसे अब विश्वास हो गया कि उसका बेटा अब मर चुका है | उसके कमरे की तरफ उसे देखना भी गवारा नहीं लग रहा था | उसने दीपक बुझा दिया और रोते हुए सोचने लगी | उसे याद आ रहा था कि कैसे पाओ- एर खेलते और खाते हुए उसके आस पास चक्कर लगाया करता था | वह उसे अपनी सुन्दर काली आँखों से घूरते हुए कहता,"मां, पिताजी 'हुन-तुन' बेचा करते थे, मैं भी बड़ा होकर मैं भी 'हुन-तुन' बेचूंगा | इससे ढेर सारा पैसा कमाऊंगा और सब तुमको लाकर दूंगा |

जो भी धागा वह बनाती थी उसका हर इंच जीवंत और कीमती होता था | पर अब क्या ? फोर्थ शं की पत्नी ने अपने वर्तमान के बारे में कुछ भी नहीं सोचा क्योंकि मैंने पहले ही कहा था कि वह एक सिर्फ एक सीधी-सादी औरत है | वह और क्या सोच सकती है? उसे सिर्फ यही पता था कि यह कमरा काफी बड़ा है, इसमें काफी सन्नाटा है | सिधाई के बावजूद उसे पता था कि मरने के बाद लोग वापस नहीं आते, और वह अपने पाओ- एर को दुबारा देख नहीं पायेगी | सन्नाटे में उसे अपनी गहरी साँसों की आवाज साफ़ सुनाई दे रही थी |

अंत में फोर्थ शं की पत्नी को नींद आ गयी और पूरे कमरे में सन्नाटा पसर गया | लाल नाक वाले कुंग के गीत कबके बंद हो चुके थे और वह प्रोस्पेरिटी टेवर्न के बाहर एक नए रास्ते पर जाने के लिए बढ़ रहा था|

“ मुझे तुमपर दया आती है मेरी जान ....अकेले- अकेले ....” .

नीली चमड़ी वाले अह वू ने बूढ़े कुंग का कंधा पकड़ रखा था, दोनों हँसते-मुस्कुराते बढ़ रहे थे |

फोर्थ शं की पत्नी सो रही थी | बूढा कुंग और बाकी सब लोग जा चुके थे | प्रोस्पेरिटी टेवर्न का दरवाजा बंद था | लुसेन में सन्नाटा पसरा हुआ था | सिर्फ रात सुबह में बदलने के लिए बेचैन थी | कभी कभी कुत्तों के भूकने की आवाज आ जाती थी |



कहानी

अपने पराये



शोभा रस्तोगी

दोनों हाथों में पानी भरी पंद्रह -पंद्रह लीटर की बाल्टियाँ उठाये सरोज |
चक्करदार संकरे जीने से ऊपर दालान पर, फिर अपनी छत पर आ बड़े -बड़े ड्रम में ओझती सरोज | मुँह में कपडा ठूंस - ठूंस कर माँ-बहनों से पिटती सरोज | पड़ोस की चाची, भाभी ,सखी से बतियाती सरोज | हर काम के लिए सदा तैयार रहती सरोज |
छुटपन से देखती आ रही थी कि सरोज जीजी कितना काम करती | सुबह-सुबह उठकर घर के दस काम कर टाइप सीखने जाती | बड़ी बहनों की नौकरी लगने पर उनकी चाकरी करती | वे एक पैसा भी घर में न देतीं | सरोज जीजी टाइपिंग में पूरे दिन खटर - पटर कर चार पैसे जुटाती तो वे भी घर में लगा देती |मामूली सी शक्ल- सूरत पर दिल इत्ता बड़ा | माँ-बापू से कभी तारीफ के बोल न मिलते | बाबूजी व इकलौते भाई अतुल के लिए चाय बनती | मुआ कड़क टाइपराइटर जब उसकी नरम अंगुलियाँ टक-टक कर थका देता तो उसका भी जी करता कि एक कप चाय उसे भी नसीब हो | पर वह तो सरोज ठहरी | किस्मत की मारी | कोई नेह नहीं |लगाव नहीं | मोह, प्रेम, लगाव बस काम करवाने का | घर की माली हालत भी ठीक न थी | बाबूजी मुनीमी में दो वक़्त की रोटी भी न जुगाड़ पाते | ऊपर से चार छोरी, एक छोरा | सात प्राणियों की गुजर-बसर एक महाभारत थी | सारा दारोमदार सरोज पर था | घर - बाहर फिरकी बनी घूमती | कंधे पर सलीब उठा रखा था | कमरतोड़ मेहनत ने रंग दिखाया |
टाइपिस्ट बनी प्रदेश के सेल टेक्स ऑफिस में | पगार मिलने लगी | घर चमकने लगा | बेंत का फर्नीचर आ गया | गोदरेज की अलमारी आ गयी | सबने अपना -अपना सामान जँचा दिया |
सरोज के लिए जगह एक इंच भी न बची | दीवार में लगी बिना पल्ले की पुरानी अलमारी में ही उसने सामान ठीक किया | कुछ महीने बाद नया छोटा टी. वी. आ गया | अपना -अपना काम निबटाते सब चित्रहार , पिक्चर , सीरियल्स पर आ धमकते | पडोसी भी दालान में , छज्जे पर मुंडेर पर भीड़ जुटाते | उस दर्शक - दीर्घा में टी.वी. मालकिन सरोज ही नदारद रहती | टाइपराइटर उसे अपने से अलग ही न करता | एक्स्ट्रा काम , एक्स्ट्रा पैसा | घर के एक्स्ट्रा खर्चे | बड़ी बहन की शादी हुई | सरोज ने पैसा लगाया | दूसरी बहन के विवाह में भी सरोज की कमाई ठिकाने लगी | सरोज की माँ को अब चिंता सताने लगी ,'सरोज के बाउजी ! अब सरोज को ही ब्याहनो है | पर जाके जाए घर कैसे चलेगो ? ' 'तू का बावरी है गयी है ? जाए हवाल कैसे ब्याह दिंगे ? ' पिता की व्याव्हरिकता दृष्टव्य थी | माँ की चिंता भी

सहज थी | ' तो का घर बैठारोगे ? ' 'अरी नाय, अभी साधना बैठी है |' पिता ने सहज ही कहा | ' साधना तो सरोज ते छोटी है | पहले छोटी कौ.......?' माँ ने संदेह किया तो पिता ने आश्वस्त किया ,'और का...... साधना तो नौकरी करत नाय | फिर सरोज के जाए पीछे साधना को ब्याह कैसे होएगो ? सो पैले साधना फिर सरोज|
अभी अतुल भी पढ़ रह्यो है |'
' सरोज ते का किंगे ...?' माँ का स्वर चिंतित था | चिंता थी सरोज को मनाने की , उसका घर बसाने की नहीं |
' बाए मै देख लूँगो | तू चुपकर |'
बाउजी ने माँ को तसल्ली दी |
सरोज को प्यार-मनुहार दिखाया | घर की परेशानी बता साधना की शादी के लिए मना लिया गया | साधना के फेरे पढते सरोज खल्लास | पाई-पाई चुक गयी | और उम्र यौवन की ढलान पर | लम्बी चौड़ी कदकाठी, भरपूर यौवन लिए अपनी उम्र में सरोज भी आकर्षक दिखा करती | किन्तु अब कुम्हलाये गोभी के फूल जैसी होती जा रही थी | मोटा चश्मा अब आँखों का हमदम बन गया था |
बहनें आती-जाती | उनके लेन-देन के नेग निभाती सरोज के दिल में हूक उठती | काश ! उसका अपना भी घर होता | पति-बच्चे होते | यहाँ सब पैसे के साथी हैं | भावना का कोई साथी नहीं | माँ भी नहीं | चालीस पर होते ही रिश्ते आने बंद हो गए | माँ-बाबूजी की तो मन की हो गयी | दिखावा करते,' जा छोरी की किस्मत में का लिखो है | कहीं बात ही न बनत |'
मन ही मन आक्रोश का ज्वालामुखी फटता - उसकी उम्र में तो चिंता नहीं की | अब नौटंकी दिखा रहे है | ' मन मसोसती बेचारी |

अपने संपर्क से सरोज ने कम पढ़े भाई की भी नौकरी लगवा दी | अतुल ने कोर्ट-मेरिज कर ली | नई भाभी को खटकती रही सरोज | चुप्पा सरोज का मुँह नई भाभी के सामने खुलने लगा | अतुल भी बीबी की हिमायत लेता | घर में तनातनी रहती | माँ-बाबूजी भी सरोज को समझाते | बहनें भाभी का ही पक्ष लेती, 'तेरा अपना कोई नहीं | माँ-बाबूजी कब तक हैं ? भैया -भाभी के सहारे ही जीना है तूने | गम खाने से कोई छोटा नहीं हो जाता | इस उम्र में कहाँ जाएगी भला | माँ-बाबूजी भी इनके भरोसे है |'

सरोज समझ न पाती, ' सबको संभाला मैने | घर भरा मैने | बहनें ब्याहीं मैने | माँ-बाबूजी की जिम्मेवारी निभाईं मैने | नेग-रसम संजोए मैने | और मेरा आसरा ये .... ! मेरा पैसा भी इन्हें व इनके बच्चों को ही पुजता रहेगा न | फिर भी चुप रहूँ मै ?' तमतमाई भुनी लाल मिर्ची सी दहकती रही सरोज | इतना अकेलापन ......सबको अपना समझा | सबके दुःख-दर्द सांझी किये | आंसू की जगह मुस्कान भरी | सब पराए निकले | इन सबके लिए वह ही गलत .....? नहीं.. अब और नहीं | एक बर्फीली ख़ामोशी ओढ़ ली सरोज ने | दिमाग सुन्न हो गया | मशीनवत कार्य करने लगी | ऑफिस में भी सुनती --- बुढिया होती

जा रही है | सठिया गयी है | ब्याह नहीं हुआ न | कोई प्यार का मरहम रखने वाला नहीं | यदा-कदा कोई मुंहजोरी भी करने लगता | सहयोगी मजे लेते | चटखारे ले बात बनाते | नया कपडा पहनने पर बूढी घोड़ी लाल लगाम से नवाजते | सरोज के तन-बदन में आग लग जाती | घर-ऑफिस दोनों मोर्चों पर सरोज ने कभी मात न खाई | अब ढलती आयु के ढलवां ढलान पर दोनों उसे नोचे जाते है | उसकी भावनाओं पर तुषारापात होता है |
सीली लकड़ी की मानिंद सुलगती रहती | क्या करे ? घर छोड़ दे ? नौकरी छोड़ दे ? जिए न जिए ? जिए तो किसके लिए ? अपने लिए ? अपने लिए भी लोग जीने नहीं देते | मरना आसान है जीना मुश्किल | तिल-तिल कर जीना मरने से भी भयावह है | काले पानी की सजा से भी बढ़कर |

जब हम कशमकश की घनी अँधेरी निर्जन गुफा में हाथ-पांव मार रहे होते है तो कोई जुगनू अँधेरा चीर रास्ता बन जाता है | सरोज के ऑफिस में ओल्ड एज होम से एक सरकारी काम आ गया | फोन मिलाया| समय लिया | संपर्क बढाए | बात बन गयी | ज्ञात होते ही माँ ने नाराजगी ज़ाहिर की, 'अब तू ओल्ड एज होम में बूडन के संग रहेगी?'

'तो क्या हुआ माँ ? मै भी तो बूढी हो रही हूँ |' वाद-प्रतिवाद बढ़ता गया |
'और तेरी नौकरी ? तनख्वाह ?'
' मेरे साथ मेरी नौकरी | नौकरी के साथ पगार |' सरोज दृढ थी |
'तो अब सब कुछ वहीँ पे दे देगी ? जे भाई-भतीजा सबन कू भूल जाएगी | माँ-बाबूजी ....?' माँ ने रिसते रिश्तों का वास्ता देते हुए फुसलाना चाहा | 'जहाँ मुझे अपना समझेंगे , उनका सुख-दुःख बाटूंगी | उनका भी मेरी तरह कोई अपना नहीं | सब मतलब के यार है | अपनों के सताए हुओं को मेरी पीड़ा अनुभूत होगी | रही बात बाबूजी की तो अब मैने अपना रास्ता पकड़ लिया है | रास्ता है -- अपनेपन का , प्रेम का , विश्वास का |

शहर की दूसरी ब्रांच में ट्रांसफर करवा सरोज सदा के लिए ओल्ड एज होम आ गयी | गैरों को छोड़कर जो अपनों के भेष में उसे लूट- खसोट रहे थे | दुखियों के बीच जहाँ हरेक अपना दुःख बाँटना चाहता था | साथी चाहता था | ख़ुशी के लिए नहीं , दुःख के लिए | सहारा तो है दुःख का ही सही | दुःख अपनों का, अपने जैसा दुःख |

हथेलियों में कंपन



तेजेन्द्र शर्मा

नरेन के लिये यह पहली हरिद्वार यात्रा नहीं है...

वह इससे पहले बहुत बार हरिद्वार जा चुका है। उसके रिश्तेदारों में शायद ही कोई ऐसा परिवार होगा जिसके परिवार के किसी **न** किसी सदस्य की अस्थियां उसने वहां जा कर गंगा में **न** बहाई हों। वह शिव है... हर परिवार की मृत्यु का ज़हर वह स्वयं पी जाता है।

वैसे मुझे उनके बारे में आदर से बात करनी चाहिये क्योंकि वे मेरे मौसा हैं। किन्तु नरेन्द्र नाथ त्रिखा लिखने में **वह** बात नहीं आती जो नरेन में है। पूरा नाम लिखने से आदर भाव तो आ जाएगा मगर चरित्र पूरे का पूरा बदल जाएगा। मौत का जो ज़हर उन्होंने अपने भीतर कहीं छिपा कर रखा हुआ है, उस ज़हर का आभास नरेन नाम से अधिक हो सकता है।

मृत्यु क्या केवल एक शारीरिक स्थिति है? क्या कर्मकाण्ड जीवन और मृत्यु के साथ जुड़ा रहना चाहिये? क्या किसी की मृत्यु पर रोना आवश्यक है?... मुझ जैसे अज्ञानी लोग इन सवालों से जूझते रहते हैं। नरेन को इन सवालों से कुछ लेना देना नहीं है। उसका बचपन जीन्द नाम के छोटे से शहर में बीता है। उसके पिता घर में स्याही बनाने का काम करते थे और अपने शहर में सप्लाई करके किसी तरह घर का ख़र्चा चलाते थे। आर्य-समाजी थे पिता। घर में हर रविवार को हवन होता था। पूरे घर में हवन-सामग्री और देसी घी की ख़ुशबू हमेशा महसूस की जा सकती थी। उसी हवन-सामग्री और देसी घी से बना था नरेन का व्यक्तित्व।

सादगी की इन्तेहा यह कि जो कपड़े उनकी पत्नी ख़रीद देती, बस पहन लेते। जब विवाह हुआ था तो भारतीय रेल में फ़ायरमैन की नौकरी करते थे। फ़ायरमैन आजकल नहीं होते क्योंकि रेलगाड़ी अब भाप के इंजिन से नहीं चलती। फ़ायरमैन अब केवल हमारी यादों का हिस्सा हैं। वह रेलगाड़ी चलाते नहीं थे उनका काम होता था भाप इंजिन में कोयला भट्टी में झोंकना। फिर उस कोयले से पानी गरम होता और भाप बनती जिससे इंजिन चलता और रेलगाड़ी को खींचता।

मुझे भी मौक़ा मिला था नरेन मौसा के साथ उनके इंजिन में बैठकर दिल्ली से जीन्द जाने का। उनके ड्राइवर का नाम शिवनाथ था... गहरी दोस्ती थी दोनों में। दो महीने पहले उसकी अस्थियां भी हरिद्वार पहुंचाने गये थे। शिवनाथ का शरीर पांच फ़ुट ग्यारह इंच से सिकुड़ कर

शायद पांच फ़ुट का ही रह गया था।.. कैंसर... शरीर को खोखला कर के, उसे निचोड़ कर बस एक कमण्डल **भर** अस्थियों में परिवर्तित कर गया था।

मुझे याद है कैसे नरेन मौसा जब इंजिन की भट्ठी में कोयला डाल रहे थे तो उनके गोरे बदन पर कोयलों की कालिख़ भी उन्हें स्मार्ट-लुक दे रही थी। नरेन मौसा उन दिनों बिल्कुल फ़िल्म कलाकार धर्मेन्द्र जैसे दिखा करते थे। दिसम्बर की छुट्टियां जब क्रिसमिस मनाने लोग दिल्ली और **मुंबई** जाते थे, मैं ऐसे समय में जीन्द जा रहा था। छ**ठी** कक्षा में भी मैं अंग्रेज़ी अच्छी बोल लेता था... नरेन मौसा रास्ते भर मुझ से अंग्रेज़ी में बात करते रहे... शायद ड्राइवर शिवनाथ अंकल पर मेरी अंग्रेज़ी की धौंस जमा रहे थे। इंजिन की आग की गर्मी दिसम्बर की सर्दी को हमसे दूर रखे हुए थी। इंजिन का माहौल भी कुछ रहस्यमयी सा था... गाड़ी बहादुरगढ़ और रोहतक होती हुई जीन्द जा रही थी। मुझे इंजिन यात्रा का **वह** रोमांच जीवन भर याद रहेगा... मैं सारी रात जागता रहा... बाल मन की उ**त्सुक**ताएं... भला कैसे आसानी से शान्त हो पातीं....

नरेन मौसा का विवाह मुझे हमेशा उन पर अत्याचार जैसा लगा। नरेन मौसा के मुक़ाबले हमारी विमला मौसी सादा और घरेलू ही मानी जाएगी। कहने को तो दोनों ही दसवीं पास थे... उस ज़माने के पंजाब मैट्रिक... सुनकर बहुत अच्छा लगता था कि फ़लां फ़लां ने पंजाब मैट्रिक पास कर ली है। फिर कुछ लोग प्रेप करते थे, फिर इन्टर और बाद में बी.ए.... मगर न तो नरेन मौसा ने ही बी.ए. की और न ही विमला मौसी ने। मगर नरेन मौसा ने हमारी मौसी को हमेशा बहुत आदर सत्कार के साथ रखा... पूरे परिवार में उनकी पूरी इज्ज़त थी।

नरेन मौसा को अब तो हरिद्वार का रास्ता भी अच्छी तरह याद हो गया है। दिल्ली से ग़ाज़ियाबाद, मेरठ, मुज़्ज़फ़र नगर, रूड़की और हरिद्वार।... करीब पांच घण्टे का रास्ता पड़ता है कार से। वैसे पानीपत और सहारनपुर के रास्ते भी हरिद्वार जाया जा सकता है, मगर नरेन मौसा को मेरठ और मुज़्ज़फ़र नगर वाला रास्ता ही पसन्द है।

अपने पिता, चाचा, मामा, दो साढ़ुओं, एक साली, एक साले, अपने समधी और कई दोस्तों की अस्थियां हरिद्वार पहुंचा चुके हैं। आजकल हमारे कुनबे के वरिष्ठ नागरिक हैं। उन्हें परिवार के बारे में पूरी जानकारी भी है कि मेरी मां झंग (अब पाकिस्तान में) में कहां रहती थीं, या फिर मेरे पिता जी पाकिस्तान में कहां रहते थे। भारत में भी अम्बाला, करनाल, फ़िरोज़पुर, दिल्ली, मुंबई - सभी जगह के रिश्तेदारों के साथ उनका संपर्क रहता है। वे सबके हैं... बस सवाल एक ही है क्या कोई उनका भी है।

"काका, असी पंजाती ब्राहम्ण होन्दे हां।... यानि पंज जातां... तुसी मोहला हो... ते मैं त्रिखा... ते तुहाडे माता जी होए झिंगन.... यानि कि त्रिखा, मोहला, झिंगन, जेतली ते कुमड़िया... बस ऐे पंज जातां होन्दियां ने। साढ़ा इलाका वेस्ट पंजाब है ते असी सारस्वत ब्राहम्ण होन्दे हां।

गोत्र साढे सारियां दे अलग अलग ने। साढा गोत्र है वशिष्ट, ते तुहाडी माता जी दा है भारद्वाज, पर तुहाडा गोत्र बड़ा मुश्किल वाला है... बड़ा घट सुणन विच आन्दा है... तुसी लोग सोमस्थम गोत्र वाले हो।... बहुत पुराणे ऋषि सी सोमस्थम... कहन्दे ने कि वेदां दे हिसाब नाल हवन शुरू करन वाले ऋषि सी।" यह मेरी नरेन मौसा के साथ पहली हरिद्वार यात्रा थी।

नरेन मौसा जानते हैं कि मुझे पंजाबी ठीक से समझ नहीं आती... अधिकांश समय मुंबई में बीता है... अंग्रेज़ी में पढ़ाई, रहने को मुंबई शहर... थोड़ी बहुत मराठी तो समझ भी लेता था, बोल भी लेता था मगर पंजाबी भला किस किस के साथ बोलता। फिर भी मुझ से हमेशा पंजाबी में ही बात करते हैं। वैसे मेरी मां भी मुझसे पंजाबी में ही बात करती हैं... मां की पंजाबी के एक एक शब्द का अर्थ समझ जाता हूं।

भाषा किस तरह का जुड़ाव पैदा कर देती है। मराठी का काम-चलाऊ ज्ञान होने के बावजूद जब आसपास कोई मराठी बोलता है तो लगता हे कि मेरा कोई अपना है। ठीक उसी तरह पंजाबी में पैदल होने के बावजूद जब कोई पंजाबी बोलता है तो भी अपना ही लगता है। मगर घर से इतनी दूर विदेश में बसने के बाद तो किसी भी भारतीय भाषा बोलने वाला अपना लगता है।

हरिद्वार के पण्डों की भाषा मुझे बिल्कुल समझ नहीं आई थी। नरेन मौसा ने मुझे रास्ते में ही समझा दिया था, "काका, तूं उत्थे कुझ बोलणा नहीं। बस चुप करके देखदा रहीं। मैनूं गल करण दईं। ऐह पण्डे खल लाह लैन्दे नें।"

नरेन मौसा इन पण्डों को अच्छी तरह समझते थे। उन्हें इन सबसे बातचीत करने का एक लम्बा अनुभव है। यह सोचने पर मजबूर हो जाता हूं कि इतने धार्मिक होने के बावजूद नरेन मौसा कर्मकाण्ड में पूरा विश्वास नहीं रख पाते । दरअसल आर्यसमाजी होने की वजह से भी सोच कुछ अलग थी...

हरिद्वार पहुंचते ही मेरे मन में विचार आया कि सुबह तक प्रतीक्षा करते हैं और सुबह अपने पारिवारिक पण्डे को ढूंढ कर उसी से श्रद्धापूर्वक सारी विधि करवा ली जाए। मगर नरेन मौसा भला कहां मानने वाले थे, "ओय, तैनू नहीं पता, सब दे सब लुटेरे ने। असी कोई सीधा सादा पण्डा ढूंढ के उससे अस्थि विसर्जन करवा लेंगे।... बस सवेरे जा कर तुम्हारे परिवार के पण्डे के पास जा कर मौत दर्ज करवा लेंगे। उसके पास यही ज़रूरी काम है।"

बाऊजी की मृत्यु के झटके से भला कहां उबरा था। नरेन मौसा की एक एक बात मेरे लिये फ़रमान था। मुझे आशा थी कि किसी ऐसी जगह जाकर अस्थि विसर्जन करेंगे जैसा कि गंगा

नदी को चित्रों में देखा है। मगर नहीं... एक पण्डा मिला जिसने कहा कि यहां ऊपर जो धारा बहती है यहां बेहतर अस्थि विसर्जन होता है। नरेन मौसा ने हामी भर दी।

मुझे कुछ समझ नहीं आ रहा था... मृत्यु सीधी और सरल क्यों नहीं हो सकती? क्यों कुछ लोग मृत्यु में भी ऑनर्स और पीएच. डी. कर लेते हैं। क्यों हम मरने के बाद उनके द्वारा लूटे जाने पर भी उफ़ नहीं करते? क्यों हर मज़हब का इन्सान मौत के सामने इतना बेचारा हो जाता है? क्यों हम मृतक की आत्मा की शान्ति के लिये बेवक़ूफ़ियों **पर** बेवक़ूफ़ियां करते चले जाते हैं? हम तो महानगरों में रहने के कारण पूरी तरह से धार्मिक नहीं रहे... मगर जो छोटे शहरों, कस्बों या गांव में रहते हैं... उनका शोषण ये धर्म के ठेकेदार किस तरह करते होंगे।

मैनें एक बार फिर शंका जताई कि हमें अपने पुरखों वाले पण्डे को सुबह ढूंढना चाहिये। इस पर पण्डे को लगा कि शिकार हाथ से गया। बिना वक़्त गंवाए बोला, "जी, अपना नाम बताइये, मरने वाले का नाम बताइये... पूरा नाम... आपसे क्या रिश्ता था... कहां के रहने वाले थे... उनके पिता का नाम... गोत्र क्या था...." पूरी तरह से यांत्रिक तरीक़े से बातचीत हो रही थी। पण्डा सही ग़लत संस्कृत में श्लोक बोले जा रहा था और मुझे अपने पीछे दोहराने के लिये कह रहा था। जितना मुझे समझ आ रहा था उतना मैं दोहराए जा रहा था।

इतने में उसे पीछे से एक आवाज़ आई। लगा कि कोई और नई आसामी फंसने वाली है। पण्डे ने कहा, बस थोड़ी देर के लिये रोक के रख। अभी आता हूं।

मुझे अपने बाऊजी की बातें याद आ रही थीं... बाऊजी अब केवल अस्थियां बन चुके थे। मेरे बाऊजी अपने ज़माने के मॉडर्न आदमी थे। उनका एक अंग्रेज़ औरत से इश्क था। दोनों शादी करना चाहते थे। मगर दादा जी के दबाव, परिवार की कटती नाक, और बिरादरी का डर... सब मेरे बाऊजी के प्रेम पर हॉवी हो गये... बाऊजी अपनी मर्जी का विवाह नहीं कर पाए। और भारत का बंटवारा हो गया...स्वतन्त्र भारत में जिस औरत के साथ दादा जी ने बांध दिया... बंध गये।

अगर बाऊजी ने उस अंग्रेज़ औरत से विवाह कर लिया होता तो क्या मेरा कोई वजूद होता? फिर तो बाऊजी का बेटा एंग्लो इण्डियन होता... क्या वह मेरे बाऊजी की अस्थियां ले कर हरिद्वार आता। वैसे कई बार यह भी सोचा कि अचानक एक दिन एक गोरा सा लड़का आकर सामने खड़ा हो जाए और मेरे बाऊजी से कहे कि मैं तो आपका पुत्र हूं।... मैं तो पल भर में उसे बाहों में भर कर अपना भाई बना लेता... मगर मां... ! उन पर क्या गुज़रती... ? लेकिन मेरा विवाह बाऊजी और मां ने मेरी मर्ज़ी के हिसाब से कर दिया था। एक बार भी नहीं कहा कि पूनम के मां बाप की जाति हमसे नीची है या फिर बिरादरी का रोना... कुछ भी

नहीं हुआ... बस मैंने बताया और बाऊजी और मां जा कर पूनम के माता पिता से बात कर आए।

पण्डे ने मेरी सोच को झटका दिया, "जी जजमान, आपने अभी ग्यारह पण्डितों को भोजन करवाने का संकल्प लिया है। आप उसके पांच सौ पचास रुपये यहां रख दीजिये।"

"मगर, मैंने कब संकल्प लिया?"

"अरे अभी आप मेरे श्लोकों के पीछे दोहरा रहे थे न।"

मौसा जी का एक नया ही रूप मेरे सामने उभर कर आया, "देख भाई जवान, हमारे काके ने ग्यारह नहीं इक्कीस ब्राहम्णों को खाणा खिलाणे का संकल्प लित्ता है। मगर वो खाणा यहां नहीं खवाएगा। ये खाणा खिलावेगा मुम्बई में, जहां ये रहता है। आप इक्कीस ब्राहम्ण ले कर इनके घर पहुंच जाओ, बस जाके छक के भोजन कर आवो।"

पण्डा बगलें झांक रहा था। "ऐसे थोड़े ही होता है सेठ।" अचानक हम जजमान से सेठ बन गये थे।

"ओए गल्ल सुण जवान, तूं साढे नाल मज़ाक ना कर, ते हम तेरे नाल मजाक नहीं करेंगे। लै पकड़ इक सौ इक्यावन रुपय्ये... आप वी ख़ुश रह ते सानू वी ख़ुश रहण दे।" मौसा जी का अनुभव उनके शब्दों में साफ़ सुनाई दे रहा था।

अंतिम संस्कार में भी दुकानदारी... फिर वही पुरानी कहावत याद आती है... कहावतें पुरानी हो कर भी अपना अर्थ नहीं खोती हैं... घोड़ा अगर घास से यारी करेगा तो खाएगा क्या... शायद इन पण्डों के लिये भी मजबूरी है। महंगाई के साथ साथ घर चलाना है... कोई और ज़रिया तो है नहीं आमदनी का... जैसे डॉक्टर अपने मरीज़ों के साथ सहानुभूति नहीं कर सकता ठीक वैसे ही **मरघट** और हरिद्वार के पण्डे भी अपने ग्राहकों के साथ रियायत नहीं कर सकते। इनका रिश्ता ही ऐसा है।

रिश्ते कैसे हमें छोड़ छोड़ कर कहीं दूर चले जाते हैं। मगर हम उन्हें केवल हरिद्वार तक पहुंचा पाते हैं... हरिद्वार से हरि तक की यात्रा वे अकेले ही करते हैं...हरिद्वार जब पहली बार रात को देखा तो समझ ही नहीं आया कि जो हम पिक्चरों में देखते हैं **वह** हरिद्वार कहां है... नरेन मौसा रात को अपने जाने पहचाने गेस्ट हाउस में ले गये। न जाने वहां कितनी बार ठहर चुके हैं... रिसेप्शन पर बैठे व्यक्ति ने उन्हें पहचान भी लिया। उसकी आंखों में एक प्रश्न दिखाई दे रहा था, "अबकी किसे ले आए?"

नरेन मौसा भी देख कर ख़ुश थे कि रिसेप्शनिस्ट उनको पहचानता है, "देख भाई जवान, हमें एक कमरा चाहिये जिसमें दो बेड हों, साफ़ सुथरा हो, और बस आज की रात ही रहना है हमको।... और हां नाश्ता हम बाहर ही करने वाले हैं... अगर सुबह की चाय मिल जाए तो हमारा काम हो जाएगा।" मैनें होटल का नाम पढ़ा... हर की पौड़ी !

अब मेरी बारी थी। नरेन मौसा अब मुझे समझाने लगे, "देखो पुत्तर, रहणे को तो हम फाइव स्टार होटल में भी रह लें। मुझे पता है कि तुझे पैसे की कोई कमी नहीं। पर असी अपणा पैसा सुट्टिये क्यों? रातां दिया नौकरियां कर कर के पैसा कमाया है तूं।"

रात को नीन्द कैसे आती... क्या रात अभी बाक़ी थी... घड़ी देखी... अब इसे सुबह के दो बज कर पैंतालीस मिनट कहे या फिर या फिर रात के। सुबह सुबह तो नहा धो कर निकलना होगा अपने पण्डे को खोजने।

"काका तूं वेखीं... कोई परेशानी नहीं होणीं... बस असी उत्थे किसी वी पण्डे नूं पुछ लांगे कि साढा पण्डा किथे है, ते मजाल है कि कोई वी साढे नाल झूठ बोल जावे... इन्हां पण्डयां विच आपस विच बड़ी ईमानदारी है। कोई किसे दा जजमान नहीं मारदा। तूं कल वेखीं।"

मौसा जी को शायद थोड़ी परेशानी हो रही थी कि मैं कुछ जवाब नहीं दे रहा था। मैं लगातार सोच रहा था कि बाऊजी को रात को कैसा महसूस हुआ होगा। ऐसा कैसे संभव है कि एक इन्सान रात को सोए और सुबह उठे ही नहीं। नरेन मौसा भी कह रहे थे, "काका तेरे बाऊजी नूं तां देवतयां वर्गी मौत मिली है। इस तरह नीन्द विच उडारी भर लैणी।... बड़े किस्मत वालियां नूं एहो जही मौत मिलदी है।"

बात करते करते नरेन मौसा के ख़र्राटे सुनाई देने लगे। उनका जीवन कितना सरल है कितना निश्छल। मेहनती इन्सान हैं, मानवता उनमें कूट कूट कर भरी है। किसी के साथ छल कपट नहीं। मेरे बाऊजी ने ही उनका रिश्ता मेरी मासी से करवाया था। बाऊजी हमेशा कहा करते - "भाई नरेन्दर ने निभाया बहुत सोहणा है... अपणे परवार लई जान देंदा है।"

मेरे शरीर का कुछ ऐसा हाल था कि जागूं तो नींद आए और सोने का प्रयास करूं तो नींद निकट न आए। उस थके हुए शरीर को जब गरम पानी से स्नान करवाया तो महसूस हुआ कि शरीर अभी जीवित है। कमरे में फ़ोन नहीं था। नरेन मौसा मुझसे पहले ही नहा चुके थे। मैंने अभी तक कमरे को ठीक से देखा नहीं था। दो सिंगल बैड जोड़ कर बिछाए हुए थे। इसीलिये रात को दोनों को अलग अलग कम्बल मिल गये थे। कम्बलों के नीचे और ऊपर सफ़ेद रंग की चादरें थी। कपड़े टांगने की एक अल्मारी, एक मेज़ और एक कुर्सी। टी.वी. या रेडियो जैसी कोई चीज़ नहीं दिखाई दे रही थी। हां ऊपर एक सीलिंग फ़ैन यानि कि छत का

पंखा ज़रूर लगा हुआ था। मौसम ऐसा नहीं था कि हमें उस पंखे की आवश्यकता महसूस होती। कमरा साफ़ था... यही वादा नरेन मौसा ने किया भी था कि कमरा साफ़ होगा।

नरेन मौसा के आदेशानुसार ट्रे में रखी दो चाय और बिस्कुट भी आ पहुंचे। मौसा चाय को सुड़क कर पीते हैं। कहते हैं कि जब तक चाय को सुड़का ना जाए तो चाय का स्वाद ही नहीं पता चलता। चाय पीते पीते ही एक सवाल दाग़ दिया, "मौसा जी, जब अस्थि विसर्जन हो ही गया है तो फिर हम अपने पण्डे **से** मिलने क्यों जा रहे हैं।"

"काका जी, बात ये है कि हमने जाके आपके पण्डे के पास बाऊजी की मौत रजिस्टर करवानी है। ये पण्डे दुनियां के किसी भी कम्प्यूटर से ज़्यादा ऑर्गेनाइज़्ड हैं। ये आपकी पिछली सात पुश्तों की हिस्टरी आपको बता सकते हैं। आपके बाऊजी जब अपने पिता जी को यहां छोड़ने आए थे तो उन्होंने एक रजिस्टर में साइन किये होंगे। उसकी एन्ट्री भी आपको मिलेगी। इन पण्डों के बहीखाते तो गिनेस बुक में रजिस्टर होणे चाहियें।"

मौसा जी ने पहले एक दुकान पर रुक कर पूरी भाजी का ऑर्डर दिया... वहीं कुर्सियां लगी थीं। अनमने भाव से मैंने पूरी खानी शुरू की... वैसे ही पूरी परांठे छोड़े हुए एक लम्बा अर्सा हो गया है... कमर का कमरा बनता जा रहा है... मगर बेदिली से ही पूरी और आलू की भाजी खाने लगा...पूरियां अच्छी बनी थीं मगर जब खाने की इच्छा न हो तो माल पूड़े भी लौकी और तुरई जैसे लगने लगते हैं।

मैंने अपने मन की दुविधा नरेन मौसा के सामने उड़ेल दी, "मौसा जी, ब्राह्मण तो हम भी हैं, फिर हम अपने ही अंतिम संस्कार के लिये आचार्य और पण्डों पर क्यों निर्भर करते हैं। हम लोग अपने परिवार में ही किसी को यह विधि क्यों नहीं सिखा लेते? "

"कौण सिखेगा ? ना तूं सिखेंगा ?.... काका कहणा बड़ा असान है, पर करण वास्ते कोई तैयार नहीं होन्दा। तूं आप हवाई जहाज दी नौकरी करदां हैं... भला तूं एह कम किवें कर सकदा हैं।... दरअसल असी उच्चे कुल दे ब्राहम्ण होन्दे हां। ऐह आचार्य वगैरह मैले ब्राह्मण होन्दे ने... छोटे ब्राहम्ण... मुर्दयां दा ऐही खा सकदे ने। सानु मनाही है मुर्दयां दा खाणा।"

बातें करते करते हम पहुंच गये हर की पौड़ी... मुझ जैसा नास्तिक भी उस दृश्य को देख कर कुछ समय के लिये परमात्मा में विश्वास करने लगा... अद्‌भुत नज़ारा... वहां एक पण्डे से पूछा कि पंजाब के मोहला लोगों के महन्त कहां होते हैं... उन लोगों ने आपस में कुछ खुसर पुसर की... इससे पहले कि कोई हमें बता सकता एक और पण्डा आया, "बोलो साब, क्या काम है ?"

पहले पण्डे ने उसे बीच में ही टोक दिया, "अरे कुछ नहीं, इनका अपना महन्त है।... जी सेठ, आपके पण्डे का नाम है पंडित हुकुम चन्द पाठक... दरअसल आपके पण्डे थे पाठक जी,

उनकी तो हो गई मृत्यु। आजकल उनका काम उनकी पत्नी देख रही है - शकुन्तला पाठक। यहां नज़दीक ही बड़े बाज़ार में उनकी हवेली है - रामगिरी हवेली। यहां से कोई दस बारह मिनट लगेंगे पैदल चलने में। ...वहां आप मौत रजिस्टर करवा सकते हैं।... वैसे वह डांट देती है.... बुरा ना मानियेगा। ”

इतनी ईमानदारी बहुत कम देखी थी। अभी कुछ ही क़दम चले थे के मौसा जी ने कहा, “काका जी, गंगा-स्नान करणा है ?”

“जी मौसा जी, पहले काम कर आते हैं, फिर वापसी में कर लेंगे। ”

मौसा जी को पण्डों का मज़ाक उड़ाने में बहुत आनन्द की अनुभूति होती थी, “काका, ऐथों दे पण्डयां ने इक अलग दुनियां वसाई होई है। ऐ लोग इन्सान दी छिल लाह लैन्दे ने।... आ तैनूं इक तमाशा दिखावां।”

इसके साथ ही मैंने देखा कि चारों तरफ़ से घिरा एक स्थान है जहां एक गाय **बंधी** खड़ी है, एक चारपाई है, एक बिस्तर बंधा हुआ है, एक लालटेन, एक छाता, एक टाइम पीस, एक जोड़ी मर्दाना कपड़े और एक जोड़ी ज़नाना कपड़े, एक मर्दानी चप्पल और एक ज़नाना चप्पल। वहां पास एक और खटिया पर एक पण्डा सुस्ता रहा था। मैं अनायास पूछ बैठा, “ये सब क्या है?”

नरेन मौसा से पहले ही पण्डा स्वयं बोल पड़ा, “देखो बेटा हम यहां क्रियाकर्म करते हैं। मरने वाले की आत्मा की शान्ति के लिये हम वे सब चीज़ें यहां रखते हैं जिनकी उसे अगली ज़िन्दगी में ज़रूरत होगी। तुम यहां मृतक के नाम से जो जो चीज़ें दान कर जाओगे, वे सब उसे स्वर्ग में मुहैय्या हो जाएंगी। यहां पांच सौ से ले कर पांच हज़ार तक के क्रियाकर्म की सुविधा मौजूद है।”

मेरी आंखों में अनिश्चितता देख कर पण्डा स्वयं ही बोल पड़ा, “इसमें परेशान होने की तो कोई बात ही नहीं ना। देखिये अगर आपका बजट पांच सौ रुपये का है तो बस आप खाट, बिस्तर और कपड़ों को हाथ लगा दीजिये। ये मृतक के नाम से दान हो जाएंगे। जैसे जैसे आप नग बढ़ाते जाएंगे, वैसे वैसे दाम बढ़ते जाएंगे। पांच हज़ार में गौदान का लाभ भी मिल जाएगा।”

हड्डियां दिखाई देती गाय जैसे **पु**रज़ोर तरीके से हमें बता रही थी कि जो पैसे गौदान से पण्डे को मिलते हैं उनके दस प्रतिशत भी गाय के पेट में नहीं जाता। कहते हैं कि धर्म श्रद्धा पर निर्भर करता है मगर यहां तो धर्म का पूरा व्यवसायीकरण हो चुका है।

मेरी कोई रुचि न देखकर पण्डे ने आख़िरी अस्त्र चलाया, “देख लीजिये सेठ, आपको डिस्काउण्ट भी मिल सकता है। चलिये हटाइये साढ़े तीन हज़ार में पांच हज़ार वाली क्रिया करवा लीजिये। आपको कुछ ख़ास तो करना नहीं है, बस जो जो चीज़ क्रियाकर्म में शामिल करनी है उसको छूना है और मेरे पीछे मन्त्रों का जाप करना है। ज़्यादा से ज़्यादा बीस मिनट का काम है।” और मैं सोच रहा था कि यह सारा सामान जो सामने रखा है, दिन भर में कितनी आत्माओं की शांति के लिये इस्तेमाल में लाया जाता होगा... दिन-ब-दिन, सप्ताह दर सप्ताह और फिर महीना और साल। आत्माओं को भी ठगा जा रहा है।

मुझे यह भी समझ नहीं आ रहा था कि मैं अपने बाऊजी के अस्थि विसर्जन के लिये आया हूं या आलू बैंगन ख़रीदने। कितनी बेशरमी से मोल भाव हो रहा था। ढिठाई उस पण्डे के चेहरे पर बेग़ैरती से छाई हुई थी। वहां रुकना संभव नहीं लग रहा था। बाज़ारवाद तो यहां नहीं पहुंचा फिर यह सब क्या है? एक तरह से मृत्यु का बाज़ार तो लगा ही है... गंगा के किनारे आपके सामने नदी से पानी भर भर कर गंगाजल बिक रहा है... सबकुछ देख कर लग रहा था जैसे यहां से सारा सामान हमारे मृतकों की आत्माओं के साथ हवाई जहाज़ द्वारा भेज दिया जाएगा।

वहां से गंगा नदी की ख़ूबसूरती देखते देखते हम चल दिये अपने महन्त का अड्डा देखने के लिये। रास्ते में बातें बाऊजी की सोच के बारे में हो रही थीं। क्या वे यह सब करते जो हम कर रहे हैं। फिर याद आया कि बाऊजी भी तो मेरे दादाजी की अस्थियां यहां लाए थे। उनके हस्ताक्षर भी देखने को मिलेंगे। आज बाऊजी की अनुपस्थिति में उनके हस्ताक्षर देखने के विचार से ही रोमांच सा हो रहा था।

हम पहुंच भी गये। हमारा महन्त तो ख़ासा खाता पीता इन्सान लग रहा था। भव्य सी धर्मशाला और बहुत से कमरे। एक कर्मचारी ने थोड़ी बेरूख़ी से पूछा, “किससे काम है ?”

“भाई हम दिल्ली से आए हैं, अस्थि विसर्जन...।” उसने बात पूरी भी नहीं होने दी, बीच में ही काटते हुए बोला, “पण्डिताइन से मिल लीजिये। वही करती हैं सब हिसाब किताब।”

उस व्यक्ति ने हमें एक मोटी, ठिगनी, गोरी, चश्मेधारी महिला के सामने ले जा कर खड़ा कर दिया। वह नरेन मौसा को शायद पहचान भी गयी थी, “हां जी कहां है अस्थियां ?” उसने बिना किसी ख़ैर-ख़रीयत पूछते हुए सवाल दाग़ दिया। और मैं तो शर्म के मारे गढ़ा जा रहा था।

“वह काम तो हम कर आए।... अब तो नाम लिखवाने आए हैं।”

जैसे बिफर ही तो पड़ी पण्डताइन, “आप जजमान लोगों के सिर पर ही तो इतनी बड़ी धर्मशाला खड़ी की है। न तो आप आकर इसमें रहो, और न ही आप हमसे अस्थि विसर्जन

करवाओ। तो हम यह तामझाम किसके सिर पर चलाएंगे।... ना उस पण्डे ने भी तो अस्थि विसर्जन की दक्षिणा कुछ न कुछ तो ली होगी।... हमारे तो रेट भी सामने बोर्ड पर लिखे हैं। अब आप बताइये कि आपकी रजिस्ट्री करने में हमारा टाइम बरबाद न होगा क्या?"

मैं उस पण्डिताइन के सामने अपराधी सा महसूस करने लगा। मैं नहीं चाहता था कि नरेन मौसा उसके साथ किसी भी तरह की बहस में पड़ें। बिना किसी ना नुकर ने मैंने एकदम ठण्डी आवाज़ में पूछा, "जी, अगर आप अस्थि विसर्जन करवातीं तो कितना पैसा लगता।"

"हम कोई लुटेरे नहीं है जजमान, हम भी सिर्फ़ दो सौ इक्यावन रुपये ही चार्ज करते हैं।... देख लो सामने बोर्ड पर लिखा है। वैसे आप चाहें तो जो मर्ज़ी हो दान कर सकते हैं।... यह सब चलाने में ख़र्चा तो होता है ना।"

"और अगर हम दोनों एक रात आपकी धर्मशाला में रहते, तो कितना पैसा लगता ?"

"उसके सौ रुपये लगते।... सुबह की चाय हम मुफ़्त में देते हैं।"

मैंने चुपचाप अपनी जेब से पर्स निकाला और पांच सौ रुपये निकाल कर पण्डिताइन के हाथ में रखते हुए कहा, "माफ़ कीजियेगा, हमसे ग़लती हो गई। ये पांच सौ रुपये आपके बनते हैं। हमें इधर उधर कहीं भटकना ही नहीं चाहिये था। सीधे आप ही के पास आना चाहिये था। अब आप हमारे पिता जी की मृत्यु दर्ज कर लीजिये।" नरेन मौसा कसमसाए, मगर मौक़े की नज़ाकत को देखते हुए चुप रह गये।

पण्डिताइन हमें एक बड़े से हॉल में ले गई, जहां लाल रंग की पोथियां ही पोथियां रखी थीं, "ऐसे चार हॉल हैं हमारे पास जिनमें आप जजमानों के रिकॉर्ड रखे हैं। इनकी संभाल आपको मालूम कितनी कठिन होती है?... हां रे जरा देखियो... ये मोहला हैं झंग के... देखो जी, अगर आपकी सूचना सही होवे न तो हमारे यहां ढूंढने में पांच से दस मिनट लगते हैं बस।... क्यों रे, मिला के.... ?"

और मैं हतप्रभ उन पोथियों की महक महसूस कर रहा था... उन पोथियों में कितने मृतकों के नाम दफ़न होंगे... उन्हीं में आज मैं भी अपने बाऊजी का नाम भर कर अपने हस्ताक्षर कर दूंगा... वहां बाऊजी के भी हस्ताक्षर होंगे... दादाजी का भी नाम होगा... कल को मेरा पुत्र यदि यहां आता है तो, वह भी मेरा नाम दर्ज करवा के अपने हस्ताक्षर करेगा... इन पोथियों में मरे हुए नामों के साथ ज़िन्दा लोगों के हस्ताक्षर साक्षी हैं कि जीवनधारा अविरल बहती रहती है... कभी रुकती नहीं।

लगभग बारह मिनट में पण्डिताइन के कर्मचारी ने एक बहीखाता मेरे सामने लाकर रख दिया। उसमें लिखा था कि मेरे बाऊजी वहां अपने पिता की अस्थियां लेकर आए थे। बाऊजी

अपने हस्ताक्षरों में अंग्रेज़ी के 'कैपिटल लेटर ' का इस्तेमाल नहीं करते थे बल्कि 'लोअर केस' से ही काम चलाते थे। यही उनके हस्ताक्षरों की पहचान भी थी 'एन' और 'जी' को जिस तरह मिलाया करते थे...। मैंने देखा, और बाऊजी को उन काग़ज़ के पन्नों पर महसूस किया... उन हस्ताक्षरों पर अपने दाएं हाथ की उंगलियां फिराईं... आंखें बन्द करके मैंने अपनी ज़िन्दगी भर की बेहूदगियों के लिये बाऊजी से क्षमा मांगी।

उस बहीखाते में मैंने अपने हाथों से अपने बाऊजी की मृत्यु के बारे में विवरण लिखा। ऐसा लगा जैसे बाऊजी की मृत्यु अब हुई है, इसी पल। कमरे की सीलन... बहीखातों की महक... और फ़ाउण्टेन पेन से की गई एन्ट्री... आंखों में जमे हुए आंसू... एक बार छत की तरफ़ देखा... कम से कम बीस फ़ुट ऊंची तो होगी ही... ऊपर तक बहीखाते ही बहीखाते... चारों तरफ़ से दीवारें तो दिखाई ही नहीं दे रही थीं... ट्यूब-लाइट जल रही थी... कमरा उजला था... बस लाल लाल बहीखाते... क्या कभी ये सभी नाम एक दूसरे से बातचीत करते होंगे... ये तो सभी एक ही बिरादरी, भाषा और क्षेत्र के लोग हैं... क्या उस कमरे में सरायकी भाषा सुनाई देती होगी... ये मृतक आपस में क्या बातें करते होंगे... इतनी शांति मुझे अस्थि विसर्जन करते समय नहीं मिली थी जितनी कि शकुन्तला पाठक की हवेली में मृत्यु दर्ज करवाते समय मिली।

यह देख कर अच्छा लगा कि नरेन मौसा ने शकुन्तला पाठक के साथ मेरे व्यवहार पर एक भी टिप्पणी नहीं की। शायद उन्हें भी पहली बार महसूस हुआ था कि मैं बड़ा हो गया हूं। या फिर पैसे की ताक़त होती ही ऐसी है कि सामने वाला उसके दबाव में आ ही जाता है। मेरे रिश्तेदारों में मेरी छवि एक अमीर आदमी की है। न जाने कैसे बन गई है... मगर महसूस करता हूं कि... वहीं रिश्तेदारों की एक ऐसी जमात भी है जो मुझे आज भी लोअर मिडल क्लास का लड़का ही समझती है... मुझे कोई फ़र्क नहीं पड़ता।...

दिमाग़ में सुकून लिये हम वापिस गंगा जी के सामने आ पहुंचे... वहां पानी के बहाव को देखकर कुछ डर का सा अहसास होने लगा था। किन्तु सामने महिलाओं, पुरुषों और बच्चों को पानी में डुबकी लगाते देख मन में ज़ोरदार इच्छा जागृत होने लगी कि गंगा जी में हम भी उतर ही जाएं। मौसा जी ने मेरे मन की इच्छा को भांप लिया था। मैं जीवन में पहली बार किसी नदी में उतरा था, और वह भी सीधे गंगा-स्नान... क्या सच में मेरे लिये इतना महत्वपूर्ण है यह पल... न जाने क्यों अच्छा लग रहा है... पानी का तापमान मेरी हड्डियों को महसूस हो रहा था... बहाव इतना तेज़ था कि वहीं लगी लोहे की संगलों को पकड़ कर खड़ा होना पड़ रहा था... पांव के नीचे से ज़मीन को पानी उड़ाए लिये जा रहा था... जैसे मैं अचानक जीवित हो उठा था।

मौसा चाहते थे कि मैं रात को महा-आरती देख कर ही जाऊं, "काका जी, गंगा जी दी आरती दुःखां नूं ग़ायब कर देन्दी है। मन दे विचों सारे कष्ट आपे ही ख़तम हो जान्दे ने।"

मेरी चुप्पी नरेन मौसा के लिये स्वीकृति थी और मैं अपने आप को छल रहा था। मेरे भीतर का वामपन्थी यह मानने को तैयार नहीं था कि मुझे इस सबसे सुख प्राप्त हो रहा है। मैं अपने आपसे कह रहा था कि मैं तो नरेन मौसा की बात रख रहा हूं... मगर क्या यह सच था... नहीं... मैं गंगाजी के वैभव से इतना सम्मोहित हो चुका था कि उन्हें केवल गंगा नहीं कह पा रहा था... अचानक वहां की हर नकारात्मक चीज़ सकारात्मक लगने लगी... आरती यदि न देखी होती तो शायद कभी न पता चलता कि जीवन में किस चीज़ की कमी रह गयी... पानी पर चलते दीपक... पानी और आग का ऐसा संगम... अद्भुत!

नरेन मौसा के साथ पहली यात्रा की वापसी भी वैसी ही रही जैसी कि शुरूआत थी। मौसा जीवन, मृत्यु, गरुण पुराण, भगवत गीता और मनु स्मृति की बातें करते रहे। बाऊजी को याद करते रहे... और मैं सुनता रहा।

मगर आज, बात दूसरी है... यह हमारी दूसरी यात्रा है आगे टैक्सी ड्राइवर और पीछे मैं और नरेन मौसा। आज उनके हाथ में उनके पुत्र की अस्थियां हैं। तीस वर्षीय पुत्र... हमारे घरों में शायद सभी पुत्रों को काका ही कहा जाता है... नरेन मौसा उसे भी काका ही कहते हैं... वैसे नाम तो अमर था... जिसका अमरत्व बस तीस वर्ष तक ही चल पाया...

आज मौसा की आंखों में मौत का सन्नाटा पसरा हुआ था। उनका भविष्य उनके साथ एक कलश में बन्द था... कैंसर ने अमर को परास्त कर दिया था... कभी छोटा सा अमर ऐसे ही नरेन मौसा की गोद में खेलते खेलते सो जाता होगा... तीन बहनों का अकेला भाई... पत्नी बेहाल... अभी कोई बच्चा नहीं... बस दो साल पहले ही विवाह हुआ था...चेहरे पर हमेशा मुस्कान... बड़ों का सम्मान... इज्ज़त... स्नेह... आज गंगा उल्टी बहने वाली है... आज पुत्र अपने पिता की मृत्यु बहीखाते में नहीं भरेगा... आज पिता अपने पुत्र का नाम लिख कर हस्ताक्षर करेगा... ठीक उसी पन्ने में नीचे जहां उसने अपने पिता की मृत्यु का विवरण भरा था।

आज टैक्सी कहीं रास्ते में नहीं रुकेगी... कोई पण्डा हमें कहीं अन्जान जगह पर ले जाकर ग्यारह पण्डितों को भोजन करवाने का संकल्प नहीं करवाएगा... आज टैक्सी सीधी बड़े बाज़ार की रामगिरी हवेली के सामने जा कर रुकी। नरेन मौसा और मैं उसी धर्मशाला में जा कर टिके जिसकी मालकिन शकुन्तला पाठक थी।

सुबह मुलाक़ात हुई हवेली के नये मालिकों से - शकुन्तला पाठक के दोहते नन्द कुमार और राजीव से। पढ़े लिखे महन्त... एक कंप्यूटर एक्सपर्ट तो दूसरा गुरूकुल कांगड़ी का विद्वान। छोटे राजीव ने बताया, "हमारा प्रयास यह है कि हमारे पास जितना भी डाटाबेस है उसे हम कंप्यूटर की हार्ड डिस्क में सेव कर लें। काम जारी है मगर आप समझ सकते हैं कि कितना बड़ा काम है।... हो सकता है कि जब आप अगली बार आएं तो आपको हमारी ये पोथियां

दिखाई ही न दें... कम्प्यूटर ने सब काम बहुत सरल कर दिया है। मेरा मानना है कि वैज्ञानिक उपलब्धियों का इस्तेमाल जीवन में होना बहुत ज़रूरी है।"

आज नरेन मौसा ने इतनी बड़ी सूचना पर कोई प्रतिक्रिया नहीं दी। उनकी आंखों में गहरे तक केवल मौत की सच्चाई थी। उनके अपने भविष्य मे उल्टा हो रहा था... कंप्यूटर से बहीखाते की ओर वापसी हो रही थी। दो बेटियों की शादी हो चुकी है... अभी तीसरी तो घर पर है कुंवारी... और काका उन्हें छोड़ अपनी अंतिम यात्रा पर निकल चुका है...

अबकी बार कोई डुबकी नहीं, बस बेदिली से किया गया नाश्ता... केवल टोस्ट और चाय... अबकी बार तो अस्थि-विसर्जन भी नन्द कुमार ने ही किया... शकुन्तला को किया वादा उसके दोहतों के साथ निभाया जा रहा था।

टैक्सी वापिस दिल्ली की यात्रा के लिये चल दी थी। नरेन मौसा की आंखों से आंसू बाहर आना चाह रहे थे। मैं देखता था मगर नहीं देखता था। उनकी गीली आंखों में भी एक सवाल था कि कल को उनकी अस्थियां कौन लाएगा... कौन संभालेगा उनका उत्तरदायित्व?

जैसे जैसे दिल्ली निकट आ रही थी, मेरे मन की बेचैनी बढ़ती जा रही थी... मैंने नरेन मौसा का हाथ अपने हाथ में ले लिया, उनकी नम आंखों की तरफ़ देखा। मेरी हथेली उनकी हथेली से कह रही थी, "नरेन मौसा... बस... आज से आपको आपकी ज़िम्मेदारियों से रिटायर कर रहा हूं... अब परिवार की यह ज़िम्मेदारी मेरी है... जब तक जीवित हूं... मैं हूं न.... "

नरेन मौसा की हथेलियों में कंपन साफ़ सुना जा सकता था।

रचनाकार का परिचय

<u>जन्म / बचपन :</u>21 अक्टूबर 1952 को पंजाब के शहर जगरांव में। उचाना, रोहतक (अब हरयाणा में) व मौड़ मंडी में बचपन के कुछ वर्ष बिता कर 1960 में पिता का तबादला उन्हें दिल्ली ले आया। **पंजाबी भाषी** तेजेन्द्र शर्मा की स्कूली पढ़ाई दिल्ली के अंधा मुग़ल क्षेत्र के सरकारी स्कूल में हुई।

<u>शिक्षा:</u>दिल्ली विश्विद्यालय से बी.ए. (ऑनर्स) अंग्रेज़ी, एवं एम.ए. अंग्रेज़ी, कम्पयूटर कार्य में डिप्लोमा।

<u>प्रकाशित कृतियां :</u>1. ***काला सागर*** (1990) ***ढिबरी टाईट*** (1994), ***देह की कीमत*** (1999) ***यह क्या हो गया!*** (2003), **बेघर आंखें** (2007), **सीधी रेखा की परतें** (2009 - तेजेन्द्र शर्मा की समग्र कहानियां भाग-1), **क़ब्र का मुनाफ़ा** (2010) सभी कहानी संग्रह। ***ये घर तुम्हारा है...*** (2007 - कविता एवं ग़ज़ल संग्रह)। **दीवार में रास्ता** (कहानी संग्रह - 2012), **प्रतिनिधि कहानियां** (कहानी संग्रह - 2014), **मेरी प्रिय कथाएं** (2014), **सपने मरते नहीं** (कहानी संग्रह - 2015), **श्रेष्ठ कहानियां** (कहानी संग्रह - 2015, National Book Trust)।

<u>**अनूदित कृतियां**</u> : *Grave Profits* (In English), ***ढिबरी टाइट,*** एवं ***कल फेर आणा*** नाम से पंजाबी, ***ईंटों का जंगल*** नाम से उर्दू , ***पासपोर्ट का रंगहरू*** नाम से नेपाली व **निर्वाचित काहनियां** (बांग्ला) में भी उनकी अनूदित कहानियों के संग्रह प्रकाशित हुए हैं। तेजेन्द्र शर्मा की कहानियां उड़िया, मराठी, गुजराती, चेक भाषा एवं अंग्रेज़ी में भी अनूदित हो चुकी हैं।

<u>**संपादन**</u> – **समुद्र पार रचना संसार (2008)** (21 प्रवासी लेखकों की कहानियों का संकलन)। **यहां से वहां तक** – (2006-ब्रिटेन के कवियों का कविता संग्रह), **ब्रिटेन में उर्दू क़लम** (2010), **समुद्र पार हिन्दी ग़ज़ल** (2011), **प्रवासी संसार - कथा विशेषांक** (2011)। **सृजन संदर्भ** पत्रिका का प्रवासी साहित्य विशेषांक (2012)। **देशान्तर** - प्रवासी कहानी संग्रह (दिल्ली हिन्दी अकादमी - 2012),लन्दन से प्रकाशित पत्रिका **पुरवाई** का संपादन।
अंग्रेज़ी में : 1. ***Black & White*** (biography of a banker – 2007), 2. ***Lord Byron - Don Juan*** (1976), 3. ***John Keats - The Two Hyperions*** (1977)

*कहानी **अभिशप्त** चौधरी चरण सिंह विश्वविद्यालय, मेरठ के एम.ए. हिन्दी के पाठ्यक्रम में शामिल। पासपोर्ट का रंग महात्मा बुद्ध विश्वविद्यालय नोयडा में।
तेजेन्द्र शर्मा के लेखन पर उपलब्ध पुस्तकें : 1. तेजेन्द्र शर्मा - **वक़्त के आइने में** (संपादकः हरि भटनागर), 2. **रचना समय - तेजेन्द्र शर्मा विशेषांक** (संपादकः हरि भटनागर), 3. **बातें (तेजेन्द्र शर्मा के साक्षात्कार)** - संपादकः मधु अरोड़ा 4. **हिन्दी की वैश्विक कहानी** (संदर्भ तेजेन्द्र शर्मा का रचना संसार) - संपादकः नीना पॉल, 5. **कथा त्रिकोण** (संपादक श्रीनिवास श्रीकान्त), 6. **नई धारा विशेषांक** (संपादक शिवनारायण - 2015)। 7. **कभी अपने कभी पराए - तेजेन्द्र शर्मा** (2015 संपादक - आशीष कंधवे)

<u>***अन्य लेखन:***</u> दूरदर्शन के लिये **शांति** सीरियल का लेखन ।

<u>**गतिविधियां**</u> **:** अन्नु कपूर द्वारा निर्देशित फ़िल्म **अभय** में नाना पाटेकर के साथ अभिनय। बी.बी.सी. लंदन, ऑल इंडिया रेडियो, व दूरदर्शन से कार्यक्रमों की प्रस्तुति, नाटकों में भाग एवं समाचार वाचन। ऑल इंडिया रेडियो, व सनराईज़ रेडियो लंदन से बहुत सी कहानियों का प्रसारण ।

<u>**पुरस्कार/सम्मान:**</u>

1. केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा का **डॉ. मोटुरी सत्यनारायण सम्मान** - 2011.
2. यू.पी. हिन्दी संस्थान का **प्रवासी भारतीय साहित्य भूषण सम्मान** 2013.
3. **हरियाणा राज्य साहित्य अकादमी सम्मान** - 2012
4. *ढिबरी टाइट* के लिये **महाराष्ट्र राज्य साहित्य अकादमी पुरस्कार** - 1995 प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी के हाथों ।
5. **अंतरराष्ट्रीय स्पंदन हिन्दी कथा सम्मान** - 2012
6. **सहयोग फ़ाउंडेशन** का युवा साहित्यकार पुरस्कार - 1998
7. **सुपथगा** सम्मान - 1987
8. **कृति यू.के.** द्वारा वर्ष 2002 के लिये ***बेघर आंखें*** को सर्वश्रेष्ठ कहानी का पुरस्कार।
9. प्रथम **संकल्प साहित्य सम्मान** – दिल्ली (2007)
10. तितली बाल पत्रिका का **साहित्य सम्मान** – बरेली (2007)
11. भारतीय उच्चायोग, लन्दन द्वारा **डॉ. हरिवंशराय बच्चन सम्मान** (2008)

<u>विशेष :</u>

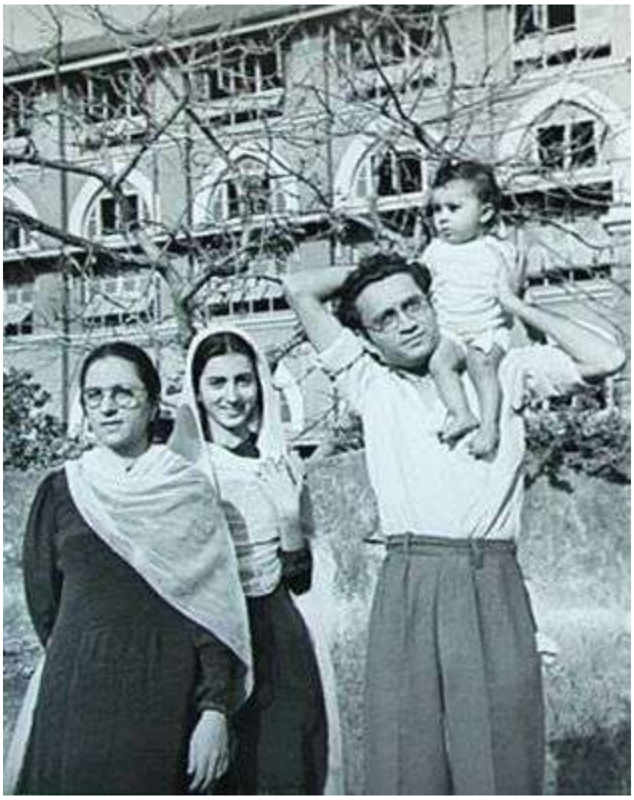
वर्ष 1995 से भारत में 40 वर्ष से कम उम्र के कथाकारों के लिये **इंदु शर्मा कथा सम्मान** की स्थापना। लंदन में प्रवासी हो जाने के पश्चात नई शताब्दी के साथ ही इंदु शर्मा कथा सम्मान को अंतर्राष्ट्रीय स्वरूप दिया गया। वर्ष 2000 से ही इंगलैंड में रह कर हिन्दी साहित्य रचने वाले साहित्यकारों को सम्मानित करने हेतु **पद्मानंद साहित्य सम्मान** की शुरूआत की गई। **अंतर्राष्ट्रीय इंदु शर्मा कथा सम्मान** एवं **पद्मानंद साहित्य सम्मान** का आयोजन अब प्रति वर्ष ब्रिटेन के हाउस ऑफ़ लॉर्ड्स में आयोजित किया जाता है।

कथा (यू.के.) के माध्यम से लंदन में निरंतर कथा गोष्ठियों, कार्यशालाओं एवं साहित्यिक कार्यक्रमों का आयोजन । लंदन में कहानी मंचन की शुरूआत **वापसी** से की। लंदन एवं बेज़िंगस्टोक में, अहिंदीभाषी कलाकारों को लेकर एक हिंदी नाटक **हनीमून** का सफल निर्देशन एवं मंचन ।

<u>अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी सम्मेलन</u> : 1999 में लन्दन विश्व हिन्दी सम्मेलन, 2002 में त्रिनिदाद में आयोजित अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी सम्मेलन में शिरकत की। लंदन, मैनचेस्टर, ब्रैडफ़र्ड व बरमिंघम में आयोजित कवि सम्मेलनों में कविता पाठ ।यॉर्क विश्विद्यालय में कहानी कार्यशाला करने वाले ब्रिटेन के पहले हिन्दी साहित्यकार। बर्मिंघम में रवीन्द्र कालिया एवं ममता कालिया के साथ संयुक्त रूप से हिन्दी कार्यशाला का संचालन।

2010 में डी.ए.वी. गर्ल्ज़ कॉलेज, यमुना नगर के साथ मिल कर कथा यू.के. ने 3-दिवसीय प्रवासी कथा सम्मेलन का आयोजन किया। 2012 में एस.आई.ई.एस. कॉलेज, मुंबई के साथ मिल कर 2-दिवसीय प्रवासी साहित्य सम्मेलन का आयोजन। 2013 में डी.ए.वी. गर्ल्ज़ कॉलेज, यमुना नगर के साथ मिल कर कथा यू.के. ने 2-दिवसीय प्रवासी कथा सम्मेलन का आयोजन किया। BHU के साथ मिल कर 2016 में प्रवासी हिन्दी सम्मेलन का आयोजन।

<u>संप्रतिः</u> ब्रिटिश रेल (लंदन ओवरग्राउण्ड) में कार्यरत।



क्या आपने हमें देखा है



जया जादवानी

क्या आपने उस भूरे -लम्बे बालों वाले लड़के को देखा है? जिसे मैं कई दिनों से देख रही हूँ. जिसने हिप्पी स्टाइल में ढीले -ढाले कपड़े पहन रखे हैं...घिसी हुई जीन्स...सलवटों वाली टी शर्ट और खूब सारे जेबों वाली जैकेट. जेबें जो खाली झूलती रहती हैं तुम्हारी चाहनाओं की तरह. उसके चलने में एक लापरवाह किस्म की लापरवाही है जैसे वह कहीं नहीं पहुंचना चाहता. मुझे ऐसे लोग अच्छे लगते हैं जो कहीं नहीं पहुंचना चाहते. क्या आपने किसी को कहीं पहुँचते देखा है? इअरफोन अपने कानों से लगाये वह शायद म्युज़िक के साथ ही इस शहर को देखता है, म्युज़िक बैकग्राउंड का काम करता होगा जैसे हम फिल्मों में देखते हैं बहुत सारी चीजें एक साथ पर जुड़ते उसी से हैं जिससे हमारी भीतर की तान मिल जाये. आप समझ रहे हैं न मैं क्या कह रही हूँ. जनाब ये शब्द अक्सर गलत समझे जाते हैं जब लिखे जा रहे हों तब भी, जब कहे जा रहे हों तब भी. सबसे बेहतर है मौन.... रास्ता मुश्किल जरूर है पर आपको सही जगह पहुंचाता है. अगर आप दूर से इन न जाने किन-किन देशों -प्रदेशों से आये जवान लड़के -लड़कियों को देखें तो आप इनकी बाबत बहुत कुछ जान सकते हैं. जिस्म का ट्रांसमीटर बहुत पावरफुल होता है. गाता हुआ जिस्म तो बहुत साफ़ सुनाई देता ही है रोता हुआ भी. इन सबकी अलग -अलग कहानी और घर हैं .जिनसे ये उब और भागकर यहाँ आये होंगे. अगर मैं कोई लेखक होती तो जरूर इनके बारे में न जाने कितने किस्से आपको सुना देती और सब सच होते हालांकि मैं इनमें से किसी को नहीं जानती. हर लेखक एक चलता -फिरता कब्रिस्तान होता है, जिस भी मुर्दे को आवाज़ देंगे वही उठकर आपको एक कहानी सुनाने लगेगा. देखिये जनाब जब मैं बहका करूँ आप मुझे टोक दिया कीजिये.

हां तो मैं कह रही थी एक ही दिन अलग -अलग चार जगहों पर मुझे वह लड़का दिखा...माउन्टरिंग इंस्टीट्यूट के घने इलाके में जब मैं सुबह की सैर से वापस आ रही थी, एक पत्थर पर बैठा अपनी मोबाईल पर झुका न जाने क्या कर रहा था....आहट पाकर उसने क्षण भर को अपना सिर उठाया...एक सरसरी सी निगाह मुझ पर डाल वापस उसी मुद्रा में. नहीं -नहीं मुझे जरा भी बुरा नहीं लगा. जनाब, अब मेरी उम्र कोई इस तरह की बातों से बुरा मानने की तो है नहीं. हालाँकि न देखे जाने पर हर उम्र की औरत बुरा मानती है और बड़ी उम्र की औरतें तो थक जाती होंगी अपनी तरफ किसी चाहना से भरी निगाह की प्रतीक्षा में और उसी थकन में फिर वे गिर पड़ती होंगी अपनी पति की उतनी ही व्यस्त और त्रस्त गोद में. आपने सूखी पत्तियाँ चबाते जानवरों को देखा होगा. जब हमारे जीवन में रस नहीं रहता हम एक -दूसरे को बिल्कुल इसी तरह चबाने लगते हैं. ये आनंद है जनाब ...एक वीभत्स

आनंद, अपनी जरुरत भर पूरी कर लेने का ...जानवरों से ऊपर उठने के पश्चात् भी जब -जब मनुष्य उनके लेवल पर आया है इसी वीभत्स आनंद को जीने .पर इस बात का यह अर्थ बिलकुल न निकालियेगा कि अब मुझमें देखने को कुछ नहीं बचा. जनाब, ये तो मेरी मुरव्वत है. आप एक बार मिलकर तो देखिये, सोचने लगेंगे काश! मैं इसके साथ जरा सा चल पाता....जरा सा इसे छू पाता. खुद को तराशने का हुनर अगर बचपन में आपको किसी ने सिखाया न हो तो बड़ी यातना सहने के बाद आता है. इसके बाद तो इससे बड़ी ख़ुशी कोई नहीं. आप बड़े मजे से अपने साथ रह लेते हैं जैसे मैं रह रही हूँ पिछले पैंतीस सालों से यह जानते और देखते हुये भी कि अभी भी न जाने कितनी आँखें और पैर मेरा पीछा कर रहे हैं. खैर, दूसरी बार उस छोटी सी बेकरी में बैठी जब मैं अपनी गर्म पिज़्ज़ा का इंतज़ार कर रही थी, वह भी दूसरी मेज पर बैठा कांच के शोकेस में सजी ठंडी पेस्ट्रीयों और केक को देख रहा था. जैसे कोई बच्चा देखता है ....उसने एक मैंगो पेस्ट्री मंगवाई और खाने लगा. इस बार मैं उसे देर तक देखती रही थी. गेहुंये रंगत वाला वह दुबला -पतला हिप्पी सा दिखता लड़का मुझे रूठे हुए बच्चे सा ही तो लगा था. जिसका खिलौना किसी ने छिपा दिया हो. हो सकता है... जिसके साथ आया हो या आना चाहता हो वह किसी दूसरे के साथ चली गयी हो. आजकल के लड़के -लड़कियां एक -दूसरे से बहुत जल्दी ऊब जाते हैं. उन्हें एक -दूसरे के भीतर उतरने की जितनी जल्दी रहती है, बाहर आने की उससे ज्यादा. एक -दूसरे को समझने की लम्बी -काली- अंधेरी सुरंग...कितना भी धीरे चलो हर बार पैर फिसलता है? यह संसार का सबसे मुश्किल रास्ता है जनाब ....बहुत कम लोग बहुत दूर तक जा पाते हैं. खैर, उसके लम्बे बाल इस वक्त पोनी की शक्ल में पीछे बंधे हैं. बड़ा सा माथा चिकना ऐसा जान पड़ता है, जैसे ....मैं कुछ सोच ही रही थी कि ...उसकी नज़र घूमी, मुझ पर पड़ी और मुड़ गयी. इस बार मुझे सचमुच अच्छा नहीं लगा. मुझे इतना साधारण किसी ने महसूस नहीं कराया था. मैं मन ही मन हंस पड़ी और उठी एक निर्णय के साथ अपनी पिज़्ज़ा ख़त्म किये बगैर. तीसरी बार वह उसी बस में बैठा था, जिसमें 'कोठी' जाने के लिए मैं बैठी थी. मुझे उम्मीद थी वह ऊपर 'कोठी' में भी जरूर दिखेगा अपनी मोबाईल से पहाड़ों और झरनों का कोई वीडियो बनाते हुये या अकेले में सिगरेट या बियर पीते हुए तो मैं उससे खुद बात करने की कोशिश करूँगी. पर वह वहां सचमुच नहीं दिखा. वापसी की आखिरी बस में सबसे आगे की सीट पर वह बैठा था. उस दिन ऊपर कोठी में मैंने उसे ढूँढने के सिवा कुछ और नहीं किया था. सारे नजारों ....सारी हरियाली को उस एक चेहरे ने ढँक लिया था. गनीमत है कि बादल अब तक अछूते थे. उन नीले बादलों पर किसी की परछाई नहीं थी. न उसके चेहरे की न मेरे विचारों की. इत्तफ़ाकों के ये कैसे सिलसिले थे, जो इतना तरतीबवार घट रहे थे. मनाली बस स्टैंड पर जब हम उतरे तो समूचा बाज़ार गुलज़ार था. लोग घूम -फिर कर वापस आ गए थे. सारी होटल्स और रेस्टारेंट ठसाठस भरे पड़े थे. मैंने उसे एक बार में घुसते देखा तो न जाने कब से दबी बियर पीने की तलब जोर मारने लगी. मैंने माल से बियर की दो बोतलें खरीदीं और अपने कमरे में वापस आ गयी.

उस रात मुझे नींद नहीं आ रही थी. मैं सीधी लेटी सफ़ेद छत को निहार रही थी...बाहर अँधेरा था ...और ठंडी हवा और निस्तब्ध ख़ामोशी...रात के नीम अँधेरे में अपने साथ जागना एक विषादकारी अनुभव साबित होता है .कहते हैं अपने भीतर झाँकने का सबसे महत्वपूर्ण क्षण यही रात की घड़ी है, जब आपको अपनी नंगी -ठण्ड और अकेलेपन में कांपती आत्मा का तीव्र साक्षात्कार होता है. बहुत कठिन क्षणों में मैंने यह साक्षात्कार किया है. जब मेरा पति मेरे जिस्म के खिलौनों से खेल कर उन्हें तोड़कर थक कर सो जाता था....तब. कभी आपने टूटे हुये खिलौनों के रोने की आवाज़ सुनी है ? कुछ औरतें ऐसे ही रोती हैं अपने उन टुकड़ों के लिये जो फिर उनसे कभी नहीं जुड़ पाते. आपमें से अधिकतर जानते होंगे औरतों के टूटने का सिलसिला अक्सर उनके बचपन से ही शुरू हो जाता है जब उन्हें साधारणता की बेड़ियों में जकड़ दिया जाता है जैसे मुझे जकड़ा गया था वर्जनाओं की बेड़ियों से. मेरे भाई को जितनी स्वतंत्रता थी उससे आधी भी नहीं थी मेरे पास .और मेरा बाप .....मुझे नफरत है उससे ....बारह साल तक उसने मुझे ......और मेरी मां चुप रहती थी ....ऐसी कौन सी विवशता होती है जनाब कि औरतें मुंह नहीं खोलतीं .बारह सालों के बाद मैंने मुंह खोला और मैं हास्टल भेज दी गयी. छुट्टियों में मैं अपने घर जाने की बजाय अपने किसी फ्रेंड के घर जाना ज्यादा पसंद करती थी .कालेज के बाद मेरी शादी कर दी गयी और फिर मेरा पति ......क्या सारे पुरुष एक जैसे होते हैं ? नहीं जनाब मैं यह बात मानने को तैयार नहीं हूँ ....पर पुरुष अकेलेपन को उस तरह नहीं जान सकता जिस तरह एक औरत जान सकती है. पुरुष औरत के पास जाता तो है ताकत बटोरने पर उसकी ताकत छीन लेना चाहता है. उससे उसका वज़ूद तक. वह नहीं चाहता कोई उसको चैलेन्ज करे. मैंने पहली राहत की सांस ली अपने डाइवोर्स के बाद. मैंने उन सबको अपनी ज़िन्दगी से निकाल बाहर फेंका जिन्हें मैं नहीं चाहती थी और मैं अकेली हो गयी. अकेलापन जो कभी वरदान की तरह लगता है ....कभी अभिशाप की तरह .इस वक्त मैंने देखा मेरे भीतर का अकेलापन न जाने कब बाहर चला आया था और चुपचाप मुझे घूर रहा था. आज यह आक्रामक नहीं है मैंने इस बात का फायदा उठाया और अपना कम्बल सिर तक खींच लिया.

दूसरे दिन न वह सुबह की सैर पर मिला, न बेकरी में, न बस स्टॉप पर मैं दिन भर माल पर भटकती रही, शाम को वन विहार में. और सात दिन यह लुका छिपी चलती रही. कभी नीला आसमान बादलों से ढँक जाता....कभी बादल पहाड़ों के उस पार चले जाते. मैं कभी अगस्त की बारीक बारिश में भीगती कभी भीतर के सूखे से लडती. फिर मैंने एक रात उसे ढूंढ लेने का निश्चय किया. जी हां ....आप बिल्कुल ठीक समझते हैं, मैं रात नौ बजे उस बार में जा पहुंची जहाँ मैंने उसे जाते देखा था. वह वहीं था.

इस वक्त जहाँ मैं हूँ, बहुत शोर है और इस शोर में भी मैं अपनी चेतावनी देती आंसुओं में डूबी आवाज़ सुन सकती हूँ......उठ भाग ..निकल यहाँ से ..ये तेरी जगह नहीं है. यहाँ कुछ नहीं मिलेगा ..... मैं उठती नहीं ...मेरा अपने साथ युद्ध है और मुझे जीतना ही है बिना अपना मष्तिष्क काटे. आप पूछ सकते हैं मैंने क्या किया....कुछ नहीं जनाब ...जबकि जी

चाह रहा है इस समस्त बार को तोड़ -फोड़ दूं ....ये ग्लास ..प्लेट्स ...बाटलस ...सब ...सब कुछ ...नसों को तोड़ता -फोड़ता कोई तूफान है जो बाहर आना चाहता है....मैं कस के दबाये बैठी हूँ. मैंने खुद को कभी इस बात की इजाज़त नहीं दी कि अपने मन का कर सकूँ. जब छाती से रुदन फूटकर बाहर आना चाहता है मैं हंस रही होती हूँ. जब मेरी प्यास समंदर पी जाना चाहती है ...मैं तपती रेत पर चल रही होती हूँ....... खुदाया ! क्या मैं किसी को अपना वास्तविक रूप दिखा पाउंगी ?

000

आपको क्या लगता है मैं नहीं जान पाया था. आप बहुत भोले हैं श्रीमान. औरतों के मामले में हम पुरुष बहुत दूर से सूंघ लेते हैं. और इस औरत में तो मुझे कायल करने के समस्त गुण हैं. कुछ खास है इसमें. इसके जिस्म में एक पुकार है .....आँखों में एक अनछुही सी रह -रह कर कांपती चाह ......भीतर की चाह कैसे जिस्म की त्वचा पर चमक जाती है यह तो खुद चाहने वाले को नहीं पता. यह जब दूर तक पसरे पहाड़ों पर बिछी बर्फ़ की तस्वीरें ले रही थी अपनी मोबाईल से ....मैं इसकी नाज़ुक उँगलियों और जीन्स और टॉप में फंसे तराशे जिस्म को देख रहा था...पहली नज़र में ही पूरी की पूरी छाप मेरे भीतर उतर गयी थी हालाँकि मैं न देखने का दिखावा करता रहा. औरतों का किस्सा बड़ा जानलेवा होता है श्रीमान. इनकी भीतर की भूलभुलैया में अगर आप उतर गए तो ये जहाँ ले जाकर आपको छोड़ेगी आपको वापसी का रास्ता भी न मिलेगा और अपनी चाहत की बात तो इन्हें भूल कर भी न बताइयेगा. औरतें उन्हीं को ज्यादा पसंद करती हैं जो उन्हें पसंद नहीं करता. तभी तो सभी खलनायकों की ढेर सारी प्रेमिकाएं होती हैं. मैं भी यही चाहता हूँ श्रीमान मेरी ढेर सारी प्रेमिकाएं हों. सब की सब मुझे पसंद करें ...मेरी बात मानती रहें. आप जानते हैं न श्रीमान, औरतें शासित होना पसंद करती हैं कहें चाहे कुछ भी....बस आपमें ये हुनर होना चाहिये. आप इन्हें अपने पीछे दौड़ाना चाहते हैं तो इनसे दूर रहिये. अपनी अकड़ में रहिये. जैसे मैं रहा और देखिये कैसे आई है सात दिनों के बाद आखिरकार. इन्हें 'मैन' चाहिये 'बच्चा' नहीं. हालाँकि मैं कोशिश करके भी उस तरह से खुरदुरा नहीं बन पाया तभी तो श्रीमान लड़कियां मुझे छोड़कर चली जाती हैं. इस बार मैं बेहद सावधान रहा. मैं उस दिन कोठी में भी उससे छुपता फिर रहा था और फिर वापस आने पर इस बार में घुस आया था. वैसे भी मुझे कुछ दिनों के लिए एक अंग्रेज लड़की मिल गयी थी और मेरी रातें बड़े मज़े से गुज़र रही थी. क्या कहा ?मैं झूठ बोल रहा हूँ. नहीं श्रीमान. दरअसल मुझे इन जल्द हासिल होने वाली औरतों से नफरत है पर यह भी सच है ये आपको वहां तक ले जाती हैं जहाँ आप इनके बिना नहीं पहुँच सकते. वर्जनाओं और डरों से दूर...इनके सामने आपको वे कपड़े पहनने की कोई जरूरत नहीं है जो आप हर वक्त पहने रहते हैं. आप नंग -धड़ंग इनके सामने विचर सकते हैं. कपड़े गिराते ही आपमें से बहुत कुछ गिर जाता है....और आप फूल से हलके हो जाते हैं. और श्रीमान सच तो यह है कोई औरत बाजारू नहीं होती .हम ही साले उसे बाज़ार में खड़ा कर देते हैं अपने लिए ....एक घर में ...एक बाज़ार में .....पर श्रीमान ये मामले इतने दोटूक नहीं

होते कि आप कह कर समझा सकें.....मैंने अपने पापा को देखा है....जब वे छिप -छिप कर नंगी औरतों की तस्वीरें देखते हैं. मुझे दया आती है उन पर. जब उन्हें दस रोटियों की भूख होती है, दो रोटियां मिलती हैं उन्हें.....और सालों बाद इस तरह के लोग एक लम्बी भूख बन कर रह जाते हैं. हालाँकि शादी नाम की कैद बनाई ही इसलिये गई है कि कोई भूखा न रहे पर अधिकतर लोग भूखे रहते हैं और सड़क किनारे बनी दुकानों पर टूट पड़ते हैं. देखिये श्रीमान, मैं आपको भटका नहीं रहा. मैं चाहता हूँ आपको उस पाइंट पर खड़ा कर दूं जहाँ से आप सब देख सकें. फिर भी ऐसा बहुत कुछ छूट जायेगा जिसे आप पकड़ नहीं सकेंगे. और अगर ऐसा हो तो यही समझियेगा मैं ठीक से अपनी बात समझा नहीं सका आपको .अब वह अन्दर आ गई है ...आप चुपचाप यहीं बैठे रहिये अपने गिलास के सामने और मुझे अपना काम करने दीजिये.

000

न देह, न रूह, किसी को देखकर आप यह अनुमान नहीं लगा सकते कि वह कितनी उजली या मैली है. हम देखते हैं त्वचा या बालों का रंग, आँखों की चमक, चेहरे की ताब और वह खामोश भाषा जो कहने -सुनने से परे अपना मायाजाल खुद रचती है.

मैं जानती हूँ आप क्या सोच रहे हैं मेरे बारे में ?क्या मुझे इससे कोई फ़र्क पड़ता है? जिसके संबंधों का इतिहास आपको नहीं मालूम उसके बारे में किया गया कोई भी फैसला एक गलत फ़ैसला होगा.

जैसे ही मैं उसके सामने बैठी उसने मुस्कुरा कर मुझे देखा ....

'प्लीज़ कम ...वेटिंग फॉर यू ...'

मेरी आँखें चौड़ी हो गयी ...'तुम मुझे देखते रहे हो ....'

'आफकोर्स यस .यू आर वेरी ब्यूटीफुल. एक जलती हुई लपट हैं आप, कोई भी भस्म होना चाहेगा.'

'तो वह नाटक था कि तुम मुझे नहीं देख रहे.'

'ऑफकोर्स ...आपको निकट लाने का......'

'पुराना फार्मूला ?' मुझे हंसी आ गई.

'कुछ फार्मूले कभी पुराने नहीं पड़ते. कुछ रिश्ते भी कभी पुराने नहीं पड़ते.... औरत -मर्द का रिश्ता. अगर आप उस दूसरे के बारे में सोच रहे हैं तो यकीन मानिये वह भी आपके बारे में सोच रहा है. आप तो मुझसे ज्यादा एक्सपीरियंसड हैं.'

' क्या तुम्हें नहीं लगता दुनिया इस पैग की तरह होनी चाहिये ....आओ ...पियो और जाओ....एक्सपीरियंस हमारे पाँव की बेडी बन जाता है. एक्सपीरियंस के हिसाब से तो मुझे पुरुषों से नफ़रत होनी चाहिये......' मैं आहिस्ता हंस पड़ती हूँ.

'मुझसे मिलने के बाद आपको पुरुषों से प्यार हो जाएगा.' उसने बेहद कोमल स्वर में कहा.

'हा .....हा .....हा.... अगर मैं सिर्फ़ तुम्हीं से प्यार कर सकूँ ?'

'अगर ऐसा हो जाये मुझे बता ज़रूर दीजियेगा ...' वह उसी तरह मुस्कराता रहा.

'तुमसे मिलने वाली सारी लड़कियों की यही गति होती है क्या ?'
नहीं ....पर मैं चाहता हूँ आपकी हो ...'
और हम दोनों हंस पड़ते हैं .उसने वेटर को बुलाया और मेरे लिए वोदका ऑर्डर कर दी.
'आपने सोचा नहीं यह अजनबी आवारा लड़का और मैं एक संभ्रांत महिला......' उसने कहा .
'मैं अपनी सोच से आगे जाना चाहती हूँ....और जिसे तुम सम्भ्रांत होना कहते हो वह बड़ी यातना सहने के बाद आता है....' पता नहीं वह समझा या नहीं. पर मुझे उसका उत्साह से दमकता चेहरा अच्छा लगता है.....मैंने शिद्दत से महसूस किया...जिस चीज़ की गुज़र जाने के बाद बेतहाशा तलब होती है वह है जवानी. जब सारी दुनिया तुम पर टूट पड़ना चाहती है तब तुम भागे -भागे फिरते हो. और जब तुम उन पर टूट पड़ना चाहते हो वे भागी -भागी फिरती हैं. मैं उससे बहुत सी चीजें कभी नहीं कहूँगी ....वह नहीं समझेगा...वह समझे मैं चाहती भी नहीं हूँ.
' आप क्या करती हैं ?'
' मेरा एक बुटीक है जिसे मैंने पिछले पंद्रह सालों की अनथक मेहनत से खड़ा किया है. अपने डायवोर्स के बाद ......वे बड़े कठिन दिन थे. सच तो यह है अपने काम को अपना जीवन सौंपने के बाद आपके पास बहुत कुछ बचा नहीं रह जाता या अगर बचता भी होगा तो आपको पता नहीं चल पाता...और आप चाहते भी नहीं हैं आपको पता चले .तुम्हें पता है हम सबसे ज्यादा किससे डरते है ....खुद से ...'
'इंट्रसटिंग ...' उसने कहा.
'मैं भी खुद से डरती थी. अपनी मांगों से ....अपनी चाहनाओं से ...'
'और अब आपने खुद से डरना छोड़ दिया है ?'
'मैं खुद को दिखा देना चाहती हूँ कि मैं तुमसे नहीं डरती .' मैंने मुस्करा कर कहा तो वह बहुत ज़ोर से हंस पड़ा .मैं उसकी हंसी देखती रही.
वह मुझे गौर से देखता अपनी वोदका पी रहा है. बहुत आहिस्ता -आहिस्ता हम एक -दूसरे की तरफ बढ़ रहे थे. शुरू में तो वह मुझसे 'मैम....मैम...' कहकर बात करता रहा. आखिर मैं कमजकम उससे दस साल बड़ी थी...फिर धीरे -धीरे हम खुलते चले गए. उसने बताया कि अपनी पढाई पूरी करने के बाद वह एक ऐसे जॉब की तलाश में है जो उसके पांव की बेडी न बने. उसके पहले वह यूँ ही एक आवारा किस्म की ज़िन्दगी जीना चाहता है. 'आवारा किस्म की ज़िन्दगी'.... इन शब्दों को मैं एक -एक घूँट की तरह पीती रही. क्या यह सिर्फ़ पुरुषों के भाग्य में है ?
' इसके पहले कि तुम्हें शादी के खूंटे से बाँध दिया जाये ....?'
'इस खूंटे से तो मैं बंधने से रहा. आपको बताने में कोई हर्ज़ नहीं है मैं दो साल लिव इन रिलेशन में रहा हूँ.'
'फिर ?'
'फिर क्या ?सब ख़त्म......वह चली गयी.'

'उसका अहसान मानो कि वक्त रहते उसने तुम्हें छोड़ दिया और अब तुम दोनों स्वतंत्र हो ....'

'आप मुझे मेरे गिल्ट से निकाल रही हैं ....'

'एक बात अच्छी तरह समझ लो. ऐसा कोई नहीं जो अनंतकाल तक आपके साथ चलने को राजी हो सके. ऐसी मांग, ऐसी चाह ही पागलपन है. लोग आते हैं अपना रोल प्ले कर चले जाते हैं. हम क्यों उन्हें रोककर रखना चाहते हैं ? उनका और अपना जीवन नरक बनाने के लिए ? और फिर हर दोस्त हमारे अन्दर एक नया संसार पैदा करता है, यह संसार हममें ही छुपा रहता है जब तक वह आकर इसे अनावृत नहीं कर देता .'

'इस तरह तो आपके भीतर बहुत से संसार अनावृत हो गए होंगे ?'

'और बहुत से अभी नहीं हुए हैं ......' मैं मुस्कराती रही. जिस क्षण गलत समझे जाने का भय आपके भीतर से निकल जाता है उस क्षण के बाद अपना सच जीने का हुनर आपको आ जाता है.

वह ध्यान से सुन रहा है....उसकी आँखें सिकुड़ गयी हैं.पता नहीं कितना समझा.

'तो आपने किसी को रोकने की कोशिश नहीं की?'

'नहीं ....सब चले गए क्योंकि सब चले जाते हैं .'

दो पैग के बाद मैं खुलती चली गयी. शराब कुछ देर के लिए ज़िन्दगी के मामूली मसलों से तुम्हें ऊपर उठा देती है...खुद से ऊपर उठा देती है. पिछले कुछ सालों से वक्त का गुजरते जाना मैं बिलकुल साफ़ -साफ़ महसूस कर पा रही हूँ ...क्यों चाहती हूँ मैं इसका साथ? अपने अकेलेपन से मुक्ति पाने के लिए? मुझे उस नशे में एक तीव्र अहसास हुआ..... पिछले न जाने कितने सालों से मैं अपनी स्वतंत्रता में भी अकेलेपन की पीड़ा भोग रही हूँ. हम स्त्रियों का जीवन एक अजीब सी दुश्चिंता और डर में बीतता है. डर ....असुरक्षा का, लोगों का, भूत -भविष्य का, पुरुषों का और इस बात का कि ये डर कोई देख न ले. हम अपने मन का नहीं जी पाते तो सोचते हैं क्यों नहीं? जी लेते हैं तो सोचते हैं क्यों ?

आप कहेंगे, बेवकूफ औरत !जरूर कहिये जनाब....ये हमें बहुत बाद में पता चलता है एक लम्बी उम्र गुज़ारने के बाद कि दरअसल हम खुद पर बोझ हैं. हम खुद को किसी को दे देना चाहते हैं. क्या आपको लगता है अकेलेपन की पीड़ा से छुटकारा पाने का कोई दूसरा रास्ता भी है ?

हम दोनों के हाथ में तीसरा पैग है ....मैं उसकी आँखों में अचानक पैदा हुई लपट साफ़ देख पा रही हूँ ....वह कभी आगे बढ़ता कभी पीछे हटता जान पड़ता है....मुझे हंसी आ रही है ...देह और मन का यह द्वंद मेरे लिए कितना जाना -पहचाना और यातनादायी है. ये दोनों कभी एक -दूसरे से हाथ नहीं मिलाते. देह नैसर्गिक होना चाहती है, मन उसे बाँध कर रखना चाहता है. मैंने उसे कुछ नहीं कहा. उसने चौथा पैग बना दिया और इसके बाद मुझे सिर्फ इतना याद है कि उसके कंधे का सहारा लेकर मैं बाहर आई थी. ऑटो में बेसुध बैठी थी और उसके बाद अपने कमरे में....

वह मेरे पास बैठा है ...धीरे -धीरे मुझे खोलता और खुलता....परत दर परत......

‘ तुम सोचते होगे ये औरत मेरी मां की उम्र की है और ....’

‘शटअप....मैं इस तरह नहीं सोचता ....’

‘डज़ इट मेक एनी डिफरेन्स ?’

‘ इट डज़....लिसन ...आय वांट यू ...आय नीड यू ...’

‘बट यू डोंट लव मी.’

‘ हा ....हा.......हा......यू नो ...औरतें कभी बड़ी नहीं हो पातीं ...न कभी प्रेक्टिकल हो पाती हैं ...तुम अभी भी इस शब्द के पीछे भाग रही हो? मेरी गर्लफ्रेंड भी मुझसे हमेशा यही पूछती थी ....डू यू लव मी ? मैं हमेशा कहता था ..यस . क्योंकि इसके अलावा कोई कुछ सुनना ही नहीं चाहता. कुछ शब्द बनाये ही गए हैं दूसरों को बेवकूफ बनाने के लिए .....लव ...गॉड ...आस्था ...विश्वास .... ये शब्द सुनने में अच्छे लगते हैं पर हकीक़त से इनका कोई वास्ता नहीं होता.’

‘तुम इस उम्र में इतने प्रेक्टिकल कैसे हो ?’

‘ लड़कियां बना देती हैं पर अफ़सोस वे खुद नहीं बन पातीं .’ वह फिर हंसा.

‘मुझमें आओ....हम एक सांस लेंगे और एक हो जायेंगे....आपको इतना और इस तरह का प्यार किसी ने नहीं किया होगा. यू आर थर्स्टी....वाटर इन मी....तूफान हूँ मैं...नष्ट हो जाऊंगा नष्ट कर दूंगा.’

और वह मुझ पर टूट पड़ा .....

वह एक आदिम जिप्सी नृत्य था ....वह जितनी बार मुझे पकड़ता मैं छूट -छूट जाती थी ......मुझे वहां मत ढूंढो जहाँ मैं नहीं हूँ....नाभि के नीचे नहीं..... नाभि के ऊपर है रहस्य ...पर्वतों के बीच उदित होता है वहीँ सूर्य ..आओ ..उसे देखें ...उसके आने से आती है हरीतिमा. समस्त कायनात खिल उठती है. आओ ...आकाश से इसे झपक लें. पी लें इसे ...रुको -रुको सुनो ..उडो ऊपर ....और ऊपर ..और ऊपर .. तुम्हारे पंख कितने बेचैन हैं ?और ये बादल हमें कहाँ उडाये लिये जा रहे हैं ? ये उडान ....ओह ..... और ऊपर ....और ऊपर ....इन बादलों के पार ....यह भूरा कोमल अहसास .....ये हरे रंग ......आओ ....प्रकृति ने एक गीत गाया है ? हम इस धुन पर नृत्य करें ....ये फूल से हलके पैर ....मुझे उठा लो.....ओह ......ओह......एक आवारा चीख कमरे में बिखर गयी.

000

आज आपके मैं एक कन्फेशन करना चाहता हूँ.... मैंने आपको बताया था न मुझे इस तरह की जल्द हासिल होने वाली औरतों से सख्त नफ़रत है.....हालाँकि जब मैं इससे मिला यह मुझे बिल्कुल अलग लगी. आप जानते हैं न यह मेरे लिए पहली बार नहीं है पर आज मैं भूल गया कि मैं कौन हूँ और क्या कर रहा हूँ ?यह मुझे बहा ले गयी. मैं समंदर में तैरने का अभ्यास कर रहा था....मुझे उस पार पहुंचना था जो न जाने कहाँ था ? मुझे लगा मेरी नाव पलट गयी है और मैं डूब रहा हूँ.....वह डूबने का अद्भुत सुख और फिर उस नाव के एक

पट्टे को पकड़ कर तैरते हुए ऊपर आना....निढाल जिस्म को किनारे पर ढहा देना.....लहरों ने जब हमें किनारे पर फेंका ....हम उसी तरह पड़े रहे ....एक -दूसरे में गुंथे .....

इस रात के बाद हम अपनी अपनी दुनियाओं में वापस चले जायेंगे ...... पर मैं इसे कभी नहीं भूल पाउँगा......

मैं इससे वह सब नहीं कह पाया जो मैं कहना चाहता था....पर जो भी मैंने कहा, वह चुपचाप सुनती रही फिर सो गयी. मैं उसे सोते हुये देख रहा हूँ....मैं उसकी नींद नहीं तोडना चाहता .

कुछ देर बाद उसने आँखें खोली और मुझे देखा ....उसकी आँखों में हैरानी उतर आई ..मैं अब तक वहीँ था ?

'सुनो .....'मैंने उसे पुकारा .... 'आय लव यू ....रियली.....'

'सुनो ......क्या तुम थोड़ा सा मुझे देख सके ?' उसकी वह आवाज़ मेरे आर -पार निकल गयी .

000

दूसरे दिन मैंने आईने में खुद को देखा और हैरान रह गयी. न जाने कितने बरस मेरे जिस्म से झर गए थे....शायद दस ...शायद बीस...मुझे सचमुच नहीं पता...पर मैं नई सी हो गयी थी. नई सी नहीं, नई. मानो मैं अपनी बेटी हूँ..और मैं पीड़ा और प्रसन्नता से पुलकित हो उठी. जानती हूँ आप दुनियादार लोगों को लगता है वक्त और परिस्थितियों के साथ औरत को खुद को मार देना चाहिये और हम मार देते हैं क्योंकि आप लोग ऐसा चाहते हैं. एक बात बताइये आप लोगों को औरत की स्वतंत्रता से इतना डर क्यों लगता है? हमें बाँध नहीं पाते इसलिये ?औरत को खुद को मारने की तरकीबें आप उन्हें उनके बचपन में ही सिखा देते हो. मैंने भी मार दिया था खुद को अपने जाहिल पति से डाइवोर्स के बाद. फेंक दिया था खुद को खुद के अन्दर पर क्या करें ?सालों बाद जब ढक्कन उठाकर भीतर झांकते हैं तो अपनी साँसें चलती हुई पाते हैं, अपने अनजाने मैं जिन्दा थी और ये जो आईने के सामने खुद को निहार रही है ...वही है. यकीन नहीं आता आपको ? तो इसकी आँखों में देखिये ...इन्हीं आँखों के अन्दर नीचे उतरने वाली सीढियां हैं...क्या कहा...आपका इससे कोई परिचय नहीं है ...जानती हूँ जनाब, ऐसी औरतों को आप घरों में रहने कहाँ देते हैं ? घरों में तो वो क्या कहते हैं पालतू मुर्दा औरतें रहती हैं ....जो किसी रोबोट की तरह आपके बताये काम करती हैं ....घरों में 'ये जिंदा औरतें' नहीं रहतीं 'ये' अपने अन्दर छिप कर बैठी रहती हैं और आप उनसे कभी मिल नहीं पाते.....कभी इनसे मिलने की ख्वाहिश हो तो जरा संभल कर ये सीढियां उतरियेगा ...अपना हाथ छूटा तो खुद को कभी ढूंढ न पाएंगे.

कहानी

सफ़ीना



क़ैस जौनपुरी

-"हैलो...सर...! आपसे मिलने सफ़ीना आई हुई हैं बैंक से..." ये आवाज थी मेरे ऑफिस की रिसेप्शनिस्ट की. मैं न चाहते हुए भी बैंक से फोन करने वालों को मना नहीं कर पाया था. और उसका सिला ये हुआ कि सफ़ीना नए सेविंग अकाउंट के लिए मेरे डॉक्यूमेंट्स लेने आई थी. मैंने सोचा, "लड़की आई है...डॉक्यूमेंट्स लेने...? क्या बात है...! बैंक वाले भी क्या-क्या करते रहते हैं....! पहले तो लड़कियां सिर्फ फोन पर बात करती थीं....अब पेपर्स लेने भी खुद आने लगी हैं..."

खैर...मैं बेमन से कुछ सोचता हुआ आया...और रिसेप्शन पे बैठे लोगों पर एक नज़र दौड़ाई...एक पतली सी लड़की बैठी हुई थी, लाल सोफे पे, एक किनारे...मैंने उसी से पूछा... "सफ़ीना...?" वो मुस्कुरा कर खड़ी हो गई...मैंने आदतन हाथ मिलाने के लिए हाथ आगे बढ़ाया...सफ़ीना सिर्फ देखेने में छोटी सी, पतली सी लड़की लग रही थी मगर उसे सब बातें मालूम थीं कि लोग मिलते हैं तो हाथ मिलाते हैं...और मुस्कुराते हैं....

खैर, तब तक मैं सफ़ीना के चेहरे को देख चुका था... सफ़ीना एक खूबसूरत लड़की थी...मासूम सी...फूल जैसी...कोमल...अनछुई...कच्ची कली जैसी...मगर इतनी छोटी सी उमर में मार्केटिंग जैसा जद्दोज़हद वाला काम कर रही थी....

सफ़ीना का हाथ मेरे हाथ में था और मुझे लगा जैसे मैं किसी मख़मल की चादर के एक कोने को पकड़े हुए खड़ा हूँ...और चादर के मख़मली अहसास को महसूस करके खुश हो रहा हूँ...फिर मैंने सफ़ीना से कहा... "आइये..." सफ़ीना को लेकर मैं मीटिंग रूम में आ गया...अब उस रूम में सिर्फ मैं था और सफ़ीना थी....सफ़ीना ने फॉर्म निकाल लिया था...और वो उसी काम के लिए आई भी थी...

सफ़ीना अपना काम बहुत ही खूबसूरती से कर रही थी....और मैं...उसकी खुद की खूबसूरती में बार-बार खो जा रहा था...फिर जब कोई बात ऐसी होती थी जब मुझे जवाब देना होता था तब मैं वापस अपने होश में आ जाता था...और जब सफ़ीना बोलती थी...तो मैं उसके चेहरे को एक तरफ से दूसरी तरफ नज़र घुमा कर देख ले रहा था. जब मेरी और सफ़ीना की नज़रें मिलतीं तो थोड़ी देर के लिए मैं अपनी नज़र हटा लेता था...मगर ऐसी हालत में बहुत मुश्किल हो जाता है....अगर आपके दिमाग में कुछ और चल रहा है....... तो आप नज़र मिला के बात नहीं कर सकते...... और जब आप नज़र नहीं मिला पाते हैं........ तब इधर-उधर देखते हैं... और फिर जब सामने सफ़ीना जैसी हसीन लड़की हो तो इधर-उधर देखना........ खुद को भी बुरा लगता है... मगर जरा सी देर के इस इधर-उधर में मैंने देख लिया था कि सफ़ीना वाकई बहुत पतली थी...

मुझे पता नहीं उसकी उमर क्या रही होगी मगर देखने में वो बिलकुल पन्द्रह साल की एक कमसिन लड़की लग रही थी... लेकिन वो बैंक में काम करती थी तो इतना तो तय है कि वो कुल पन्द्रह साल की तो नहीं रही होगी... मगर

मेरे लिए उसकी उमर उतनी मायने नहीं रखती थी जितना कि उसका खूबसूरत चेहरा.... और जैसा मेरे साथ अक्सर होता है... एक खूबसूरत चेहरा दिखा नहीं कि मैं फ़िदा.... मैं सफ़ीना के खूबसूरत चहरे पर भी फ़िदा हो गया था... सफ़ीना का छोटा सा गोरा चेहरा ऐसा लग रहा था जैसी किसी चित्रकार की कला हो...एक पेंटिंग हो....

जब वो बोल रही थी तो उसके गुलाबी होंठ ऐसे लग रहे थे जैसे कोई फूल खिल रहा हो... उसकी पंखुडियां फ़ैल रही हों... फिर सिकुड़ जा रही हों... फिर एक खुश्बू सी बिखर रही हो...

सफ़ीना इस नए सेविंग अकाउंट के फायदे बता रही थी... जिनमें फायदे ज्यादा थे...नुकसान बिलकुल नहीं...तो मैंने पूछा...“ऐसा क्यूँ कर रहे हो आपलोग...? इतना सबकुछ फ्री में क्यों दे रहे हो...? आप कैसे मैनेज करोगे...???” तब सफ़ीना मुस्कुराई थी...उसने कहा....“सर, ये बैंक ऑफर दे रही है...अब कुछ नया नहीं रहेगा तो कस्टमर कैसे आयेंगे...? ज्यादा कस्टमर को अट्रैक्ट करने के लिए खर्चा तो करना ही पड़ेगा...” मैंने पूछा...“वसूलोगे कैसे...?” इस बार सफ़ीना खिलखिलाकर हंसी थी...

मुझे उससे बात करके अच्छा लग रहा था...एक तरफ मेरे दिमाग में ये ख्याल आ रहा था कि “ये बैंक वाले सब अच्छा-अच्छा दिखा के बाद में चूना लगाते हैं...” दूसरी तरफ सफ़ीना का रूहानी चेहरा देखकर मैं सबकुछ भूल जा रहा था...या यूँ कहूँ तो जानबूझकर ऐसा कर रहा था...क्योंकि सफ़ीना के मासूम चहरे के आगे मैं कोई भी धोखा खाने को तैयार था...ज्यादा से ज्यादा क्या जाएगा...? कुछ पैसे....? इतना कमाया...आगे भी कमा लूँगा....
बहरहाल...सफीना ने मुझे तैयार कर ही लिया...मैं और कुछ सोच भी नहीं पा रहा था...सफ़ीना ऐसे अकाउंट की बात कर रही थी जिसमें मुझे पच्चीस हजार रूपए कम से कम रखने पड़ेंगे...मैं ये भी सोच रहा था...“क्या मैं इतने पैसे रख पाऊंगा...?” लेकिन फिर मैंने सफीना से पूछा...“अगर किसी महीने पच्चीस हजार से कम हो गए तो...?” तो सफ़ीना ने मुस्कुरा कर ये परेशानी भी दूर कर दी...उसने बैंक के सारे नियम-कानून बता डाले...जिसमें मुझे कोई दिलचस्पी नहीं थी...मैं तो ये अकाउंट बस सफ़ीना के कहने पर खोल रहा था....वो जो-जो कह रही थी....मैं एक अच्छे बच्चे की तरह सारी बातें मान रहा था...कहीं दिल के भीतर से ये आवाज आ रही थी...“डरो मत...इतनी खूबसूरत लड़की धोखा नहीं दे सकती...”

उसने कहा “चेक दे दीजिए....” मैंने पूछा...“कितने का...?” उसने कहा ...“पच्चीस...” मैंने पूछा....“पूरा....?” मेरे इस बचकाने सवाल पर सफ़ीना एक बार फिर जोर से हंसी थी....और मेरे दिल को एक तसल्ली मिल गई....उस वक़्त अगर वो कहती “पचास...” तो भी शायद मैं पीछे नहीं हटता...

मैंने पच्चीस हजार का चेक भी दे दिया.... इस बार सफ़ीना ने मेरी टांग खीची....“सर...चेक क्लियर हो जाएगा ना....?” और इतना कहते ही हम दोनों हंसने लगे...ऐसा लग रहा था जैसे हम दोनों एक-दूसरे को बहुत पहले से जानते हैं...और बहुत अच्छे दोस्त हैं...मगर ऐसा नहीं था. सफ़ीना अभी थोड़ी देर पहले ही मुझसे मिली थी...मगर उसका बात करने का अंदाज इतना प्यारा था कि बात कुछ और ही हो रही थी....

मैंने सफ़ीना से कह दिया...“पहली बार मैं किसी ‘सेल्स गर्ल’ से इस तरह बात कर रहा हूँ....सफ़ीना ने अपनी सफाई में कहा....“सर...आजकल कम्पटीशन बहुत बढ़ गया है...अब आपको कुछ अलग करना पड़ता है...तब बिजनेस आगे जाता है...तभी लोग जुड़ते हैं...और एक रिलेशन बनता है...”

सफ़ीना की बात बिलकुल सही थी...उसने अपनी बातों से एक रिश्ता बना लिया था...मेरे और अपने बीच...मुझे ये रिश्ता एक खूबसूरत रिश्ते जैसा लग रहा था...एक सेल्स गर्ल और एक अकाउंट होल्डर का रिश्ता....एक खूबसूरत रिश्ता जिसमें दोनों अपनी-अपनी पहचान भूलकर एक इंसान की तरह पेश आ रहे थे....

सफ़ीना ने जल्दी-जल्दी फॉर्म भर दिया...और मुझे दस्तख़त करने को कहा...मैंने बिना देखे-पढ़े हर जगह दस्तख़त कर दिए...मुझे सफ़ीना पर भरोसा था...क्योंकि सफ़ीना एक बेहद खूबसूरत लड़की थी...और खूबसूरती ही मेरी कमजोरी है...मुझे कुछ दिखाई नहीं देता है...अगर मेरे सामने एक खूबसूरत चेहरा आ जाए...कई बार इस वजह से मुझे नुकसान भी होता है....लड़कियां मेरे बारे में गलत राय बना लेती हैं...कि...मैं ऐसा हूँ...मैं वैसा हूँ....लेकिन इन लड़कियों को मालूम नहीं होता है कि...मैं किस चीज पर मर रहा हूँ....

"नॉमिनी किसको बनायेंगे सर....?" ये एक अचानक सा सवाल मेरे कानों को सुनाई दिया. अब बात कुछ और हो गई थी...मैंने एक नाम बताया. सफ़ीना ने वो नाम लिख दिया...फिर सफ़ीना ने पूछा..."नॉमिनी से आपका क्या रिश्ता है...." थोड़ी हिचक तो हुई मगर बताना तो था...हिचक इसलिए हुई कि अभी तक हम खुलकर बात कर रहे थे...हंस रहे थे...मुझे डर लगा कहीं सफ़ीना ये जानने के बाद कि मैं शादी-शुदा हूँ...मुझसे दूरी ना बना ले...बस इसी डर से मैं हिचक रहा था...लेकिन सफ़ीना का दिल बहुत साफ़ था...उसके चहरे पे एक शिकन भी नहीं आई...फिर मुझे लगा...मैं बिला वजह डर रहा था...

अब सफ़ीना के जाने का वक़्त था...लेकिन सफ़ीना ने जाने से पहले कुछ बातें ऐसी कहीं...कि मैं कुछ सोचने पर मजबूर हो गया....सफ़ीना ने कहा...."सर ब्रांच कौन सी रखना चाहेंगे...? आप कहाँ रहते हैं...?" मैंने कहा..."अंधेरी वेस्ट..." सफ़ीना ने कहा..."अंधेरी वेस्ट में जे. पी. रोड़ पर हमारी ब्रांच है..." मैंने कहा..."हां, मेरे लिए वही सही रहेगा...मेरे घर के पास भी है..." मगर सफ़ीना ने कुछ ऐसा कहा जिसने पूरी बातचीत का रुख मोड़ दिया...उसने कहा...."लेकिन सर....मैं चाहती हूँ..कि आप अंधेरी ईस्ट ब्रांच रखिये...क्योंकि यहाँ पर मैं बैठती हूँ...कल को आपको कोई जरुरत पड़ती है तो मैं हेल्प कर सकती हूँ...और आपका अकाउंट खुलते ही मैं खुद आकर आपको 'वेलकम किट' दे जाउंगी..." सफ़ीना ने सारी बातें एक सांस में कह डालीं....मेरे लिए सोचने का वक़्त ही नहीं था...सफ़ीना खुद कह रही थी...कि वो खुद आएगी...मुझसे मिलने....उसने अपना विज़िटिंग कार्ड भी दिया जिस पर उसका मोबाईल नंबर भी था....सफ़ीना बिलकुल भी झिझक नहीं रही थी...

अभी तक मैंने जितनी भी मार्केटिंग गर्ल्स को देखा है...सब सोचती हैं कि कितनी जल्दी इस आदमी से पीछा छूटे...और ऐसी लड़कियों के लिए आदमी भी यही सोचता है....कि...कितनी घमंडी है...मार्केटिंग कैसे करती है...? मगर सफ़ीना समुन्दर में तैरता हुआ एक ऐसा फूल थी....जो लहर के साथ ऊपर-नीचे हो रही थी...और देखने वाले को एक तसल्ली मिल रही थी...देखने वाला ये सोच रहा था कि...कितना खूबसूरत फूल है...देखो कितनी बेपरवाही से अकेला समुन्दर की लहरों पर तैर रहा है....

सफ़ीना को देखकर ऐसा लग रहा था कि...सफ़ीना खुद चाहती है कि मैं उससे मिलूं....तो फिर मुझे मना करने का कोई बहाना नहीं मिला...और फिर मेरे लिए तो अच्छा ही था...सफ़ीना फिर मिलने का वादा करके चली गई...जाते हुए उसके चेहरे पे एक मुस्कान थी...कि जिस काम से वो आई थी....वो हो चुका था...और मेरे चेहरे पे एक मुस्कान थी...जो सफ़ीना को देखने के बाद आई थी...मैं भूल गया कि वो लड़की पच्चीस हजार का चेक लेकर गई है...पता नहीं क्या करेगी...?

फिर दोपहर में उसका फोन आया...“सर आपका ‘वेलकम किट’ रेडी है....मैं आ जाऊं देने के लिए...?” मैंने पूछा...“इतनी जल्दी...? आपने तो कहा था...दो दिन लगेंगे...?” फिर उसने कहा...“हां सर...सब डिटेल्स ठीक थीं इसलिए जल्दी हो गया...” उस वक़्त एक बज रहा था...नमाज़ का वक़्त हो रहा था...मैंने कहा...“अभी तो मैं नमाज़ के लिए जा रहा हूँ...आप उसके बाद आइये...” सफ़ीना ने कहा...“ठीक सर...मैं आपको दो बजे फोन करती हूँ...अल्लाह हाफ़िज़....” सफीना ने जो कहना था कह दिया...मुझे बस ये समझ में आया कि वो मुझसे मिलने आ रही है...दो बजे. उसका वो बाद में कहना...“अल्लाह हाफ़िज़...” मेरे दिल को छू गया था...उसने मेरी हिफाज़त के लिए ऐसा कहा था...इसका मतलब उसे मेरी फिक्र थी...और ये अहसास मेरे लिए ऐसा था जैसे मेरे अंदर दो बोतल खून एकाएक बढ़ गया हो...

मैंने नमाज़ खत्म होने के बाद सफ़ीना को फोन किया...सफ़ीना ने कहा...“सर, मैं बांद्रा के लिए निकल गई हूँ...मेरा एक्ज़िक्यूटिव आएगा और वो आपको किट दे देगा....” मुझे ये कतई मंजूर नहीं था...अभी तो मैं अपने ख़ुदा का शुक्रिया अदा करके आ रहा था कि उसने मुझे इस खूबसूरत सफ़ीना से मिलाया...और अब सफ़ीना कह रही थी कि वो नहीं आ रही है...उसकी जगह कोई और आ रहा है...

तब तक मुझे भी इतना हौसला मिल चुका था कि मैं अपने दिल की बात कह सकता था...सो मैंने भी कह दिया...“जी... ये ठीक नहीं है....आपने कहा था कि आप आएँगी...अब आप किसी और को मत भेजिए...मैंने तो सोचा था आप आएँगी फिर हम दोनों एक साथ लंच करेंगे....”

सफ़ीना का दिल बहुत बड़ा था...उसने मुझे नाराज नहीं किया और अगली सुबह साढ़े नौ बजे अंधेरी स्टेशन पर मिलने का वादा किया...अगली सुबह मैं जल्दी-जल्दी तैयार होकर स्टेशन पहुँच गया...मगर सफ़ीना अभी नहीं आई थी...मैंने फोन किया तो उसने कहा...“मैं दस मिनट में पहुँच रही हूँ...” दस मिनट बीस मिनट में बदल गए...दस बजने को आये थे मगर सफ़ीना अभी नहीं आई थी...मेरे दिमाग में बहुत सारे ख्याल आ-जा रहे थे...मैं सोच रहा था... सफ़ीना के साथ मैक्डॉनल्ड में नाश्ता करूँगा....फिर साथ में ऑटो में बैठकर अंधेरी ईस्ट चलेंगे...दोनों का ऑफिस उधर ही था...

काफी देर इन्तजार करने के बाद सफ़ीना आई...मैंने सफ़ीना को देखा...वो मेरी ही तरफ आ रही थी...मगर आज मुझे उसके चेहरे पर वो रौनक दिखाई नहीं दी...शायद मेरी नज़र में कोई कमी आ गई थी...शायद मैं सफ़ीना को अकेले मिलना चाहता था और सफ़ीना अपने साथ एक बॉडीगार्ड लेकर आई थी...सफ़ीना के साथ में एक लड़की और थी...मुझे उस लड़की के बारे में कुछ नहीं कहना था...मुझे शिकायत हो रही थी सफ़ीना से....मुझे बिलकुल अच्छा नहीं लगा था...इतनी सारी बातों के बाद सफ़ीना मुझसे सिर्फ काम के सिलसिले में मिलने आई थी...उसने मुझे ‘वेलकम किट’ दिया और कहा... “इसमें से एक पेपर मुझे चाहिए...” उसने मुझे लिफ़ाफ़ा खोलने के लिए कहा....मगर मैं तब तक इतना हार चुका था कि एक लिफ़ाफ़ा भी नहीं खोल सकता था...मैंने उसी से कहा...“आप ही खोलिए...” सफ़ीना ने जल्दी-जल्दी लिफ़ाफ़ा खोला और मुझे सारी चीजें दिखाईं...“ये है आपका एटीएम कार्ड... ये है चेक बुक...ये तीनों पासवर्ड...एक एटीएम का ...एक...नेटबैंकिंग का...और ये फोन बैंकिंग का...”

मैंने पूछा...“अब आपको किधर जाना है...?” सफ़ीना ने अपनी उसी मोहक अदा से कहा...“अब मुझे दादर जाना है...” पहली बार मुझे लगा कि सफ़ीना झूठ बोल रही है....सच जो भी हो लेकिन एक सच ये था कि सफ़ीना मेरे

साथ नहीं थी...उसने...कहा...“और कुछ...?” मैं कहना तो चाह रहा था मगर मैं कैसे कहता? उसके साथ एक लड़की और थी...मैं कुछ न कह सका...सफ़ीना...“ओके...बाय...” कहके चल दी....मैं उसे जाते हुए देख रहा था...मैं सोच रहा था...किसी ने सच ही कहा है....धोखा हमेशा खूबसूरत ही होता है...लेकिन सफ़ीना ने कोई धोखा नहीं दिया था...वो तो बस अपना काम एक ‘अपनेपन’ से कर रही थी....वो तो मैं था जो उसके इस बेबाक ‘अपनेपन’ में अपने आप को ढूँढ़ रहा था....

****



भिन्न-भिन्न चीनियों की नज़र में भारत के विभिन्न रूप



तिआन केपिंग(Tian Keping)
गुआंग्डोंग विदेशी अध्ययन
विश्वविद्यालय, गुआंगज़ौ, चीन

भारत एक कैसा देश है? इस प्रश्न का जवाब जानने की जिज्ञासा चीनी लोगों के हृदय में अधिक और अधिक उत्पन्न होने लगी है। लेकिन भिन्न-भिन्न चीनी लोगों की नज़र में भारत का रूप बिल्कुल अलग-अलग है। मैं उन्हें दो भागों में बांटती हूँ-

पहले प्रकार चीनी लोगों की आंखों में भारत एक धार्मिक देश है, जिसका मुख्य धर्म बौद्ध धर्म है। उन्हें लगता है कि भारत और चीन के बीच सब से बड़ी भिन्नता धर्म की है। भारतीय लोग ईश्वर को मानते हैं जबकि चीनी लोग उसे नहीं मानते। इसलिए भारतीय लोग भाग्य पर विश्वास करते हैं और चीनी लोग केवल अपने आप पर विश्वास करते हैं। उन्हें लगता है कि भारतीय लोग इस जन्म की अपेक्षा अगले जन्म में ज्यादा रुचि लेते हैं। इसलिए शारीरिक और मानसिक श्रम की कोशिश से अपना जीवन स्तर बदलने की बजाए उन्हें सभी चीज़ो को शांत मन से स्वीकार करने का प्रवृत्ति अधिक है।

दूसरे प्रकार वे लोग हैं जिनकी नज़र में भारत में बहुत धर्म तो हैं पर साथ में उसके संविधान में धर्मनिरपेक्षता की घोषणा भी की गई है और इसका संख्या की दृष्टि से सबसे बडा धर्म बौद्ध धर्म नहीं है, हिंदू धर्म है। हां , बहुत से भारतीय लोग जो भाग्य तो मानते हैं लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि वे दैनिक जीवन में मेहनत नहीं करते। उन्हें भी विश्वास है कि वे अपनी श्रम-शक्ति से और ईश्वर के आशीर्वाद से अपना भाग्य स्वयं बदल सकते हैं। इसलिए वे भी चीनी लोगों की तरह कोशिश से काम करते रहते हैं। लेकिन उनका काम करने का तरीका चीनी लोगों से भिन्न हैं। उन्हें लगता है कि काम करने का अंतिम उद्देश्य अपने लाभ के लिए नहीं है, बल्कि ईश्वर के लिए है। इसलिए अपना कार्य चाहे सफल हो या विफल, यह सबसे महत्वपूर्ण बात नहीं है। बल्कि सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि वे ईश्वर के ऊपर कभी अपना काम नहीं छोड़ते और श्रीमदभगवद्गीता के जीवन-दर्शन के अनुसार कभी अपना कर्म-फल पाने का हठ भी नहीं करते। अत : ऊपर-ऊपर से देखने में सफलता प्राप्त करने की इच्छा इतनी बड़ी नहीं लगती है,जबकि वास्तव में ऐसा नहीं होता वे शांत मन से काम करते हुए अपने लक्ष्य तक पहुंचना चाहते हैं।

पहले प्रकार के लोगों की नज़रों में भारत में जो सामाजिक समस्याएं हैं, उन्हें समझने में बहुत मुश्किल है। जैसे, जाति-प्रथा, दहेज़-प्रथा और स्त्री की निम्न स्थिति आदि। उन्हें समझ में नहीं आता है कि क्यों भारतीय लोगों को चार वर्णों के अनुसार विभाजित किया गया है और क्यों कुछ लोग आज भी अछूत हैं?क्यों विभिन्न वर्ण के लोग परस्पर विवाह नहीं कर सकते ?क्यों स्त्री के साथ काफ़ी अन्याय होते हैं, जैसे बाल-विवाह , यौन-शोषण और विधवा होने के बाद दूसरा विवाह बहुत बड़ी मुश्किल हो पाना आदि।

दूसरे प्रकार के चीनी लोगों ने भी ये समस्याएं देखी और महसूसी हैं पर वे रामायण और महाभारत पढ़कर इन समस्याओं का उद्भव जान सके हैं। जैसे वे जानते हैं कि ऋग्वेद के अनुसार दुनिया के सबसे पहला पुरुष यानी ब्रह्मा के मुख, भुजा, उदर(पेट) और पैर से ब्रहमण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र पैदा हुए हैं। आज तक भी अधिकतर भारतीय लोग ऋग्वेद पवित्र मानते हैं और इसका विश्वास करते हैं। यही जाति-प्रथा का एक आधार यह भी है। उनके विचार से विभिन्न जाति के बीच विवाह नहीं होना चाहिये ताकि वर्ण का मिश्रण न हो। इसके साथ जब दूसरे प्रकार चीनी लोग सत्यमेवजयते जैसे कार्यक्रम के द्वारा भारतीय लोगों में अपनी समस्याओं का सामना करने का साहस देखते हैं तो खुश होते हैं।

दूसरे प्रकार के लोगों की आंखों में भारतीय संस्कृति की विशेषता सचमुच विविधता(अनेकता) अनेकता में एकता भी है। चाहे कितने धर्म हो, चाहे कितनी जातियां हों, चाहे कितने विभिन्न प्राकृतिक क्षेत्र हों, चाहे इतिहास में कितनी बार विदेशी सेनाओं ने आक्रमण किया हो, भारतीय लोगों के विराट हृदय के अंदर सब जाति-धर्मों के लिए एक समान भावना मौज़ूद रही है.वह भावना है---विश्वबंधुत्व की भावना। इसीलिए जब दूसरे प्रकार लोग ख़ुद भारत में गए और उन्हें भारतीय लोगों से मदद मिली तो उनकी वह मदद हमेशा के लिए एक यादगार बन गई।

अब शायद आप मुझ से पूछना चाहते होंगे कि ये पहले प्रकार चीनी लोग और दूसरे प्रकार के चीनी लोग कौन हैं ?क्यों उनकी आंखों में भारत विभिन्न है ? पहले प्रकार के वे लोग हैं जो चीनी या अंग्रेज़ी भाषा के टीवी. अख़बार . इन्टरनेट आदि मीडिया से भारत को जानते-समझते हैं, उन्हें हिन्दी आदि भारतीय भाषाएं नहीं आतीं और ख़ुद भारत भी नहीं गए। दूसरे प्रकार के चीनी लोगों में वे हैं जिन्होंने हिन्दी पढ़ी है और ख़ुद भी भारत गए हैं. वे अपनी आंखों से भारत देख के आए हैं. अपने मुंह से भारतीय लोगों से बातचीत की है। भारत को जानने का उनका माध्यम हिन्दी किताब, हिन्दी वैबसाइट (website, हिन्दी रेडियो, हिन्दी टीवी और हिन्दी सिनेमा है।

यह मेरा बड़ा सौभाग्य है कि मैं दूसरे प्रकार की चीनी हूं,जिसे हिन्दी पढ़ने का मौका मिला है और ख़ुद भारत देखने का मौका भी। जब मेरे कुछ मित्रों ने मुझसे पूछा था कि तुम हिन्दी क्यों पढ़ना चाहती हो ?अंग्रेज़ी काफ़ी नहीं है क्या? तो मैंने उन्हें जवाब दिया था कि अगर आप भारत के बाहरी रूप और भारतीय लोगों का दिमाग जानना चाहते हैं तो अंग्रेज़ी काफ़ी है। पर, अगर आप भारत के अंदरूनी रूप को जानना चाहते हैं एवं भारतीय

लोगों के दिल एवं आत्मा जानना-समझना चाहते हैं तो हिन्दी और उसकी अन्य भारतीय भाषाएं पढ़ना ज़रूरी है ! अगर अन्य कोई भाषा न भी आए तो चलेगा लेकिन हिंदी के बिना हिंदुस्तान को जाने अभी चीन में हिन्दी पढ़ने वालों की संख्या निरंतर बढ रही है. ज्यादा से ज्यादा लोग हिंदी सीखने में रुचि ले रहे हैं. । मुझे गहरा अनुभव होता रहा है कि हम सब हिन्दी जानने वाले चीनियों का एक ज़रूरी दायित्व है कि सच्चा भारत चीन तक पहुंचाएं(उसको बताएं) और सच्चा चीन भारत तक तब हम देख सकेंगे कि भारत और चीन के बीच अनेक समानताएं हैं जो पिछले कालखंडों में हम देख नहीं पाए !

परिचय : श्रीमती तिआन केपिंग(Tian Keping)भी गुआंग्डोंग विदेशी अध्ययन विश्वविद्यालय, गुआंगज़ौ, चीन के हिंदी विभाग में लेक्चरर हैं। इनका जन्मस्तान----हबे प्रांत है । बेइजिंग विश्वविद्यालय से इन्होंने हिन्दी में एम.ए किया है। चीन सरकार की फ़ेलोशिप पर हिंदी में प्रवीणता के लिए सन् 2009 में भारत जाकर आगरा केंद्रीय हिंदी संस्थान में एक साल तक पढ़ाई की । सन् 2010 में उन्होंने दिल्ली में विश्व हिंदी दिवस पर हिंदी में एक भाषण दिया,जिसकी खूब चर्चा रही। इसी साल इन्हें भारत सरकार से आयोजित अखिल भारतीय हिंदी वाद-विवाद प्रतियोगिता में भाषा पुरस्कार भी मिला। 18 तरीख़ मई सन् 2015 से 20 तरीख़ तक जब गुजरात की मुख्यमंत्री आनंदी बेनपटेल चीन आई हुई थी थीं। उन दिनों ये उनकी निजी हिंदी अनुवादक रहीं। इसक दौरान इन्होंने कई महत्वपूर्ण कार्यकर्मों के अनुवाद का काम किया। इनके अद्वितीय हिंदी प्रेम और अनथक श्रम से वे बहुत प्रभावित हुईं।



<u>शोध पत्र</u>

भारतीय नवजागरण और पारसी रंगमंच



डॉ. राहुल मिश्र
प्राध्यापक, हिंदी
केंद्रीय बौद्ध विद्या संस्थान (मानद विश्वविद्यालय)

न ठेठ हिंदी न खालिस उर्दू, जबान गोया कि मिली जुली हो ।
अलग रहे न दूध से मिश्री, डली डली दूध में घुली हो ॥

नारायणप्रसाद बेताब द्वारा रचित *महाभारत* नाटक की इन पंक्तियों में हिंदी और उर्दू के समन्वय के माध्यम से भारत की साझी संस्कृति को, गंगा-जमुनी तहजीब को पुष्ट करने का सफल प्रयास प्रकट होता है। *यह नाटक सर्वप्रथम कावस जी पालन जी खटाऊ की कंपनी ने संगम थियेटर देहली में खेला। इसकी अपूर्व सफलता देखकर नाटक कंपनियों के मालिकों ने अपना रुख बदल दिया, लेखकों ने इसका अनुकरण कल्याणकारक समझा। अश्लील नाटकों से घृणा करके जिन सुशील सज्जनों ने नाटक न देखने की प्रतिज्ञा कर रखी थी, उनकी प्रतिज्ञा टूट गई।....देवियों ने तो इसका इतना आदर किया कि सेठ जी को विशेष रूप से केवल स्त्रियों के लिए प्रति सप्ताह एक नाटक करना पड़ता था...।*[1] 21 जनवरी, 1913 को दिल्ली में इसका मंचन हुआ और इसके साथ ही हिंदी नाटकों की और रंगमंच में एक नए युग की शुरुआत हुई। नारायणप्रसाद बेताब के साथ ही आगा हश्र कश्मीरी और राधेश्याम कथावाचक की त्रयी ने हिंदी नाटकों की परंपरा को ऐसे अनूठे ढंग से विकसित किया, जिसे पारसी रंगमंचीय प्रवृत्ति की सार्थक-सकारात्मक प्रगति भी कहा जा सकता है, पारसी रंगमंच का दूसरा अध्याय भी कहा जा सकता है।

उन्नीसवीं सदी तक आते-आते भारत के प्राचीनतम रंग-विधान का लोक-संपर्क पूरी तरह टूट चुका था। सैकड़ों वर्षों की गुलामी के दौरान संस्कृत की स्थापित नाट्य-परंपरा का अस्तित्व सिमट चुका था और इसके स्थान पर मनोरंजन के लिए स्वाँग, खयाल, लीला और नौटंकी जैसे मंचीय करतब शेष थे। धार्मिक आस्थावान लोगों के लिए हरिकथाएँ, जात्राएँ, रामलीलाएँ और रासलीलाएँ थीं। *मुसलमानी शासन के परिणामस्वरूप जनता उर्दू साहित्य से अधिक प्रभावित हो चुकी थी। उर्दू साहित्य फारसी साहित्य से प्रभावित था ही। अतः जनता की प्रेममयी भावनाओं में तड़पना, कलछना, कवाब की सींक बनकर जलना, आहें भरना, कत्ल करना; शराब, प्याला, बेहोशी आदि ही प्रधान रूप थे। प्रेम में उत्सर्ग एवं त्याग का भाव प्रायः लुप्त था। साधारण जनता के समक्ष इसी प्रकार का वातावरण रहता था।*[2] देश में बदलते सामाजिक-सांस्कृतिक वातावरण का यह अलग पक्ष था, जो आम जनता और अभिजात्य वर्ग के मनोरंजन हेतु अलग-अलग किस्म की स्थापनाएँ दे रहा था। देश के अलग-अलग स्थानों में मनोरंजन हेतु इस तरह के ऐसे साधन प्रचलित थे, जो सामान्य लोगों के लिए रंगमंचीय अपेक्षाओं की पूर्ति करने में अक्षम सिद्ध हो रहे थे। इस

तरह एक रिक्तता उत्पन्न हुई। दूसरी ओर कलकत्ता और बम्बई में अंग्रेजों की बस्तियाँ स्थापित हो चुकी थीं। सन् 1854 में कलकत्ता में पहले अंग्रेजी नाटक का मंचन अंग्रेज हुक्मरानों के मनोरंजन के उद्देश्य से हुआ और अंग्रेजी नाटकों के मंचन की परंपरा चल पड़ी। ये नाटक प्रायः अंग्रेजी में होते थे। इन नाटकों में मुख्यतः शेक्सपीयर के नाटक होते थे, जिनमें मारधाड़, जादू-टोना, भूत-प्रेत और रहस्य-रोमांच होता था। तत्कालीन अभिजात्य भारतीयों और विशेषकर पारसी व्यापारियों ने अंग्रेजों की इस रंगमंचीय परंपरा में संभावनाओं को देखा और देशी थियेटर्स स्थापित करने की शुरुआत हुई। इस क्रम में सबसे पहले *बंगाल थियेटर* और *ओरिएंटल थियेटर* की स्थापना कलकत्ता में हुई। *रंगमंच पर नाटक के अभिनय की ओर झाँसी के महाराज गंगाधरराव और लखनऊ के नवाब वाजिदअली शाह की दृष्टि भी गई। वाजिदअली शाह ने 'किस्सा राधा कन्हैया' स्वयं लिखा। सन् 1853 ई. में अमानत ने 'इन्दर सभा' नाटक लिखा। यह सही अर्थ में ओपेरा था। यह काफी लोकप्रिय हुआ। पारसी रंगमंचों को 'इन्दर सभा' की परंपरा से जोड़ा जा सकता है।*[3] अमानत साहब के इन्दर सभा नाटक की तर्ज पर 'सभा' शब्द को जोड़कर अनेक नाटक लिखे गए और उनके मंचन की परंपरा भी शुरू हो गई। नवाब वाजिदअली शाह के बाद 'इन्दर सभा' के युग का अंत हो गया और पारसी नाटक कंपनियाँ अस्तित्व में आने लगीं। सन् 1853 में ही पहली पारसी नाटक मंडली की स्थापना फराम जी गुस्ताम जी दलाल ने की थी। इसके बाद कई पारसी नाटक मंडलियाँ बनती और बिगड़ती रहीं। इन मंडलियों का मुख्य उद्देश्य धन अर्जित करना ही था, जिसके लिए पारसी व्यापारी खूब धन निवेश भी करते थे। जहाँगीर पेस्तन, होरमस जी ताँतरा, माणिक जी जीवन जी, जहाँगीर जी कावस जी, दादाभाई पटेल, महमूद अली वोरा, सोहराब जी फराम जी, सोहराब जी बल्लीवाला, माणिक शाबलसरा और मेहरबान जी कापड़िया आदि पारसी व्यापारियों ने पारसी नाटक मंडलियों की स्थापना की। बीसवीं शताब्दी के आते-आते पारसी नाटक मंडलियों का प्रभुत्व स्थापित हो चुका था।

पारसी नाटक मंडलियों का मुख्य उद्देश्य धन कमाना ही था, मगर उसके लिए, व्यावसायिक हितों को साधने के लिए पारसी रंगमंच ने सबसे पहले रीतिकालीन विलासिता को अपनाया, फिर *विक्टोरियन थियेट्रिकल* विशेषताओं को अपनाया। *शौर्य, चमत्कार, भावुकता और आश्चर्य जैसे भावों को रचकर पारसी रंगमंच ने दर्शकों को खींचकर प्रेक्षागृह में बुलाने और बाँधे रखने के लिए पश्चिम की अभिनय शैली का सहारा लिया। एक तरफ पद्यमय संवाद, लोकप्रिय संगीत की ध्वनियाँ और युद्ध का शोर था, जो दर्शकों की सुनने की भूख को तृप्त करता था, तो दूसरी तरफ साज-सज्जा, वेशभूषा और दृश्यफलकों की चकाचौंध के बीच थे मंच पर घटित होते चकित करने वाले कार्य-व्यापार। प्रेम और युद्ध के माध्यम से शेक्सपीयर की भोंड़ी नकल करने का यह सिलसिला कुछ दिनों के बाद बदला और यहीं से पारसी रंगमंच की अभिनय शैली में कुछ नए तत्त्व आकर शामिल हो गए। भारतीय दर्शकों की रुचियों का ध्यान रखते हुए जब नए नाट्यालेखों की रचना और प्रस्तुति आरंभ हुई, तब पारसी रंगमंच को अपनी अभिनय शैली में बदलाव की आवश्यकता महसूस हुई। अभिनेताओं ने जनसाधारण के रंगमंच- यात्रा, भवई, नौटंकी, माच, ख़याल, स्वाँग और तमाशा आदि से अभिनय के तत्त्वों को चुनकर जाने-अनजाने अपने को बदला। अभिनय का यह रूप विक्टोरियन रूप से पूरी तरह अलग था, जिसे अंग्रेजों ने दिया था।*[4]

पारसी रंगमंच में अगला बदलाव नारायणप्रसाद बेताब, आगा हश्र कश्मीरी और राधेश्याम कथावाचक की त्रयी के आगमन के साथ देखने को मिलता है। मारधाड़, जादू-टोना और रोमांस की नाट्य

प्रस्तुतियाँ जब पारसी नाटक मंडलियों के व्यावसायिक हितों के लिए नकाफी साबित होने लगीं और भारतीय समाज में आजादी के लिए छटपटाहट महसूस होने लगी, उस समय पारसी रंगमंच अपने लिए तय किए गए नवीन दायित्वों के निर्वहन हेतु स्वतः आगे आ गया। इसका नेतृत्व नाटककारों की इस त्रयी ने किया। बेताब जी के महाभारत नाटक के साथ पारसी रंगमंच के नए युग का सूत्रपात हुआ। *बीसवीं सदी के प्रथम दशक से मराठी, गुजराती, मारवाड़ी और उत्तर भारत के हिंदी भाषी अभिनेताओं, निर्देशकों, गायकों तथा बेताब, कथावाचक जैसे नाटककारों ने पारसी रंगमंच के स्वरूप और प्रकृति, दोनों को ही बदल दिया। इस परिवर्तन ने जिस रंगमंच को जन्म दिया, उस ओर मराठी, गुजराती और उर्दू भाषी कलाकार भी आकृष्ट हुए। गाने के बोल हिंदी में होने लगे। इन बोलों से हिंदू और हिंदी भाषा के संस्कार बोलने लगे। इस काल के नाटककार एक साथ तीन परिदृश्यों को जनता के सामने प्रस्तुत करने में पूर्ण सफल हो रहे थे- अंग्रेजी राज्य के अत्याचार, भारतीयों में जागृति और गांधी, गोखले, तिलक आदि के व्यक्तित्व की झलक। ये सब पौराणिक कथाओं के बीच से व्यक्ति किया जाता था। इन नाटककारों ने रामलीला, रासलीला, स्वांग आदि लोकनाट्य के तत्त्वों को अपने अंदर पचा लिया। इस प्रकार दर्शक एक ओर नाटक का आनंद लेते थे और दूसरी ओर उनका अध्यात्म संतुष्ट होता था। इन पारसी हिंदी नाटकों ने जनमानस के साथ-साथ राजनीतिक नेताओं, राजा-महाराजाओं को इतना अधिक प्रभावित किया कि जिनमें भी थोड़ी-सी राष्ट्रीय चेतना होती थी, वे बार-बार ऐसे नाट्यकारों को अपने यहाँ आमंत्रित करता था।*[5] यही कारण था कि पारसी नाटक मंडलियाँ वर्ष-पर्यंत देश-भर में भ्रमण करती थीं और अपनी प्रस्तुतियों के माध्यम से जनसाधारण का मनोरंजन करने के साथ ही राष्ट्रीय चेतना के विकास में योगदान देती थीं। इसी कारण पारसी रंगमंच से जुड़े नाटककारों-कलाकारों के प्रति आम-जन का जुड़ाव होता था।

आम जनता के साथ पारसी रंगमंच के घनिष्ठ जुड़ाव के लोक-हितकारी स्वरूप का अत्यंत रोचक वर्णन राधेश्याम कथावाचक ने अपने संस्मरण में किया है। राधेश्याम कथावाचक सन् 1911-12 के आसपास के एक संस्मरण का जिक्र करते हुए लिखते हैं कि काशी में हिंदू विश्वविद्यालय की स्थापना हेतु धन-संग्रह के लिए महामना मदनमोहन मालवीय, दरभंगा नरेश, शिवप्रसाद गुप्त और दीनदयालु शर्मा के साथ ही कई गणमान्य व्यक्ति पधारे थे। उनके अभियान के लिए राधेश्याम कथावाचक ने 8-10 गीत लिखे और वे गीत गाए गए, जिनसे प्रभावित होकर बरेली की जनता ने कई हजार रुपये दान में दिए, जो काशी हिंदू विश्वविद्यालय की स्थापना के लिए उस समय का बहुत बड़ा आर्थिक योगदान था।[6] राधेश्याम कथावाचक द्वारा लिखे गए गीतों में से एक चर्चित गीत की पंक्तियाँ निम्नलिखित हैं-

हिलमिल करो जाति-उद्धार, भाइयो समय न बारम्बार ।
कोटिपती दें लक्ष-लक्ष, लखपती हज़ार-हज़ार ।
मध्यम श्रेणी देंय सैकड़ों, निर्धन के दो-चार।
हमें दो पैसे भी स्वीकार- भाइयो, समय न बारम्बार-

राधेश्याम कथावाचक द्वारा रचित नाटक भक्त प्रह्लाद में बर्तानिया हुकूमत के खिलाफ राष्ट्रीय चेतना की, नवजागरण की सांकेतिक-प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति हुई। इस नाटक में हिरण्यकश्यपु को अंग्रेजों के रूप में और भक्त प्रह्लाद को अहिंसक सत्याग्रही के रूप में प्रस्तुत किया गया था। इस नाटक की प्रशंसा आचार्य

महावीरप्रसाद द्विवेदी, गणेशशंकर विद्यार्थी और बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' जैसे पत्रकारों ने की थी और भारत की आजादी के लिए चल रहे आंदोलन के लिए एक संदेश माना था। भारतीय स्वाधीनता आंदोलन कालांतर में भक्त प्रह्लाद जैसे सत्याग्रहियों के रास्ते पर ही चला था। ऐसा ही एक प्रसंग नारायणप्रसाद बेताब के नाटक 'किन्नर कुमारी' के साथ जुड़ा हुआ है। सन् 1927-28 में एक अमेरिकी महिला केथरीन मेयो (मिस मेयो) ने 'मदर इंडिया' नाम से एक किताब लिखी, जिसमें भारत की तमाम बुराइयों का जिक्र किया गया था। लाला लाजपत राय ने इस किताब को 'गटर इंस्पेक्टर्स रिपोर्ट' बताया था। बेताब जी ने इस किताब में किए गए वर्णनों की प्रतिक्रिया के तौर पर 'किन्नर कुमारी' नाटक की रचना की, जिसमें उन्होंने अंग्रेजों की मानसिकता का सटीक और तीक्ष्ण विश्लेषण किया। उन्होंने एक चर्चित गीत भी नाटक में जोड़ा, जिसके बोल निम्न थे-

बहारे गुल को बुलबुल ही, खुशी से देख सकती है,
हमेशा चील तकती है, तो मुरदारों को तकती है।
शराबी ढूँढ़ लेता है, जहाँ होता है मयखाना,
सू-ए-दैरो-हरम जाते हैं, जिनके दिल में भक्ति है।
हवन कुण्डों को देखेगा, न दारोग़ा सफाई का,
फक़त कूड़े के ढेरों पर, नज़र उसकी लपकती है।
शिवालय और मस्जिद के, खुले हैं गो कि दरवाज़े,
कुमारी किन्नरी लेकिन, वहाँ जाते झिझकती है।[7]

पारसी रंगमंच की उत्पत्ति के प्रारंभिक वर्षों में खुदा दोस्त, लैला मजनू, इसरत सभा, लैलो निहार, फरेबे मुहब्बत, विक्रम विलास, मार आस्तीन, सफेद खून और अंजामे उलफत जैसे नाटक खेले जाते थे। बाद के वर्षों में, विशेषकर नारायणप्रसाद बेताब, आगा हश्र कश्मीरी और राधेश्याम कथावाचक की त्रयी के आगमन के उपरांत महाभारत, रामायण, वीर अभिमन्यु, श्रवण कुमार, हरिश्चंद्र, छत्रसाल, यहूदी की लड़की, मातृभक्ति, कुमारी किन्नरी उर्फ मदर इंडिया, खजान-ए-दीन और नूरे इस्लाम जैसे नाटकों का मंचन होने लगा, जिसे आम जनता ने न केवल खुले मन से स्वीकार किया, वरन् इन नाटकों की अंतर्निहित मूल भावना को आत्मसात् भी किया। पारसी रंगमंच अपने विकासक्रम में रोमांचकारी घटनाओं से प्रारंभ होकर पौराणिक कथाओं से गुजरता हुआ सामाजिक समस्याओं और समाधान की ओर मुड़ता गया।

यही वह युग था, जब भारत में नवजागरण का सूत्रपात हुआ। आर्य समाज, प्रार्थना सभा और ब्रह्मसमाज जैसे संगठन देश की पुरातन गरिमा को पुनर्जीवित करने का प्रयास कर रहे थे और राष्ट्रीय चेतना के विकास में योगदान दे रहे थे। उस समय का समाज शैक्षिक और आर्थिक स्तर पर उन्नत नहीं था, लिहाजा साहित्य के माध्यम से नवजागरण की अभिव्यक्ति को अनुभूत करने वाले लोगों की संख्या सीमित ही थी और नवजागरण की साहित्य पर आधारित धारा का प्रवाह नगरों में रहने वाले पढ़े-लिखे लोगों तक ही सीमित था। गाँवों-कस्बों में बसने वाली भारतीय आत्मा तक नवजागरण की चेतना को पहुँचाने के लिए साहित्य की भूमिका अत्यंत सीमित थी और ऐसे में एक रिक्तता उत्पन्न हुई, जिसे भरने का काम पारसी नाटक मंडलियों ने किया। पारसी नाटक मंडलियों ने राष्ट्रीय और पुनरुत्थानवादी भावनाओं को अजीबोगरीब

दृश्यों और चमत्कारपूर्ण घटनाओं के मंचन के साथ रँगकर प्रस्तुत किया। *शुद्ध शास्त्रीय, लोक-संगीत के साथ 'इंदर सभा' की संगीत परंपरा को भी इन्होंने एक नई लहर प्रदान की। इतना ही नहीं पारसी, यूनानी, अंग्रेजी, अरबी धुनों को भी इन्होंने अपने आकर्षण में शामिल कर लिया। भारत के विभिन्न अंचलों की तानों और पल्टों को भी इन्होंने सहर्ष स्वीकार कर आम आदमी के मन को वशीभूत कर लिया।*[8] पारसी रंगमंच में भारतीय गायकी- ठुमरी, राई, दादरा, कजरी, होरी, गजल आदि को समेटकर नवजागरण की धारा से आम जनमानस को जोड़ने का प्रयास किया गया। इस कारण पारसी रंगमंच का, पारसी नाटक मंडलियों का विस्तार कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक और कच्छ का रन से लेकर बंगाल की खाड़ी तक था। पारसी नाटक मंडलियों के व्यापक जन-सहभाग को इसी से समझा जा सकता है।

इसी दौरान भारतेंदु हरिश्चंद्र का आगमन हुआ। वे बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। भारतेंदु के नाट्य-लेखन और नाटकों के मंचन के संबंध में प्रचलित है कि उन्होंने एक पारसी नाटक मंडली द्वारा मंचन किए जा रहे शकुंतला नाटक को देखा, जिसमें दुष्यंत और शकुंतला का चित्रण अत्यंत फूहड़ तरीके से किया जा रहा था। इसे देखकर उन्हें बहुत दुःख हुआ और उन्होंने नाटकों को युगीन संदर्भों से, राष्ट्र के पुनरुत्थान से जोड़ने के लिए आंदोलन चलाया। *वह निरंतर थियेटराना जगत से अलग नयी नाट्य परंपरा, भिन्न नाट्यशिल्प और हिंदी रंगमंच की स्वतंत्र विकास-परंपरा के प्रति संघर्षरत रहे।*[9] भारतेंदु के द्वारा किए गए प्रयासों के परिणामस्वरूप ऐसे नाटकों के लेखन और मंचन की शुरुआत हुई, जिन्हें संभ्रांत और अभिजात्य वर्ग के अनुकूल कहा जा सकता है, जिन्हें सभ्य-शिष्ट-शालीन कहा जा सकता है और जिन्हें नवजागरण की प्रवृत्तियों से पूर्ण भी कहा जा सकता है। इसके बावजूद पारसी रंगमंच की व्यापक जनस्वीकार्यता भारतेंदु और उनकी मंडली के नाटककारों से कम नहीं थी। इस तरह भारतेंदु का रंगमंच और पारसी रंगमंच समानांतर चल रहे थे। भारतेंदु का रंगमंच शुद्धतावाद से पूर्ण और साहित्यकारों द्वारा स्वीकृत था, जबकि पारसी रंगमंच अपने शुरुआती दौर की विकृतियों के आरोपों से मुक्त नहीं हो पाया था। इस संदर्भ में भारतेंदु के परवर्ती जयशंकर प्रसाद का उल्लेख करना प्रासंगिक होगा। *पारसी थियेटर के समान ही उन्होंने पौराणिक और ऐतिहासिक नाटकों को पुनरुत्थानवादी और राष्ट्रीय भावना को छायावाद के झीने परदे में से अभिव्यक्त किया। उनका रंगबंध पारसी है और कथानक काव्यात्मक और साहित्यिक। इसीलिए वे न लोक के हो सके और न काव्य और साहित्य के। उन्होंने इश्क और राष्ट्रीय भावना के विरोधी तत्त्वों को मिलाने के प्रयास में नाट्यकला को खो दिया। पारसी इसी विरोधी भावना द्वारा सफल हुए, क्योंकि वे लोक के समीप थे और प्रसाद असफल रहे, क्योंकि वे लोक से भरे पलायनवाद के समीप पहुँच गये।*[10] पारसी रंगमंच साहित्यिक परिधि में इसी कारण सम्मिलित नहीं हो सका, क्योंकि उस पर स्तरहीन और फूहड़ होने के आरोप लगते रहे और शुद्धतावाद के समर्थक साहित्यकारों के लिए उसकी लोकप्रियता को सहज रूप में स्वीकार कर पाना कठिन होता रहा।

पारसी रंगमंच के साथ जुड़ी उसके अतीत की विकृत छवियों के कारण उसके अस्तित्व को नकार दिया जाना और उसे राष्ट्रीय धारा से अलग, नवजागरण की भावना से अलग मान लेना अनुचित और अप्रासंगिक होगा। *पारसी रंगमंच को एक झटके में 'रूढ़ रंगमंच' कहकर नकारा नहीं जा सकता। पश्चिम के रंगमंच के साथ-साथ हमारे पारंपरिक रंगमंच के कई अवशेष इस रंगमंच के भीतर उपलब्ध हैं।*[11] वस्तुतः

पारसी रंगमंच हिंदी रंगमंच और भारत के पुरातन संस्कृत नाट्य-परंपरा के बीच की वह कड़ी है, जिसने संस्कृत नाट्य परंपरा की लोकप्रियता को भारतीय समाज में, भारत के सूदूरवर्ती आंचलिक क्षेत्रों में पुनर्स्थापित करने में अहम भूमिका निभाई है। *साहित्य के इतिहासकारों ने नाटकों की इस विस्तृत दुनिया को असाहित्यिक कहकर उसकी उपेक्षा की तथा हिंदी रंगमंच के इस लोकप्रिय विधान को नाटक के तत्त्वों से रहित बताया। परंतु बात ऐसी नहीं है। पारसी रंगमंच के नाटकों ने हिंदी भाषा और साहित्य के विकास तथा उसकी समृद्धि में महत्त्वपूर्ण योगदान किया है। इनका तथ्यात्मक मूल्यांकन इतिहास की सुरक्षा की दृष्टि से तो आवश्यक है ही, इस कालखंड की नाट्य-विषयक गतिविधियों से भी परिचित होने के लिए भी आवश्यक है।*[12] भारतेंदु हरिश्चंद्र के नाटकों के विधान को देखें, तो स्पष्ट होता है कि भारतेंदु ने भी भारतीय नाट्य विधा के परंपरागत तत्त्वों की प्रतिबद्धता त्यागकर ऐसे नाटक लिखे, जो आम-जन की रुचियों पर खरे उतर सकें। इस तरह भारतेंदु के नाटकों में पारसी नाटकों के परिवर्धित-संवर्द्धित रूप के ही दर्शन होते हैं।

पारसी रंगमंच को नगरों-महानगरों के शिष्ट-संभ्रांत वर्ग में भले ही अपेक्षित स्थान न मिला हो, मगर 'वास्तविक भारत' को मनोरंजन के साथ ही राष्ट्रीय चेतना का अहसास कराने के लिए पारसी रंगमंच का योगदान अतुलनीय है। भारतेंदु के असामयिक देहांत और उनके बाद फिर से उत्पन्न हुई रिक्तता को एक बार फिर पारसी रंगमंच ने ही पूर्ण किया और कालांतर में भारतीय सिनेमा की उत्पत्ति के साथ पारसी रंगमंच ने अपनी विरासत भारतीय सिनेमा को सौंप दी। हिंदी सिनेमा के शुरुआती दौर में अपनी रचनाधर्मिता से भारतीय समाज का, भारतीय राष्ट्रीय चेतना का, नवजागरण की प्रवृत्तियों का उत्कृष्ट प्रदर्शन करने वाले सिने कलाकार पृथ्वीराज, राज कपूर, शशि कपूर, सज्जन, सुदर्शन सेठी, श्रीराम, उजरा और जोहरा सहगल आदि पारसी रंगमंच से ही हिंदी सिनेमा में आए थे।

पारसी रंगमंच की उत्पत्ति *विक्टोरियन शैली* के नाटकों की प्रतिक्रिया के तौर पर हुई और पारसी व्यापारियों के व्यावसायिक हित-साधन के आवरण में भारतीय परंपरागत तत्त्वों को और आम जनमानस में प्रचलित लोकनाट्य विधाओं को अपने में मिलाती चली गई। अपने विकास के क्रम में जिस तरह भारतीय समाज में जिस गति से बदलाव की अपेक्षाएँ विकसित होती गईं, उसी तीव्रता के साथ पारसी रंगमंच अपने सामाजिक दायित्वों का निर्वहन करने हेतु तत्पर होता गया। हृषीकेश सुलभ के शब्दों में, *सन् सत्तावन की गदर के बाद स्वतंत्रता की चाहत पनपी और यह चाहत जैसे-जैसे विकसित होती गई, उसका प्रभाव पारसी रंगमंच पर पड़ता गया। इसी प्रभाव ने वहाँ राष्ट्रीयता का एक रोमानी संसार भी रचा।*[13] इस तरह पारसी रंगमंच भले ही साहित्यिकों के लिए 'अस्पृश्य' रहा हो, मगर उसने अपने दायित्वों के निर्वहन में कोई कमी नहीं छोड़ी। पारसी रंगमंच के माध्यम से भारतदेश के सूदूरवर्ती अंचलों में नवजागरण की उस धारा का उदय इतनी तीव्रता-तीक्ष्णता के साथ हुआ, जिसने कालांतर में राष्ट्रीय चिंतनधारा को समृद्ध किया और देश की आजादी के आंदोलन को ऐसी ताकत दी, जिसका परिणाम सकारात्मक रूप में प्रकट हुआ।

संदर्भ-

1. बच्चन सिंह, हिंदी नाटकों के उद्भव के पूर्व, हिंदी नाटक (आलोचना), राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम सं. 1989, पृ. 21

2. डॉ. प्रेमनारायण शुक्ल, नाटक का उद्भव और विकास, भारतेन्दु की नाट्य-कला, ग्रन्थम्, रामबाग, कानपुर, द्वितीय सं. 1972, पृ. 33
3. बच्चन सिंह, हिंदी नाटकों के उद्भव के पूर्व, हिंदी नाटक (आलोचना), राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम सं. 1989, पृ. 20
4. हृषीकेश सुलभ, पारसी रंगमंच : निकट अतीत का वैभव, रंगमंच का जनतंत्र, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम सं. 2009, पृ. 62
5. रघुवरदयाल वार्ष्णेय, पारसी रंगमंच, रंगमंच की भूमिका और हिंदी नाटक, इंद्रप्रस्थ प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम सं. 1979, पृ. 275-276
6. पं. राधेश्याम कथावाचक, तरुणावस्था (पूर्वार्द्ध), मेरा नाटक-काल, राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, नई दिल्ली, प्रथम सं. 2004, पृ. 43
7. वेब रेफ़रेंस, http://iptanama.blogspot.in/2012/01/blog-post_15.html
8. रघुवरदयाल वार्ष्णेय, पारसी रंगमंच, रंगमंच की भूमिका और हिंदी नाटक, इंद्रप्रस्थ प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम सं. 1979, पृ. 278
9. गिरीश रस्तोगी, अन्धेर नगरी : समकालीन व्यंग्य और लोक का जीवंत मुहावरा, हिंदी नाटक का आत्मसंघर्ष, लोकभारती, इलाहाबाद, प्रथम सं. 2002, पृ. 03
10. रघुवरदयाल वार्ष्णेय, पारसी रंगमंच, रंगमंच की भूमिका और हिंदी नाटक, इंद्रप्रस्थ प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम सं. 1979, पृ. 321
11. हृषीकेश सुलभ, पारसी रंगमंच : निकट अतीत का वैभव, रंगमंच का जनतंत्र, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम सं. 2009, पृ. 61
12. भवानीलाल भारतीय, सिनेमा पूर्व का रंगमंचीय परिदृश्य, बॉलीवुडनामा, सत्साहित्य प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम सं. 2011, पृ. 203
13. हृषीकेश सुलभ, पारसी रंगमंच : निकट अतीत का वैभव, रंगमंच का जनतंत्र, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम सं. 2009, पृ. 61

आओ! हांगकांग में हिन्दी को दुलारें................

डॉ. प्रणव शास्त्री
डी.लिट
अध्यक्ष- विश्व हिन्दी मंच

जून, 2015 में ही कुछ हिन्दी सेवी मित्रों के साथ बैठकर यह योजना बनी कि इस बार विश्व हिन्दी मंच की चतुर्थ अन्तरराष्ट्रीय हिन्दी 'शोध संगोष्ठी हांगकांग में आयोजित की जाय। प्रस्ताव अच्छा लगा। अध्यक्षीय दायित्व निभाना 'शुरू कर दिया गया। 21-27 जून, 2016 की तिथि तय की गयी। लगातार एक वर्ष के परिश्रम और प्रतीक्षा के बाद 49 सहयात्रियों की विविधवर्णी सूची तैयार हुई। इसमें थे, कुछ प्राध्यापक, कुछ इंजीनियर, कुछ परिजन, कुछ वाणिज्य के मनीषी, कुछ प्रबंधन के आचार्य और साथ में नौ खिलखिलाते विभिन्न आयु के बच्चे। 21 जून, 2016 (मंगलवार) को हम सब दस लोग पीलीभीत से रोडवेज की ए.सी.बस से प्रातः 9 बजे बरेली के लिए चल दिए। रास्ते में इन्द्रदेव विदाई-वर्षा करते चल रहे थे। बरेली, महानगर पर 18 अन्य सहचर हमारी, एक प्राइवेट ए.सी. बस में प्रतीक्षा कर रहे थे। सभी मौज-मस्ती करते आगे बढ़े। आकाशवाणी रामपुर में सहधर्मिणी डॉ. प्रणीता गोस्वामी जी की 'गुरूर्बहमा गुरूर्विष्णुः' विषय पर आकाशवाणी वार्ता रिकार्ड कराई। सभी ने आकाशवाणी केन्द्र के अन्दर जाकर रिकॉर्डिंग-प्रसारण की प्रक्रिया देखी। आगे चलने पर मुरादाबाद में एक अन्य सहचर मिल गए। गजरौला के 'भजन स्वाद' रेस्टोरेट में सभी ने ताजा भोजन किया। सायं 7 बजे हम सभी इंदिरा गांधी अन्तरराष्ट्रीय एयरपोर्ट पहुँचे। यहाँ पहले से आए हुए बीस मित्र हम लोगों की प्रतीक्षा में व्याकुल हो रहे थे। सभी मिले। परस्पर परिचय, मेल-मुलाकातों का सिलसिला 'शुरू हुआ। ट्रैक वर्ल्ड वेकेशन्स, दिल्ली के निदेशक श्री मनीष तायल तथा अनिल रावत जी हम सभी यात्रियों के लिए जलपान लाए थे। रात्रि 9 बजे सभी ने चेक-इन किया। हमारी फ्लाइट कैथे पैसेफिक की थी । इसने रात्रि 10.45 पर उड़ान भरी। 22 जून, 2016 को प्रातः 7 बजे हम सब मन में उल्लास और उमंग लिए हांगकांग एयरपोर्ट पर उतरे। इमीग्रेशन में हमारे ग्रुप के 20 यात्रियों को चैकिंग के लिए रोक लिया गया। इन्हें 2 घण्टे बाद वापस भेज दिया। इन दो घंटों में हम सभी की जान सूखी रही। समूह भाव पहली बार वहीं देखा गया। जब इमीग्रेशन के एक अधिकारी ने हमारे पास आकर कहा कि आप लोग होटल जाइए। आपके बाकी साथी बाद में आ जाएँगे तब कोई भी जाने को राजी नहीं हुआ। यह प्रेम-प्रदर्शन सभी को अच्छा लगा। 2घण्टे बाद बाकी 20 साथी सुरक्षा-जाँच के बाद जब बाहर आए, तब सबकी जान में जान आयी। एयरपोर्ट के बाहर निकलते ही हमारी गाइड ऐमी, ग्रुप की नाम-पट्टिका लेकर खड़ी थी। सुन्दर वातानुलित बस में सामान रखकर सभी इधर-उधर देखते हुए, आंनदित होते हुए, चकित होते हुए, होटल द एम्परर हैप्पी वैली पहुँचे। यह भव्य फोर स्टार होटल है। सभी को अपने-अपने कमरे पसंद आए। पैक्ड लंच के साथ ट्रेवल एजेंट श्री विकास राय होटल की लॉवी में मिले। भारतीय भोजन का आनन्द लेकर सभी 4

बजे सायं पुनः होटल की लॉबी में एकत्र हुए। गाइड के साथ हम सभी हांगकांग सिटी- टूर हेतु निकले। सबसे पहले ट्रेन से विक्टोरिया पीक पहुँचे। यह हांगकांग की सबसे ऊँची जगह है। यहाँ से गगनचुंबी इमारतों, समुद्र में आते-जाते समुद्री जहाजों का नजारा बड़ा मनभावन लगता है। आधे घण्टे घूमने के बाद हम सभी मैडम तुसाद वैक्स म्यूजियम देखने गए। यहाँ विश्वप्रसिद्व व्यक्तियों, खिलाड़ियों, सिने अभिनेताओं, संगीतकारों, राजनेताओं के मोम के बड़े कलात्मक पुतले (प्रतिरूप) बनाए गए हैं। प्रिंस चार्ल्स, मैडम एलिजाबेथ, ओबामा को देखकर जैसे ही थोड़ा आगे बढ़े, सारे भारतीय मोदी जी का पुतला देखकर चांैक पड़े। उस प्रतिकृति के साथ सभी ने जी भर के फोटो खिंचाए। आगे सुपरस्टार अमिताभ बच्चन जी का भी पुतला मिला। इसके बाद हम सभी यूनिवर्सिटी आफ हांगकांग का म्यूजियम देखने गए। रात्रि 9 बजे समुद्र-तट पर ' सिम्फनी आफ लाइट' का मनोरम नजारा देखा। रात 11 बजे भारतीय भोजनालय 'खाना खजाना' में स्वादिष्ट भारतीय भोजन करके सभी होटल वापस लौट आए। अगले दिन 23 जून 2016 को प्रातः 9 बजे हम सभी होटल से चतुर्थ अन्तरराष्ट्रीय 'शोध-संगोष्ठी हेतु बासमती इंडियन रेस्टोरेन्ट के सभागार में एकत्र हुए। अंतरराष्ट्रीय 'शोध संगोष्ठी के उदघाटन-सत्र की कार्यवाही आरम्भ हुई। मंच पर अध्यक्षीय दायित्व निभाया डॉ. रामसनेहीलाल 'शर्मा 'यायावर' (फिरोजाबाद) ने। विशिष्ट अतिथि के रूप में मंच पर विद्यमान थे, डॉ. देवराज 'शर्मा (बरेली) डॉ. मुदिता चन्द्रा (जमशेदपुर) प्रो. रेनू 'शुक्ला (देहरादून) तथा मुख्य अतिथि के रूप में गुआंगदोंग अन्तरराष्ट्रीय भाषा विश्वविद्यालय, ग्वान्ग्जाऊ (चीन) के भाषा विभाग के निदेशक डॉ. हू रूई, प्राध्यापिका डॉ.थ्यान ख फिंग तथा इसी विभाग में नियुक्त, गत तीन वर्षों से हिन्दी अध्यापन कर रहे प्रो. गंगाप्रसाद 'शर्मा 'गुणशेखर' जी, उपस्थित रहे । संचालन का दायित्व सँभाला विश्व हिन्दी मंच, भारत के अध्यक्ष डॉ. प्रणव शास्त्री ने। इस सत्र का 'शुभारंभ डॉ. रंजन वर्मा 'विशद', की सरस्वती वंदना से हुआ। विशिष्ट वक्ता के रूप में गोरखपुर से पधारे संस्कृत मनीषी प्रो. मुरलीमनोहर पाठक ने अपने ओजस्बी उद्बोधन से सभी को मुग्ध कर दिया। 'शोध संगोष्ठी के मूल विषय 'साहित्य और संवेदना' पर बोलते हुए उन्होंने कहा कि हम सभी भारतीय तो जन्मजात संवेदनशील होते ही हैं। प्रकृति, गाय, पौधे, नदी, मनुष्य यह सभी हमारी प्रीति का आधार भी हैं और उपादान भी। सभी वक्ताओं के सारगर्भित उद्बोधन के साथ दोपहर 12 बजे उद्घाटन सत्र की इतिश्री हुइ्र।

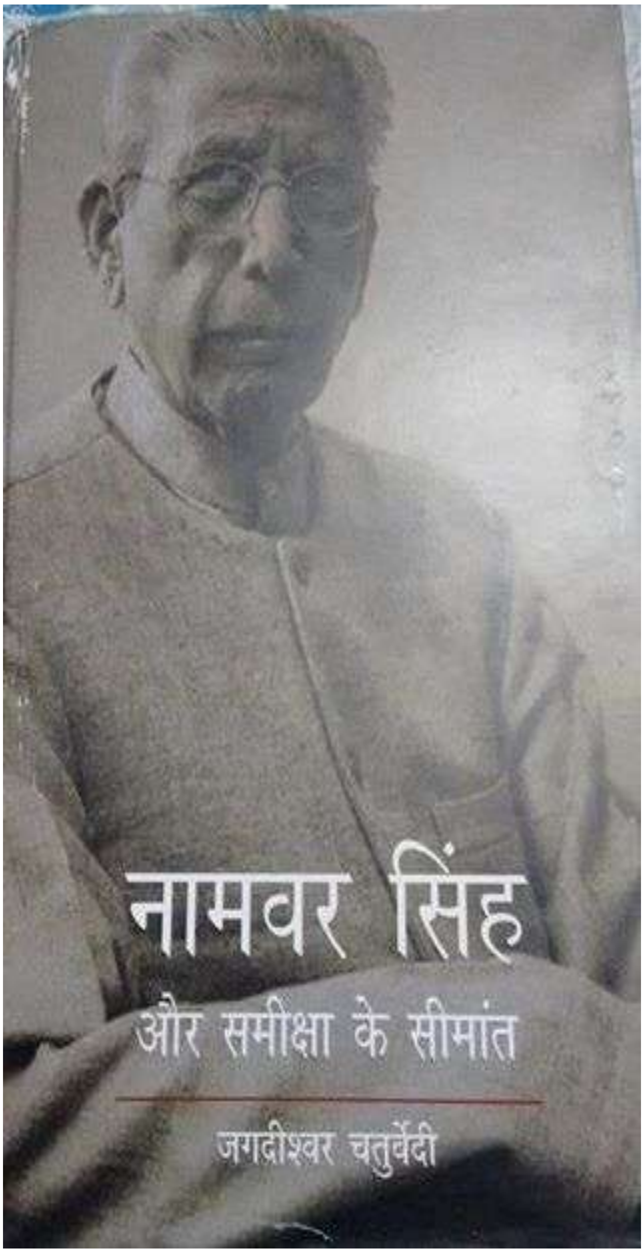
पुनः दोपहर 12.15 बजे प्रथम तकनीकी सत्र आरम्भ हुआ । इस सत्र में मंच पर विशिष्ट अतिथि के रूप में विराजित रहे डॉ. बी. के झा (सुल्तानपुर) डॉ. वी.एस.राव (कुर्नूल) डॉ. अनुराग अग्रवाल (शाहजहाँपुर) प्रो. के. श्रीलता (त्रिवेन्द्रम) डॉ.बुद्धदेव आर्य, (भिवानी) डॉ. राकेशकुमार आजाद (बरेली) डॉ. प्रणीता गोस्वामी (पीलीभीत) डॉ. मंगला रानी (पटना)। मुख्य अतिथि रहीं डॉ. ऊषा प्रसाद (पटना)। इस सत्र में डॉ. राहुल अवस्थी (बरेली) डॉ. रंजन वर्मा (बरेली) डॉ. योगेन्द्र सिंह (बरेली) ने 'शो धपत्र वाचन किया। इस सत्र का संचालन सुकवि डॉ. राहुल अवस्थी तथा अध्यक्षता प्रो. मुरलीमनोहर पाठक (गोरखपुर) ने की। इस सत्र के अंत

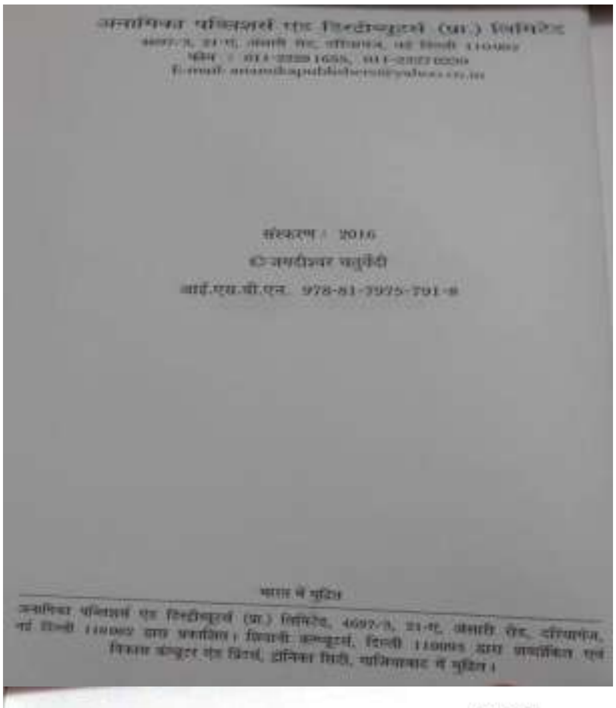
में डॉ. राहुल अवस्थी, डॉ. रामसनेहीलाल ‘शर्मा, डॉ. रंजन वर्मा ‘विशद’ तथा सेमिनार के ‘शोधपत्रों की पुस्तक ‘साहित्य और संवेदना’ का विमोचन भी किया गया।
दोपहर 2 से 3 बजे तक भोजन अवकाश रहा। दोपहर 3 बजे द्वितीय तकनीकी सत्र आंरम्भ हुआ। इस सत्र में अध्यक्ष के रूप में मंच की ‘शोभा बढ़ायी, प्रो. गोविन्द सिरसाटे (बालाघाट) ने तथा विशिष्ट अतिथि रहे प्रो. गंगाप्रसाद ‘शर्मा (चीन), डॉ. प्रणव ‘शास्त्री (पीलीभीत)। ‘शोधपत्र वाचन करने वालों में डॉ. रश्मि (बरेली) डॉ. प्रणीता (पीलीभीत) डॉ. ब्रजलाल (पीलीभीत) डॉ.अनुराग अग्रवाल (शाहजहाँपुर) प्रमुख रहे। इस सत्र का सरस संचालन आन्ध्र प्रदेश से पधारे डॉ. वी. एस. राव ने किया। इस सत्र के अंत में एकादश हिन्दी सेवियों को ‘‘विश्व हिन्दी सेवी सम्मान’’ से विभूषित किया गया। चीन से पधारे डॉ. हू रूई तथा डॉ. थ्यान ख फिंग ने अपने व्याख्यान हिन्दी में दिए तथा आयोजन की भूरि-भूरि प्रशंसा की। राष्ट्रगान के साथ चतुर्थ अन्तरराष्ट्रीय ‘शोध-संगोष्ठी के तीनों सत्रों का अवसान हुआ। सायंकाल को सभी लोग स्थानीय भ्रमण पर गए जहाँ सभी ने कुछ न कुछ ‘शॉपिंग भी की। रात्रि भोजन ‘‘पालकी’’ रेस्टोरेन्ट में करने के उपरान्त होटल में विश्राम किया। अगले दिन 24 जून,2016 को सभी लोग ‘ओशन पार्क’ घूमने गए। यहाँ पूरा दिन मौज-मस्ती चलती रही। डॉल्फिन ‘शो, ट्राली-राइड का सभी ने आनंद लिया। सायंकाल सभी बुद्धमन्दिर तथा पुस्तकालय देखने गए। 25 जून, 2016 को सभी सहचर विश्वप्रसिद्व डिज्नीलैण्ड घूमने गए। यहाँ थ्री-डी फिल्म, ट्रेन-राइड, लाइट एण्ड साउंड ‘शो, कार्टून- परेड आदि प्रमुख आकर्षण रहे। हमारे ग्रुप के एक परिवार के चार पासपोर्ट यहाँ खो गये। वैसे तो भारत भी ईमानदारी के लिये मशहूर है, पर हॉगकांग के लोगों की ईमानदारी और कत्र्तव्यनिष्ठा देखकर हम सभी आनन्दित हुये। खोये हुये चारों पासपोर्ट एक घण्टे बाद ‘गैस्ट रिलेशन’ नामक काउन्टर पर मिल गये। हमेशा अपने पासपोर्ट अपने होटल के कमरे में सुरक्षित रख देने चाहिये, इस घटना के बाद सभी ने यह सीख ली। रात्रि में 9 से 11 तक होटल में सरस काव्य-गोष्ठी सम्पन्न हुई। इसके संचालन का दायित्व सँभाला, सुकवि डॉ. राहुल अवस्थी ने तथा अध्यक्षता की प्रख्यात नवगीतकार डॉ. रामसनेहीलाल ‘शर्मा ‘यायावर’ ने। 26 जून कोे हम सभी ने प्रातः जलपान के बाद स्टीमर से मकाऊ के लिए प्रस्थान किया। एक घंटे के आनंददायी समुद्री सफर ने रोमांचित कर दिया। 12ः30 पर मकाऊ के होटल रीजेन्सी पहुँचे। यह फाइव स्टार होटल बड़ा ‘शानदार लगा। होटल में चेकइन करके सभी सिटी टूर पर निकले। यहाँ ऐतिहासिक चर्च, मकाऊ टावर, बुद्ध मन्दिर, संग्रहालय के बाद होटल वेनेशियन के ‘शानदार परिसर का भ्रमण किया। रात में पूरे ‘शहर की सुन्दर लाइटिंग का मनोरम दृश्य देखा। मकाऊ के विकास को देखकर मनुष्य की दृढ़ इच्छाशक्ति का आभास हुआ। समुद्र के बीच स्थित छोटे से द्वीप को क्या खूब सजाया, संवारा है मकाऊ वासियों ने। यहाँ घरों से अधिक बड़े-बड़े होटल और कैसिनो है । मकाऊ में ‘टेस्ट आफ इंडिया’ ‘इडियन गार्डन’ का भारतीय खाना सदा याद रहेगा। अगला दिन, 27 जून, 2016 हमारे विदेश प्रवास का आखिरी दिन था। सभी स्वदेश लौटने की खुशी में मग्न थे। फेरी टर्मिनल आते समय एक प्रसिद्व

लाइब्रेरी का भी भ्रमण किया। स्टीमर ने सीधे हांगकांग एयरपोर्ट ही उतारा। 'शाम 5.45 की कैथे पैसेफिक की फ्लाइट द्वारा हम सभी रात्रि 8.30 पर दिल्ली उतर गए। सभी मीठी यादों के साथ अपने-अपने गन्तव्यों पर रवाना हुए। इस यात्रा में राजुल 'शर्मा, पीयूष 'शर्मा, रवि 'शर्मा, 'शान्तम 'वर्मा, काव्या 'वर्मा, राकेश आजाद, प्रणीता गोस्वामी का विशेष सहयोग रहा। ईश्वर की कृपा पग-पग पर हमें दुलारती रही। इस प्रकार हिन्दी की विश्व यात्रा का यह एक प्रमुख विनम्र चरण पूर्ण कर विश्व हिन्दी मंच यदि चाहे तो अपने गिलहरी- प्रयासों पर इठला सकता है, इतरा सकता है और चाहे तो गर्वित भी हो सकता है। जय हिन्दी-जय भारत।



पुस्तक चर्चा

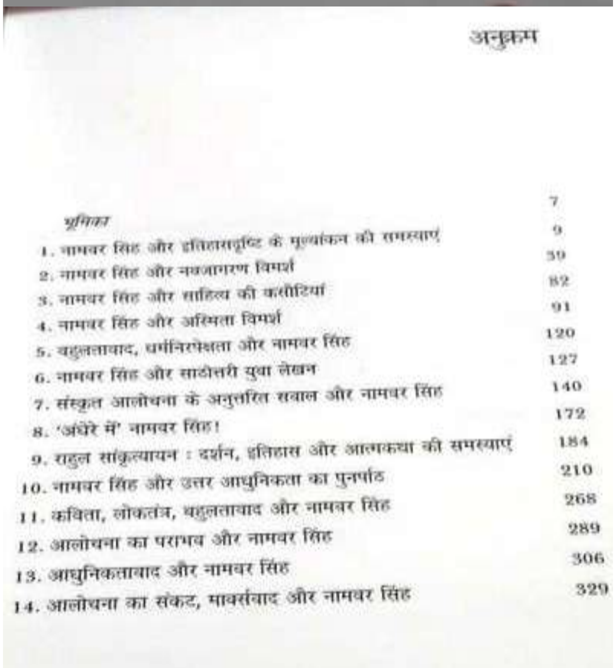



अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.) लिमिटेड

संस्करण : 2016
©जगदीश्वर चतुर्वेदी
आई.एस.बी.एन. 978-81-7975-791-8

भारत में मुद्रित

अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.) लिमिटेड, 4697/3, 21-ए, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली 110002 द्वारा प्रकाशित। शिवानी कम्प्यूटर्स, दिल्ली 110085 द्वारा शब्दांकित एवं विकास कंप्यूटर एंड प्रिंटर्स, ट्रॉनिका सिटी, गाजियाबाद में मुद्रित।


अनुक्रम

दूर देश की पाती

Deputy Secretary General <dsg@vishwahindi.com> ने लिखा:

विश्व हिंदी परिवार के सभी आदरणीय सहयात्री,

नमस्कार।

आपको ज्ञात होगा कि पिछले 27 मई को भारत से आए डॉ. विनोद कुमार मिश्र ने विश्व हिंदी सचिवालय के महासचिव के रूप में पद ग्रहण कर लिया है।उनके मॉरीशस आगमन और कार्यों के हस्तांतरण के लिए आवश्यक समय के बाद आगामी 26 जून को मैं सचिवालय से सेवामुक्त हो जाऊँगा तथा पुनः मॉरीशस के महात्मा गांधी संस्थान में कार्य करने लगूँगा। सचिवालय में लगभग 6 साल के कार्यकाल ने मॉरीशस, भारत व विश्व भर के आप सभी मित्रों/सहयोगियों/ सहयात्रियों के साथ सम्पर्क बनाने, कार्य करने का अद्भुत अवसर दिया जिससे आज इस संस्था से विदा लेते हुए मैं अपने आपको अनुभव और स्नेह का बहुत ही धनी पा रहा हूँ।

एक नई संस्था को सींचने, सँवारने तथा आपकी अपेक्षाओं, आशाओं और आस्थाओं के योग्य बनाने का प्रयास करने का जो अवसर मिला उसके लिए आभार। अभियान में जो असफलताएँ मिलीं उन्हें साथ लिए जा रहा हूँ - वे भविष्य में चुनौती बनकर मार्गदर्शन करती रहेंगी। लेकिन सफलताएँ सभी आपको सौंपे जा रहा हूँ क्योंकि उनका लेशमात्र भी आपके सहयोग और समर्थन के बिना सम्भव न होता। इसलिए आज आज्ञा मांगते हुए यह भी विश्वास पाना चाहूँगा कि आप सभी भविष्य में इसी प्रकार अपनी इस संस्था और इसके सभी पदाधिकारियों व सेवियों को वैसा ही अचूक सहयोग और समर्थन देते रहेंगे जैसे मेरे इस कार्यकाल में मुझे प्राप्त हुआ।

एक विश्वास मैं भी दिलाता हूँ कि हिंदी के समर्थन में जो, जितना आप सभी से सीखा है, जो भावना विकसित हुई है,वह आगे भी जारी रहेगी। पता दफ़्तर का और इ-मेल का बदल रहा है (gulshansooklall@gmail.com), भावनाएँ और आस्था अब भी हृदय वाले उसी मकान में रहेंगी जहाँ आप सभी का वास है।

सब को साथ लिए जा रहा हूँ... आज्ञा दें ।

गंगाधरसिंह गुलशन सुखलाल
उप महासचिव
विश्व हिंदी सचिवालय

Respected friends of the Global Hindi Community,

Namaskaar.

As you may be aware, Dr. Vinod Kumar Mishra Has assumed his post as Secretary General (Indian Side) of the World Hindi Secretariat on 27th May 2016.

Following his assumption of duty and after the phase necessary for handing over all Secretariat responsibilities to him, I shall relinquish charge from the Secretariat as from 26th June 2016 and revert to my Senior Lecturer post at the Mahatma Gandhi Institute in Mauritius.

My tenure of almost six years of at the WHS has been an extraordinary opportunity to connect and collaborate with friends, collaborators and people sharing the same passion for Hindi from Mauritius, India and across the globe. This opportunity has blessed me with not only your affection but experience galore.

I express my most sincere gratitude towards one and all for the marvelous opportunity to make a humble contribution to the growth, evolution and emancipation of a budding Institution and the opportunity to place it at par with your expectations and faith. The journey has had its share of failures which I shall carry forward with me as lighthouses for future challenges. But the innumerable successes shall always be

dedicated to all of you as they all proudly stand on the robust foundation of your support and cooperation.

Hence, today, when I take your leave I also wish to take along the strong belief that you shall all continuously support the Institution and all its officials like you have been doing during my tenure.

I also leave with a pledge that all that I have learnt from you while supporting the Hindi cause, all the passion that you have all inculcated, remain intact. No matter if the postal and email addresses change (gulshansooklall@gmail.com), the passion for Hindi shall cohabitate with the affection for all of you in the most secure corner of my heart.

With these words, I take your leave.

Gangadharsing Gulshan Sooklall
Deputy Secretary General
World Hindi Secretariat, Mauritius
www.vishwahindi.com ****** dsg@vishwahindi.com
https://www.facebook.com/groups/vishwahindisachivalay/
+230-6761196

हलचल

शहापुर, में हिन्दी की अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन

सोनुभाऊ बसवंत कला व वाणिज्य महाविद्यालय, शहापुर के ‘हिन्दी विभाग’ एवं ‘आंतरिक गुणवत्ता निर्धारण प्रकोष्ठ’ द्वारा “वैश्वीकरण और समकालीन हिन्दी साहित्य” विषय पर शोधार्थी एवं विद्यार्थियों को केंद्र में रखकर किया गया एक दिवसीय अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन संम्पन हुआ । कुमारी पुर्णिमा चौरे ने सुमधुर स्वर में सरस्वती वंदना तथा स्वागत गीत प्रस्तुत किया। महाविद्यालय के प्रचार्य डॉ. सागर सर तथा हिन्दी विभागाध्यक्ष डॉ. अनिल सिंह ने उपस्थित सभी अतिथियों का स्वागत एवं परिचय दिया । कार्यकारी समिति के सचिव श्री. दिलीप भोपत राव ने देश-विदेश से आये अतिथि विद्वानों का स्वागत करते हुए महाविद्यालय की गतिविधियों से अवगत कराया।



समाज और साहित्य में उल्लेखनीय कार्य हेतु श्री. फ़िरोज पैच (ट्रस्टी एवं मानद सचिव, हिंदुस्तानी प्रचार सभा, मुंबई) को **“जीवन गौरव”** सम्मान से सम्मानित किया गया । साहित्यिक योगदान के लिए डॉ. सुशीला गुप्ता (विशेष कार्य

अधिकारी,हिंदुस्तानी प्रचार सभा, मुंबई), डॉ. सुरेश चन्द्र,(सम्पादक,दर्पण ओस्लो-स्पाइल,नॉर्वे),डॉ.सिराजुद्दीन नुर्मातोव,(अध्यक्ष, साउथ एशियन लैंगवेज, उजबेकिस्तान), डॉ. ई.जी. डब्ल्यू.पी. गुनसेना (भाषा विभाग, जयर्वेनपुरा विश्वविद्यालय, (श्रीलंका) डॉ. रामेश्वर सिंह (संस्थापक अध्यक्ष, भारत-रूसी मैत्री संघ 'दिशा' मास्को, रूस),को "**साहित्य गौरव**" सम्मान प्रदान किया गया। हिन्दी की सेवा में निरंतर संलग्न रहने वाले डॉ. अशोक फर्डे (मुंबई), डॉ. बलवंत सिंह,(मुंबई) और डॉ. पी.के सिंह को "**साहित्य श्री** " सम्मान से नवाजा गया। इस अवसर पर डॉ.



ऋषभदेव शर्मा (हैदराबाद), डॉ.नारायण (आंद्र प्रदेश), डॉ.प्रभा दीक्षित (लखनऊ)प्रा.पी.रवीन्द्रनाथन (तेलंगाना),आदि स्थनों से आये विद्वानों के साथ विश्वस्त मंडल के सदस्य श्री. किशोर कुडव कार्यकारी समिति के अध्यक्ष श्री. महेन्द्रभाई वासा , उपाध्यक्ष श्री. विलास क्षीरसागर, कार्यकारी समिति के सचिव श्री. दिलिप भोपतराव , कार्यकारी समिति के सदस्य श्री. रमेश जगे, श्री. मामा विशे, श्री. बालासाहेब खारीक ,श्री.आनंद सानप आदि मान्यवर उपस्थित थे।

डॉ. रामेश्वर सिंह ने अपने बीज वक्तव में वैश्वीकरण के प्रभाव को रेखांकित किया। श्री. फ़िरोज पैच ने कहाँ की दुनिया जैसे-जैसे ग्लोबल होती जा रही है, वैसे-वैसे हिन्दी की महत्ता दिन पर दिन और बढ़ती ही जा रही है। डॉ. सुशीला गुप्ता ने कहाँ की विद्यार्थियों को अद्ययन अद्यापन के साथ-साथ गोष्ठीयों में सहभागी होने से जहाँ नई जानकारियाँ प्राप्त होती हैं,वही देश-विदेश के विद्वानों को सुनने का सुनहला अवसर भी मिलता है। डॉ.अशोक फर्डे ने कहाँ की ग्रामीण और आदिवासी क्षेत्र के इस महाविद्यालय में आयोजित अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठी निश्चित ही विद्यार्थियों के लिए उपयोगी सिद्ध होगा। डॉ. बलवंत सिंह ने कहाँ की हिन्दी भाषा का समूचे विश्व पटल पर समग्र प्रसार हो रहा है। उद्

घाटन सत्र का संचालन करते हुए संसयोजक प्रा.संतोष गायकवाड़ देश-विदेश से आये सभी अतिथियों का आभार ज्ञायापित किया।

"वैश्वीक परिदृस्य में मीडिया, समाज और संसकृति" विषय पर केन्द्रित प्रथम सत्र में प्रो०संज्योति सानप,प्रा.गोविंद मुरारका, प्रो०संतोष गायकवाड़, प्रो०मधु तिवारी, प्रो०हर्षद आवटे, प्रो०प्रतिभा नाविक, प्रो०मधुकर डोंगरे , प्रो०सूर्यभान उपाध्याय, प्रा.शैलेश दुबे , प्रो०प्रदीप मिश्र, प्रो०नाजनीन सरताज खान, प्रा.उल्हास पाटिल, प्रो०साधना माली, सुमित्रा पाटिल, प्रा.मीरा सिंह आदि ने अभिपत्र प्रस्तुत किया। इस सत्र की अध्यक्षता डॉ. रामेश्वर सिंह (मास्को),ने की विषय प्रवर्तन डॉ .सिरोजिद्दीन नुर्मातोव (ताशकंद),ने किया । डॉ.नारायना (आंद्रप्रदेश) , प्रा.पी.रवीन्द्रनाथन (तेलंगाना), प्रमुख अतिथि के रूप में उपस्तिथित थे । संचालन प्रा.उमाशंकर पाल और आभार प्रा.अनंत द्विवेदी ने प्रकट किया।

"वैश्वीकरण और समकालीन हिन्दी साहित्य" विषय पर निर्धारित द्वितीय सत्र में प्रो०योगेंद्र खत्री,प्रा.बालासाहेब पगारे, प्रो०उमाशंकर पाल, प्रो०रजनी गुप्ता, प्रो०पावसकर, प्रो०निहारिका देशमुख, प्रो०रीना सिंह, प्रो०अनंत द्विवेदी,प्रा.ज्योति थोरात, प्रो०विलास डोंगरे, प्रो०ममता पाठक, प्रो०ब्रिजेश पाण्डेय,आदि ने अभिपत्र प्रस्तुत किया ।साथ ही साथ प्रो०संज्योति सानप, प्रो०ज्योति थोरात, प्रो०ब्रिजेश पाण्डेय, प्रो०सूर्यभान उपाध्याय,सलीम पिंजरीआदि ने इस अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठी के संदर्भ में अपना अभिमत प्रस्तुत किया। इस सत्र की अध्यक्षता डॉ. सुरेश चंद्र (नार्वे) ने की तथा विषय प्रवर्तन डॉ. ई.जी. डब्ल्यू.पी.गुनसेना(श्रीलंका) ने किया। डॉ. प्रभा दीक्षित(लखनऊ), प्रो०हर्षद आवटे (सिंधुदुर्ग) विशेष अतिथि के रूप में उपस्थित थे। संचालन प्रो०रीना सिंह ने किया कार्यक्रम के समापन पर अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठी के सयोजक एवं हिन्दी विभागाध्यक्ष डॉ. अनिल सिंह सभी के प्रति आभार प्रकट किया।

****

साठ्ये महाविद्याय द्वारा मुंबई में भूमंडलीकरण के परिप्रेक्ष्य में साहित्य,समाज,संस्कृति और भाषा विषयक दो दिवसीय संगोष्ठी का आयोजन किया गया । इस समारोह में विशिष्ट अतिथि के रूप में चीन





से डॉ० गंगा गुणशेखर आमंत्रित अतिथि थे । चित्र में महाविद्यालय के कुलपति से विशेष सम्मान प्रपट करते हुए डॉ० गुणशेखर ।

एशिया के सबसे बड़े आवासीय काशी हिंदू विश्वविद्यालय में दिनांक १ और २ अक्तूबर २०१६ को हिंदी के अति महत्त्वपूर्ण और अपने लेखन धर्म की प्रासंगिकता के साथ आज भी चुनौती







बने कथाकर ,नाटककार और आत्मकथा लेखक भीष्म साहनी पर केंद्रित राष्ट्रीय संगोष्ठी संपन्न हुई.इसका उद्घाटन ख्यातिलब्ध हिंदी रंगकर्मी एम के रैना ने किया और इस सत्र की अध्यक्षता साहित्य अकादमी सम्मान से विभूषित बहुचर्चित कथाकार काशीनाथ सिंह ने की। संगोष्ठी के सम्मानित वरिष्ठ साहित्यकार प्रोफेसर अब्दुल बिस्मिल्लाह ,चीन से आए प्रोफेसर गंगा प्रसाद 'गुणशेखर'और समापन सत्र के अध्यक्ष प्रोफेसर पंकज कुमार मुख्य आकर्षण रहे।

डॉ० रघुवंश मणि, डॉ० वैभव सिंह,डॉ० प्रियम अंकित और डॉ० पल्लव आदि आलोचना कर्मियों ने भीष्म साहनी के साहित्य के मूल्यांकन के बहाने पुनर्पाठ के नए गवाक्ष खोले और अनेक ऐसे नए आयाम उद्घाटित किए जिनके अभिज्ञान से हमारा हिंदी संसार अब तक नितांत अछूता था।

राधाकृष्णन सभागार में सपन्न संगोष्ठी के ६ मुख्य सत्रों के अतिरिक्त विभिन्न सभा कक्षों में संपन्न८ समानांतर तकनीकी सत्रों में भी गंभीर विचार-विमर्श हुआ.इनमें शताधिक शोध छात्र/छात्राओं ने अपने नवोन्मेषी दृष्टि से संपन्न बहुमूल्य और स्तरीय शोध पत्रों का वाचन किया। बाहरी वक्ताओं और प्रतिभागियों के अतिरिक्त बी एच यू के प्रोफेसर बलराज पांडे ,प्रोफेसर अवधेश प्रधान,प्रोफेसर चंद्र कला त्रिपाठी,प्रोफेसर श्रद्धा सिंह,डॉ० नीरज खरे,डॉ० आशीष त्रिपाठी, डॉ० प्रभाकर सिंह, डॉ० मनोज कुमार सिंह,डॉ० सर्वेश सिंह,डॉ० अखिलेश दुबे,डॉ० वंदना चौबे और डॉ० वंदना झा आदि ने अपनी मौलिक स्थापनाओं, सम्मोहक वाचिक

अभिव्यक्ति तथा संचालन आदि दायित्त्वों के कुशल निर्वहन के साथ इस संगोष्ठी को एक आदर्श ऊंचाई तथा सार्थक गरिमा प्रदान की।

सुमन जी के धरती के सरोकार बड़े प्रबल हैं- प्रो वर्मा

शिवमंगलसिंह सुमन शतवार्षिकी संगोष्ठी सम्पन्न

उज्जैन। साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली एवं हिन्दी अध्ययनशाला, विक्रम विश्वविद्यालय,



उज्जैन के संयुक्त तत्वावधान में सोमवार को शिवमंगलसिंह सुमन जन्म शताब्दी समारोह के अंतर्गत राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन शलाका दीर्घा सभागार में किया गया। संगोष्ठी का शुभारंभ सुमन जी के सुपुत्र श्री अरुणकुमार सिंह, समालोचक प्रो धनंजय वर्मा एवम् साहित्य अकादेमी के अध्यक्ष प्रो विश्वनाथप्रसाद तिवारी ने दीपदीपन एवं सुमन जी के चित्र पर पुष्पांजलि अर्पित कर किया। समालोचक प्रो धनंजय वर्मा ने अपने वक्तव्य में कहा कि उनके धरती के सरोकार बड़े प्रबल हैं। वे गहरे आवेग के कवि हैं। सुमन जी का विशिष्ट रश्मि वलय था। काव्य रूढ़ियों को तोड़मे का कार्य उन्होंने किया। उनकी कविता में क्रांतिकारी स्वछंदतावाद के स्वर हैं। वे समग्र मनुष्यता के कवि हैं।

प्रो विश्वनाथप्रसाद तिवारी ने अपने उद्बोधन में कहा कि सुमन जी आकाश गुरु थे। अपनी धरती, प्रकृति और लोगों से उनका गहरा अनुराग था। साहित्य समाज का दर्पण मात्र नहीं है, वह समाज का निर्माता भी है। श्री अरुणकुमार सिंह ने सुमन जी से जुड़े संस्मरण सुनाए।

प्रथम सत्र पंछी उन्मुक्त गगन के, सुमन जी के व्यक्तित्व और कृतित्व पर केंद्रित था, जिसमें प्रो. प्रभात कुमार भट्टाचार्य की अध्यक्षता में प्रो. सरोज कुमार, प्रो. शैलेन्द्रकुमार शर्मा, मुकेश वर्मा ने आलेख प्रस्तुत किए। प्रो भट्टाचार्य ने कहा कि सुमन जी से ज़ुड़ी कई स्मृतियाँ हैं। वे कई पीढ़ियों के प्रेरणा पुंज रहे हैं। प्रो सरोज कुमार ने कहा कि सुमन जी की कविता का दायरा व्यापक था। वे गहरे अध्ययनशील थे। श्री सरोज कुमार ने सुमन जी पर एकाग्र अपनी कविता भी सुनाई। प्रो. शैलेन्द्रकुमार शर्मा ने कहा कि सुमन के नाम-रूप का स्मरण आते ही



औदात्य का एक विराट बिम्ब आकार लेता है। बहुत कम रचनाकारों को इस तरह जीवंत किंवदंती होने का सौभाग्य मिला है, सुमन जी उस विलक्षण कविमाला के अनूठे रत्न हैं। वे तमाम प्रकार की असहमतियों और विसंवादों के बीच सहज संवाद के कवि हैं। उन्होंने अपना समूचा जीवन उत्कट मानवता और अविराम सर्जना को अर्पित किया। मुकेश वर्मा ने कहा कि

सुमन जी का समुचित आकलन नहीं हुआ है। उनकी कविताएं बहुआयामी हैं। उनका काव्य स्वभाव सामंतवाद और पूंजीवाद के विरुद्ध है।

द्वितीय सत्र में डॉ सुमन के काव्य में संस्कृति के स्वरूप पर मन्थन हुआ। सत्र की अध्यक्षता प्रो. रमेश दवे ने की। आलेख पाठ प्रो. निरंजन श्रोत्रिय, प्रो. प्रमोद त्रिवेदी एवम् डॉ. शोभना तिवारी ने किया। प्रो दवे ने कहा कि सुमन जी ने गहरे सांस्कृतिक बोध के साथ महान रचनाकारों का आस्वाद लिया था। उन्हें पढ़ते हुए युग जीवन से साक्षात्कार का अनुभव मिलता है। प्रो. श्रोत्रिय ने कहा कि सुमन जी के मन में स्वतन्त्रता का उजास था। अपने परिवेश से उनकी गहरी संपृक्ति थी। प्रो प्रमोद त्रिवेदी ने कहा कि सुमन जी राग के साथ आग के कवि हैं। वे तमस से ज्योति की ओर ले जाने वाले रचनाकार हैं।

तृतीय सत्र में डॉ सुमन और वाचिक कविता की परम्परा पर चर्चा हुई। सत्र की अध्यक्षता डॉ मोहन गुप्त ने की तथा आलेख पाठ प्रो. हरिमोहन बुधौलिया एवं श्यामसुंदर दुबे ने किया। डॉ गुप्त ने कहा कि भारतीय काव्य की परंपरा वाचिक रही है। श्यामसुंदर दुबे ने कहा कि आज भी आम जन में वाचिक परंपरा का महत्त्व बना हुआ है। सुमन जी में गहरी लोक चेतना थी। सुमन जी ने उस परंपरा को नए युग में साकार किया। प्रो बुधौलिया ने सुमन जी से जुड़े कई संस्मरण सुनाए।

अतिथि स्वागत प्रो प्रेमलता चुटैल, प्रो गीता नायक, प्रो. शैलेन्द्रकुमार शर्मा, डॉ जगदीशचन्द्र शर्मा, डॉ प्रतिष्ठा शर्मा, डॉ भेरूलाल मालवीय आदि ने किया। इस अवसर पर डॉ हरीश प्रधान, प्रो गोपाल शर्मा, प्रो राकेश ढंड, डॉ उर्मि शर्मा, डॉ शिव चौरसिया, डॉ पिलकेन्द्र अरोरा, डॉ अरुण वर्मा, श्रीराम दवे, डॉ निरंजन श्रोत्रिय, डॉ जफर महमूद, डॉ रफीक नागौरी आदि सहित अनेक साहित्यकार, संस्कृतिकर्मी और गणमान्य जन उपस्थित थे। कार्यक्रम में सुमन शोध संस्थान द्वारा अतिथियों को स्मृति चिह्न, शॉल-श्रीफल अर्पित कर उनका सम्मान किया गया।

संचालन साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली के सम्पादक कुमार अनुपम एवं प्रो गीता नायक ने किया। आभार प्रदर्शन प्रो प्रेमलता चुटैल ने किया।

(प्रो शैलेन्द्रकुमार शर्मा)
आचार्य एवम् कुलानुशासक
विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन

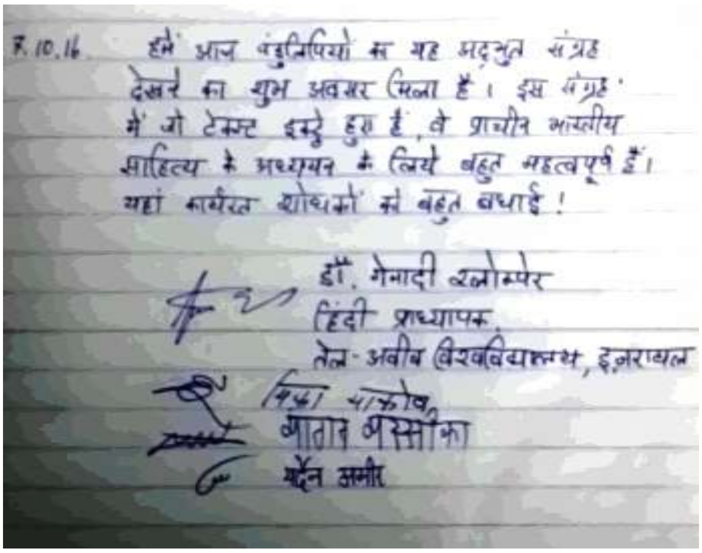
इजरायल की हिंदी सेवा के पर्याय प्रो० गेनादी से साक्षात्कार



इज़राइल के गेनादी श्लोम्पर और उनके शिष्यों के उज्जयिनी प्रवास के स्मृति बिम्ब

प्रस्तुति-प्रो शैलेन्द्रकुमार शर्मा

संघर्षमय इतिहास के बीच पले-बढ़े इज़राइल के तेल अवीव विश्वविद्यालय के भारतविद्या और हिन्दी को समर्पित शिक्षाविद् प्रो श्लोम्पर से उनके उज्जैन आगमन पर भेंट स्मरणीय रही। वे अपने शिष्यों यिफा याकोब, मातान मस्सीका और जॉर्डन यर्देन अमीर के साथ इस पुरातन नगरी में आए थे।



7.10.16 हमें आज पांडुलिपियों का यह अद्भुत संग्रह देखने का शुभ अवसर मिला है। इस संग्रह में जो टेक्स्ट इकट्ठे हुए हैं, वे प्राचीन भारतीय साहित्य के अध्ययन के लिये बहुत महत्वपूर्ण हैं। यहां कार्यरत शोधकों को बहुत बधाई!

डॉ. गेनादी श्लोम्पेर
हिंदी प्राध्यापक
तेल-अवीव विश्वविद्यालय, इज़रायल
यिफा याकोब
मातान मस्सीका
यर्देन अमीर

विगत कई दशकों से हिंदी अध्ययन-अध्यापन से जुड़े इस शख़्स ने अपने शिष्यों के लिए हिन्दी शिक्षण की नई तकनीकें इज़ाद की हैं। वे हर बरस उन्हें लेकर भारत आते हैं। इस बार विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन को उनकी मेजबानी का मौका मिला। मैंने इन भारतप्रेमियों को विश्वविद्यालय के सिंधिया प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान की दुर्लभ पांडुलिपियों और पुरातत्व संग्रहालय के कलात्मक मूर्तिशिल्पों और पुरासामग्री का अवलोकन कराया, जहाँ वे सभी अभिभूत नज़र आए। उनके शिष्य जहाँ भारत के पुरावैभव से चमत्कृत थे, वहीं जटिल हिंदी शब्दों को अपने मोबाइल में अर्थसहित दर्ज करने में तत्पर भी।

डॉ श्लोम्पर से इसराइल में हिंदी शिक्षण के सांप्रत परिदृश्य पर अच्छी चर्चा हुई, जो आश्वस्त करती है। वे बताते हैं, इस छोटे से देश की सड़कों पर घूमें, तो उतनी सारी भाषाएँ और बोलियाँ सुनने में आ जाएँगी, जितनी कि अमरीका, रूस या भारत सरीख़े बहुजातीय और बहुभाषीय देशों में ही गूँजती हैं। ये भाषाएँ विदेशी यात्रियों की नहीं, वरन् इज़रायल के उन नागरिकों की हैं जो यहाँ विश्व के कोने-कोने से आ बसे हैं। यहाँ की 70 लाख वाली आबादी में भारतीय मूल के लगभग सत्तर हज़ार लोग रहते हैं। उनमें से अधिकांश महाराष्ट्र से आये हुए हैं और मराठी उनकी मातृभाषा है। अश्दोद, दीमोना, राम्ला जैसे शहरों में मराठी भाषियों की संख्या काफ़ी बड़ी है। वहाँ जगह-जगह पर हिंदुस्तानी ढंग के रेस्तराँ और दुकानें हैं, जहाँ भारतीय खाना मिलता है, भारतीय फ़िल्मों और संगीत के सी.डी. बिकते हैं।

इजरायल और भारत सम्बन्ध के नए दौर को लेकर उत्साहित श्लोम्पर बताते हैं, इज़रायली



समाज में भारत के प्रति रुचि की जड़ें गहरी और पुरानी हैं। देश की स्थापना के बीस से ज़्यादा वर्ष पहले, 1926 में, यरुशलम के हिब्रू विश्वविद्यालय में अफ़्रीकी-एशियाई अध्ययन के संस्थान का उद्घाटन किया गया था। मैं कोई बीस साल से हिंदी-उर्दू पढ़ाने में लगा रहा। 1996 में मुझे यरुशलम के हिब्रू विश्वविद्यालय के भारत-तत्व विभाग में हिंदी के अध्यापक के पद पर नियुक्त किया गया। विद्यार्थियों में हिंदी की बढ़ती हुई माँग को लेकर 2001 में तेल-अवीव विश्वविद्यालय में भी इस भाषा को सिखाने का निर्णय लिया गया, और मुझे वहाँ भी पूर्वी एशिया के विभाग में हिंदी पढ़ाने के लिये आमंत्रित किया गया। हिंदी के कोर्स बहुत ही सफल रहे, जिसका अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि हर वर्ष दोनों विश्वविद्यालयों में कुल मिलाकर पचास के करीब नये-नये छात्र आ जाते हैं।



वे बताते हैं, शुरू में हिंदी भाषा का पाठ्यक्रम यहाँ दो वर्षों का था। प्रथम वर्ष में विद्यार्थियों को लिखने, पढ़ने और बोलने का अभ्यास दिया जाता है। एक वर्ष के अंदर वे हिंदी व्याकरण के आधारभूत नियमों को पढ़ लेते हैं। प्रतिदिन की आवश्यकता के विषयों पर बातचीत करना सीख लेते हैं। एक साल की पढ़ाई के बाद छुट्टियों के समय जो विद्यार्थी भारत की यात्रा पर जाते हैं, वे अपनी प्राथमिक जानकारी का प्रयोग कर बहुत ख़ुश होते हैं। हिंदी जैसी भाषा गहराई से सीख लेने के लिये

दो वर्ष अवश्य पर्याप्त नहीं हैं। इसलिये दूसरे वर्ष के पाठ्यक्रम को मैंने कुछ ऐसी सामग्री पर आधारित किया है जिसके माध्यम से विद्यार्थी व्याकरण के सब से महत्त्वपूर्ण नियमों को अपना कर शब्दकोश की सहायता से हिंदी में कोई भी किताब पढ़ सकें। दूसरे वर्ष के अंत में विद्यार्थियों को इस स्तर पर तैयार किया जाता है कि वे दिनकर जैसे लेखक की रचनाएँ पढ़ सकें। कोश और व्याकरण की सहायता से वे अनुवाद करते हैं और जहाँ कठिनाई होती है, मैं उनकी मदद करता हूँ।

डॉ श्लोम्पर ने हिब्रू के माध्यम से हिंदी सीखने की पुस्तकें तैयार की हैं। साथ ही नाटक, हिंदी सिनेमा और सिनेगीतों की मदद भी लेते हैं। हिंदी अध्यापन से जुडी चुनौतियों को लेकर वे कहते हैं, वहां आधारभूत स्तर की पाठ्य-पुस्तकों की कमी नहीं है। लेकिन उनमें कोई न कोई अवगुण ज़रूर पाया जाता है। उनमें या तो सामग्री के चयन और प्रस्तुतीकरण में सतहीपन है, या उलट, व्याकरण के नियमों को ही भाषा समझ कर उनपर बल दिया जाता है। तब मैंने अपने अनुभव पर आधारित एक ऐसी पाठ्य-पुस्तक लिखने की चेष्टा की, जिसमें व्याकरण के संग जीवंत व सरल भाषा प्रस्तुत की जाए और जो पढ़ने में रोचक हो और उसमें भारत के बारे में विविध जानकारी भी मिले। फिर मेरा इरादा था कि विद्यार्थी यह पुस्तक अपनी मातृभाषा, यानि कि हिब्रू में पढ़ें। 2000 तक मैंने यह कार्य पूर्ण किया, और अब मेरे पास दो साल की पढ़ाई के लिये पर्याप्त सामग्री है। उनके लिए हिंदी अध्यापन व्यवसाय नहीं, मिशन का पर्याय बन चुका है।

उज्जयिनी की पुरा-धरोहर के अवलोकन के बाद डॉ श्लोम्पर ने अपनी टिप्पणी अतिथि पंजी में दर्ज की और शिष्यों सहित हिंदी में दस्तखत करना न भूले। उनका भारत और भारतवाणी के प्रति प्रेम प्रणम्य है।

प्रो शैलेन्द्रकुमार शर्मा,प्रोफेसर एवं कुलानुशासक,विक्रम विश्वविद्यालय,उज्जैन म प्र 456 010
Email shailendrasharma1966@gmail.com

अपनी भाषा की वार्षिक साधारण मासिक बैठक भारतीय भाषा परिषद, कोलकाता, के सभागार में संध्या 4.00-6.30 बजे संपन्न हुई जिसमें कोषाध्यक्ष श्रीराम तिवारी ने आय व्यय और महासचिव प्रो. अरुण होता ने महासचिव की वार्षिक रिपोर्ट प्रस्तुत की. बैठक में संस्था की नई कार्यकारिणी, संचालन समिति और वार्षिक पत्रिका 'भाषा विमर्श' की संपादक मंडल का गठन किया गया. महासचिव की वार्षिक रिपोर्ट संक्षिप्त, सारगर्भित और संतुलित होने के साथ-साथ पारदर्शी अधिक थी, जिसके कारण संस्था के सदस्यों में सहर्ष स्वीकार की गई. आगामी वर्ष के योजना पर विचार करते हुए पारस बोथरा जी, डॉ. वासुमति डॉगा, डॉ. आशुतोष और डॉ. हिमांशु और अभिजीत सिंह के विचार सराहनीय रहे. संस्था के अध्यक्ष पद से प्रो. अमरनाथ ने पूंजी, सत्ता और राजनीति की आकर्षक गठजोड़ की ओर संकेत करते हुए वैश्वीकरण के मुख्य चरित्र मनुष्य को एंकागीपन बनाने की उसके प्रवृति पर जोरदार तरीके से

प्रहार किये. भाषा मनुष्यों को जोड़ती है लेकिन कुछ तथाकथित वर्ग व समुदाय हमारी भाषा को हमसे छीन लेने की उसकी सक्रिय कोशिश को पहले की तुलना में आज हमें अधिक चौकस रहने को कहता है. उनकी मंशा को सही रुप से उजागर करना ही अपनी भाषा के प्रति सच्ची निष्ठा होगी. धन्यवाद.

स्टोरी मिरर युवा सृजन मेले का भव्य समापन

आज के युवा वर्ग में सृजनात्मकता की असीम संभावनाएं छुपी हुई हैं। जरूरत उसे एक सार्थक मंच देने की है और स्टोरीमिरर ये काम बेहतरीन तरीके से कर रहा है। ये बात आज कहानी पोर्टल स्टोरीमिरर.कॉम द्वारा दिल्ली में आयोजित युवा सृजन मेले के समापन और पुरस्कार वितरण समारोह के अवसर पर मुख्य अतिथि के रूप में बोलते हुए भारत सरकार के आर्थिक सलाहकार डॉ० एन के साहू ने कही। हंसराज कॉलेज के खचाखच भरे ऑडिटोरियम में विभिन्न प्रतियोगिताओं के विजेताओं को एकल और सामूहिक पुरस्कार दिये गये। हंसराज कॉलेज और दिल्ली कॉलेज ऑफ ऑफ आर्ट्स एंड कामर्स में चार दिन तक चले इस भव्य आयोजन में विद्यार्थियों में साहित्य, चित्रकला, नृत्य, संगीत और फोटोग्राफी में रुचि जगाने और उनकी छुपी हुई सृजनात्मकता को दिशा देने के लिए स्टोरीमिरर की ओर से कुल 35 एकल और समूह प्रतियोगिताओं का आयोजन किया गया और कैरियर, लेखन, बिजिनेस, मार्केटिंग, मीडिया जैसे सामयिक विषयों पर कार्यशालाओं का भी आयोजन किया गया। इस भव्य मेले में दिल्ली और एनसीआर के 150 महाविद्यालयों के लगभग 6000 विद्यार्थियों ने कुल 35 प्रतियोगिताओं में भाग लिया।

स्टोरीमिरर पोर्टल और पुस्तक प्रकाशन के क्षेत्र में एक उभरता हुआ नाम है। इस समय पोर्टल पर हिंदी, ओडिया और अंग्रेजी के 5000 लेखकों की 50000 कहानियां और कविताएं हैं। स्टोरीमिरर के पाठकों की संख्या तीस लाख है। इसने 6 महीने की अल्प अवधि में इसने हिंदी, ओडिया और अंग्रेजी की कुल 14 पुस्तकों का प्रकाशन किया है। स्टोरीमिरर युवा वर्ग में लेखन के प्रति ललक जगाने के लिए चेन्नै, नई दिल्ली तथा मुंबई में रचना शिविर तथा कहानी पाठ के कार्यक्रम नियमित रूप से आयोजित करता है।

स्टोरीमिरर ज्ञान के उपहार के जरिये पूरे भारत में युवा वर्ग के लिए बहुत बड़े पैमाने पर कार्य करना चाहता है। इसके लिए स्टोरीमिरर निकट भविष्य में नये कलाकारों और लेखकों को आगे लाने के लिए और अधिक रचना शिविर और सृजन मेले आयोजित करेगा।

सूरज प्रकाश
साहित्य सलाहकार
suraj@storymirror.com

आपकी प्रतिक्रिया

डॉ० साहब

नमस्कार।

इंदु संचेतना का नवीन अंक मिला। आत्मीय आभार।
यह पत्रिका विश्व मंच पर हिन्दी की प्रतिष्ठा का सार्थक उपक्रम कर रही है। प्राप्त अंक में हिंदी के तकनीकी विस्तार पर महत्त्वपूर्ण सामग्री संजोई गई है। साथ ही समकालीन सर्जन और आलोचन का पर्याप्त प्रतिबिंबन इस अंक में हुआ है। एतदर्थ मेरी ओर से आप सहित सभी लेखकों को साधुवाद और शुभकामनाएं।
आगामी अंकों की प्रतीक्षा रहेगी।

शैलेन्द्रकुमार शर्मा
प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, हिन्दी अध्ययन मण्डल और कुलानुशासक
विक्रम विश्वविद्यालय उज्जैन म प्र 456 010
मोबाइल 098260 47765
Email shailendrasharma1966@gmail.com

सादर नमस्कार शर्मा जी,

आपके स्नेहपूर्ण संदेश के लिए आभार... शुभकामनाएँ आत्मसात...

पत्र आपके नाम भेजा है... पूरे विश्व हिंदी समाज के ... उसमें अभिव्यक्त भावनाओं के अधिकारी और संरक्षक भी आप ही हैं... अपनी सम्पत्ति के लिए हमसे किस बात की अनुमति?

सम्पर्क में रहें और स्नेह बनाए रखें।

सादर

गंगाधरसिंह गुलशन सुखलाल
उप महासचिव
विश्व हिंदी सचिवालय, मॉरीशस

www.vishwahindi.com
dsg@vishwahindi.com
facebook.com/groups/vishwahindisachivalay/
+230- 6705026/6761196

Dear Dr. Sharma,

Many thanks for including my write up in your Indusanchetna Publication.
Please let me know if you in Shanghai we will plan to meet

Thanks for your understanding and support

Kind Regards / Mit freundlichen Grüßen

Ashish Gore
Vice President
Regional Business Unit Brake Components: Asia Pacific
Automotive Aftermarket (AA-BC/RBU-AP)

Bosch Trading (Shanghai) Co. Ltd
333, Fuquan Road North, IBP Changning District
Shanghai 200335 , Peoples Republic of China

आदरणीय डॉ॰ शर्माजी,

पत्रिका के लिए असंख्य आभार । चीन की धरती से प्रकाशित यह हिंदी पत्रिका विदेश में हिंदी के फूल खिलने की शुरुआत है । आपके अथक प्रयास से हिंदी साहित्य और भी आगे बढ़ेगी ।

सादर,

अंजनी कुमार ओझा
मुंबई

– इस अंक के लेखकों के पते -

डॉ. श्याम गुप्त, सुश्यानिदी,के-348,आशियाना,लखनऊ-226012 **मोबाइल+91-9415156464**

प्रो.सी.बी.श्रीवास्तव 'विदग्ध' ,ओ बी ११ , विद्युत मण्डल कालोनी, रामपुर, जबलपुर
मो +91-9425806252 मेल-vivek1959@yahoo|co|in

जेबा रशीद, 151 चौपासनी चूंगी पौकी के पीछे जोधपुर–342008 राजस्थान मोबाइल – 9829332268

डॉ. बलजीत कुमार श्रीवास्तव **असिस्टेंट प्रोफेसर हिन्दी विभाग ए.पी.एस.पी.जी.कॉलेज बस्ती (उ०प्र०)**

दयानन्द पाण्डेय,सरोकारनामा ब्लाग,sarokarnama.blogspot.in,वेबसाइट:sarokarnama.com,
संपर्क :5/7, डालीबाग आफ़िसर्स कालोनी,लखनऊ- 226001,0522-4037652,0933523342409415130127
dayanand.pandey@yahoo.com/dayanand.pandey.novelist@gmail.com

डॉ०.मोहसिन ख़ान,हिन्दी विभागाध्यक्ष एवं शोध निर्देशक,जे.एस.एम.महाविद्यालय,अलीबाग-402201,ज़िला-रायगढ़- (महाराष्ट्र)(भारत)- मोबाइल - +91-9860657970 **ई-मेल-** khanhind01@gmail.com

सपना मांगलिक,F-659 Agra (up)(भारत)- 282005 मो.+91-9548509508 email-sapna8manglik@gmail.com

रमेश उपाध्याय,107, साक्षरा अपार्टमेंट्स,ए-3, पश्चिम विहार,नयी दिल्ली-110063 ,Email : rameshupadhyaya@yahoo.co.in

मीता दास , 63 / 4 नेहरू नगर पश्चिम ,भिलाई नगर , छत्तीसगढ़. 49 00 20 ईमेल -- mita.dasroy@gmail.com मोबाईल -- 08871649748 , 0758776261 , 09329509050

डॉ. बलजीत कुमार श्रीवास्तव, असिस्टेंट प्रोफेसर हिन्दी विभाग, ए.पी.एस.पी.जी.कॉलेज बस्ती (उ०प्र०)(भारत)

चंद्रकांत तिवारी,यू0जी0सी0–नेट,उत्तराखण्ड सेट, कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीतालफोन नं0 – 08586098669, 09411579915 Email id- damantewari@gmail.com

Shiam Tripathi <shiamtripathi@gmail.com

श्रीमती सुनीता काम्बोज, पत्नी श्री राजेश कुमार काम्बोज ,मकान नंबर -120 टाइप -3,जिला –संगरूर , स्लाईट लोंगोवाल पंजाब 148106,स्थाई निवासी –यमुनानगर ,हरियाणा,मोबाइल नंबर -+91-9464266415,-+91-9779773491, ईमेल -Sunitakamboj31@gmail.com

डॉ. राहुल मिश्र,प्राध्यापक, हिंदी ,केंद्रीय बौद्ध विद्या संस्थान (मानद विश्वविद्यालय),लेह-लदाख- 194101 (जम्मू व कश्मीर),संपर्क- 09452 031190 / 09419 973362,rahul.mishra378@gmail.com, http://bundela-desa-ke.blogspot.com

डॉ योगेन्द्र नाथ शर्मा "अरुण",पूर्व प्राचार्य,74/3,न्यू नेहरू नगर,रुड़की-247667

प्रोफेसर दिविक रमेश - : बी-295, सेक्टर -20, नोएडा-201301, मो- 9910177099 divik_ramesh@yahoo.com

डा. पद्मजा शर्मा, 15-बी ,पंचवटी कॉलोनी ,सेनापति भवन के पास ,जोधपुर (राजस्थान) 342011,ई मेल - padmjasharma@gmail.com मोब -+91-9414721619

डॉ.गुर्रमकोंडा नीरजा *प्राध्यापक, उच्च शिक्षा और शोध संस्थान, दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, खैरताबाद, हैदराबाद – 500004 . (भारत) आवास : 303, मेधा टॉवर्स, राधाकृष्ण नगर, अत्तापुर, हैदराबाद - 500048. (भारत) मोबाइल : 09849986346*. ईमेल : neerajagkonda@gmail.com

डॉ. ऋषभदेव शर्मा, *[पूर्व आचार्य एवं अध्यक्ष, उच्च शिक्षा और शोध संस्थान, दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, हैदराबाद]/ आवास : 208-ए, सिद्धार्थ अपार्टमेंट्स, गणेश नगर, रामंतापुर, हैदराबाद - 500013. (भारत) मोबाइल : 08121435033*. ईमेल : rishabhadeosharma@yahoo.com

माला वर्मा, C/o डॉo डी डी वर्मा, रिवर साईड क्वाटर, हुकुमचंद जूट मिल, हाजीनगर, उत्तर 24 परगना,पश्चिम बंगाल पिन-743136

प्रियंका पांडे, सीएजी कार्यालय, गुवाहाटी,असम (भारत) मेल- s.priyanka.pandey@gmail.com

तेजेन्द्र शर्मा- 33-A, Spencer Road, Harrow & Wealdstone, Middlesex HA3 7AN (United Kingdom). **Mobile:** 00-44-7400313433 **E-mail:** tejinders@live.com , kathauk@gmail.com

श्रीमती तिआन केपिंग(Tian Keping) पता: नंबर 2, उत्तर बाई यूं एवेन्यू, बाई यूं जनपद, गुआंगज़ौ, चीन.शहर और पोस्टल कोड: गुआंगज़ौ, 510420ईमेल: 904950606@qq.com मोबाइल फोन नंबर: 0086-15989288715